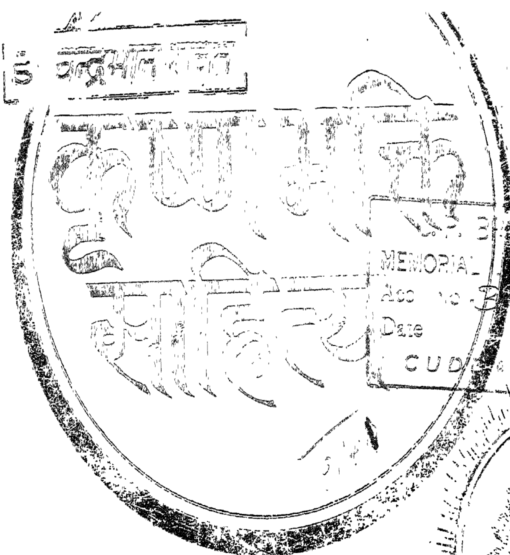
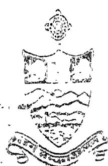
डॉ. चन्द्रभान रावत





वस्तु स्रोत और संरचना





कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु स्रोत और संरचना

डॉ० चन्द्रभान रावत



श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति.

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति
द्वारा प्रकाशित

मुद्रक :
ज्ञानदीप मुद्रणालय, मथुरा.

प्रथम संस्करण ■ मूल्य : पैंतीस रुपये

सहधर्मिणी

रुक्मिणी

को

लेखक की अन्य रचनाएँ

लोकवार्ता □ रामचरितमानस में लोकवार्ता / **भाषा विज्ञान** □ मथुरा जिले की बोली, हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण / **समीक्षा** □ दृष्टि और दिशा / **नव मूल्यांकन** □ सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, तुलसी-साहित्य : बदलते प्रतिमान / **सम्पादित : पाठालोचन** □ गोपाल कवि कृत 'दम्पति वाक्य विलास', 'हित चौरासी' और प्रेमदास कृत 'ब्रजभाषा टीका'.

प्रस्तावना

काव्य की संरचना के दो स्तर हैं : वस्तु और भाषा। काव्य का 'विषय' भी महत्वपूर्ण होता है, किन्तु वह कवि की संरचना-प्रक्रिया में नहीं आता। वैसे, इस त्रयी में घनिष्ट सम्बन्ध साहित्य क्षेत्रीय एक स्वयं सिद्धि है।

काव्य वस्तु और काव्य भाषा के बीच यदि नियामक—नियम्य सम्बन्ध माना जाये, तो एक बहस छिड़ जाती है—नियम्य क्या और नियामक कौन! यदि यह कहा जाये कि काव्य की रचना-प्रक्रिया में काव्य भाषा नियामक रहती है और आस्वादन-प्रक्रिया में काव्य वस्तु नियामक हो जाती है, तब भी बहस के लिए पर्याप्त गुंजाइश बनी रहती है। इस स्थिति में उपर्युक्त सम्बन्ध को फिलहाल छोड़ देना ही निरापद होगा। यह कहा जा सकता है कि दोनों एक दूसरी में में संक्रमणशील होती हैं। ऊर्जा और पदार्थ की परस्पर संक्रमणशीलता से इस प्रक्रिया को उपमित किया जा सकता है। यह मान्यता अपेक्षाकृत निरापद भी है।

हिन्दी के कृष्णभक्ति साहित्य का विषय है—भक्ति; वस्तु है—कृष्ण केन्द्रीय संदर्भ सूत्रों की अन्विति, और भाषा है—ब्रजभाषा। ब्रजभाषा से यहाँ तात्पर्य सामान्य भाषा से नहीं है : यह काव्य भाषा की ही पर्याय है—एक विशिष्ट संरचना वाली भाषा।

प्रस्तुत पुस्तक में कृष्ण भक्ति साहित्य की वस्तु के स्थलीय संदर्भों, विभिन्न स्रोतों से आकर काव्यवस्तु में उसके संक्रमण की प्रक्रिया, उसके स्थानांतरण और उसकी कुछ केन्द्रों पर संसृष्टि पर विचार किया गया है।

इस विचारणा में आये हुए सूत्रों पर तो विचार होता रहा है, किन्तु सभी सूत्रों का इस प्रकार संगुंफन तो नवीन रचना ही है। योजना और उसकी क्रियान्विति के स्तर के विषय में, मैं मौन हूँ।

इस प्रयास को पुस्तकाकार प्रकाशन करने के लिए विश्वविद्यालय की ओर से अनुदान मिला है। विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अधिकारियों के प्रति मैं आभारी हूँ। अन्य सहयोगी मित्रों और कुछ विद्यार्थियों के सहयोग का भी अपना मूल्य है।

तिरुपति, चन्द्रभान

बसन्त पंचमी, १९७७



लेखक की अन्य रचनाएँ

लोकवार्ता ☐ रामचरितमानस में लोकवार्ता / **भाषा विज्ञान** ☐ मथुरा जिले की बोली, हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण / **समीक्षा** ☐ दृष्टि और दिशा / **नव मूल्यांकन** ☐ सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, तुलसी-साहित्य : बदलते प्रतिमान / **सम्पादित : पाठालोचन** ☐ गोपाल कवि कृत 'दम्पति वाक्य विलास', 'हित चौरासी' और प्रेमदास कृत 'ब्रजभाषा टीका'.

प्रस्तावना

काव्य की संरचना के दो स्तर हैं : वस्तु और भाषा। काव्य का 'विषय' भी महत्वपूर्ण होता है, किन्तु वह कवि की संरचना-प्रक्रिया में नहीं आता। वैसे, इस त्रयी में घनिष्ठ सम्बन्ध साहित्य क्षेत्रीय एक स्वयं सिद्धि है।

काव्य वस्तु और काव्य भाषा के बीच यदि नियामक—नियम्य सम्बन्ध माना जाये, तो एक बहस छिड़ जाती है—नियम्य क्या और नियामक कौन ! यदि यह कहा जाये कि काव्य की रचना-प्रक्रिया में काव्य भाषा नियामक रहती है और आस्वादन-प्रक्रिया में काव्य वस्तु नियामक हो जाती है, तब भी बहस के लिए पर्याप्त गुंजाइश बनी रहती है। इस स्थिति में उपर्युक्त सम्बन्ध को फिलहाल छोड़ देना ही निरापद होगा। यह कहा जा सकता है कि दोनों एक दूसरी में में संक्रमणशील होती हैं। ऊर्जा और पदार्थ की परस्पर संक्रमणशीलता से इस प्रक्रिया को उपमित किया जा सकता है। यह मान्यता अपेक्षाकृत निरापद भी है।

हिन्दी के कृष्णभक्ति साहित्य का विषय है—भक्ति; वस्तु है—कृष्ण केन्द्रीय संदर्भ सूत्रों की अन्विति, और भाषा है—ब्रजभाषा। ब्रजभाषा से यहाँ तात्पर्य सामान्य भाषा से नहीं है : यह काव्य भाषा की ही पर्याय है—एक विशिष्ट संरचना वाली भाषा।

प्रस्तुत पुस्तक में कृष्ण भक्ति साहित्य की वस्तु के स्थलीय संदर्भों, विभिन्न स्रोतों से आकर काव्यवस्तु में उसके संक्रमण की प्रक्रिया, उसके स्थानांतरण और उसकी कुछ केन्द्रों पर संसृष्टि पर विचार किया गया है।

इस विचारणा में आये हुए सूत्रों पर तो विचार होता रहा है, किन्तु सभी सूत्रों का इस प्रकार संगुंफन तो नवीन रचना ही है। योजना और उसकी क्रियान्विति के स्तर के विषय में, मैं मौन हूँ।

इस प्रयास को पुस्तकाकार प्रकाशन करने के लिए विश्वविद्यालय की ओर से अनुदान मिला है। विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अधिकारियों के प्रति मैं आभारी हूँ। अन्य सहयोगी मित्रों और कुछ विद्यार्थियों के सहयोग का भी अपना मूल्य है।

तिरुपति, चन्द्रभान

बसन्त पंचमी, १९७७

अन्तर्वस्तु

१ / वस्तु : स्थलीय संदर्भों की खोज / १

२ / कृष्ण वस्तु व्यंजना : मानसीय स्थानांतरण / ५१

३ / वस्तु स्थानांतरण : आचार्य मानस से कवि मानस / १११

४ / वस्तु भावन : कवि मानसीय व्यंजना / १२२

५ / गोपाल केन्द्रीय वस्तु : वैदिक सामिग्री संक्रमण / १५७

६ / युगल केन्द्रीय वस्तु : दार्शनिक वस्तु संक्रमण / २१०

७ / वासुदेव : अवतार—आगमीय पौराणिक वस्तु संक्रमण / २३२

८ / वस्तु संसृष्टिः : लीला, नायक, नायिका और धाम / २४३

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा,

विराजमाना मनु रूप सौभगाम् ।

सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा,

स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम् ॥

—निम्बार्काचार्य

१ / वस्तु : स्थलीय सन्दर्भों की खोज

१. वस्तु : स्थानीय सन्दर्भों की खोज

वस्तु देश और काल के आयामों में घटित होती है। जिन क्षणों में वस्तु घटित होती है, वे या तो अतीत गत होकर विस्मृति में चले जाते हैं, अथवा स्मृतिगत होकर मानसीय स्थिति प्राप्त करते हैं। वस्तु से सम्बन्धित 'देश' रूपान्तरित चाहे हो जाये, समाप्त नहीं होता। यदि वस्तु धार्मिक प्रकृति की होती है तो उससे सम्बन्धित स्थलीय इकाइयाँ तीर्थ-स्थान बन जाती हैं जहाँ यात्री सहानुभूतिक होने (सिम्पैथेटिक मैजिक) के सिद्धान्त के अनुसार अनजान रूप से प्रत्याशित प्रभाव ग्रहण करने के लिए अथवा 'सांगत्य' (असोसिएशन) सिद्धान्त के अनुसार भावात्मक स्मृतियों के माध्यम से वस्तु का मानसीय सामीप्य प्राप्त करने जाते हैं। जब ये स्थल भावात्मक साधना और साधनापरक भावात्मक सहित्य-सृजन केन्द्र बनते हैं, तो इष्ट की क्रियाओं की भाव-भूमियों तथा उन भावों से सम्बन्धित स्थलों की खोज की जाती है। यह स्पष्ट है कि जब भावों की स्थलीय इकाइयों की पहँचान खोने लगती है, तब खोज की आवश्यकता होती है।

कृष्ण काव्य की वस्तु का सम्बन्ध ब्रजभूमि से है। ब्रज में कृष्ण की वे भावात्मक लीलायें घटित हुईं, जो कृष्ण काव्य में वस्तु के रूप में गृहीत हुईं। जब भावात्मक लीलाओं के स्थलीय सन्दर्भ प्राप्त हुए, तो स्थलों की पौराणिक युग और ऐतिहासिक युग में खोज हुई। ऐतिहासिक युग में स्थलीय खोज भक्ति के प्रमुख आचार्यों के द्वारा पौराणिक साहित्य और अनुश्रुतियों के प्रकाश में हुई। प्रस्तुत अध्याय में इसी खोज का परिचय दिया गया है। आरम्भ में ब्रज क्षेत्रीय सांस्कृतिक संक्रमण पर दृष्टिपात किया गया है।

१. कृष्ण-संस्कृति :

जिस दिन से कृष्ण मथुरा में जन्म लेकर, गोकुल में आए, उसी दिन से ब्रज की मूल सांस्कृतिक संरचना नितान्त नवीन रूप ग्रहण करने लगी। यह घटना कितनी ऐतिहासिक है, कितनी पौराणिक, गोपालकृष्ण वासुदेव कृष्ण से भिन्न व्यक्ति है या दोनों एक ही, यह प्रश्न सांस्कृतिक सन्दर्भ में महत्वपूर्ण नहीं है। सत्य इतना ही है कि ब्रज के समस्त साँस्कृतिक सूत्र गोपाल संस्कृति में ढलने लगे। संस्कृति का समग्र रूप भावात्मक और रस-प्रवीण हो गया। समस्त धार्मिक आचार और अनुष्ठान भक्ति में लीन हो गये। कृष्ण का व्यक्तित्व कुछ दिन के लिए यादवों, वृष्णियों और सात्वतों के हाथ से छूट गया और उसका विकास कुछ ऐसी घुमन्तु, पशुपालक जातियों में हुआ, जो भारत में बहुत पहले ही आ गई थीं, जो वैदिक अनुष्ठानों से अधिक महत्व अपनी स्वच्छन्द भावात्मक संस्कृति को देती थीं, जिनका लोक साहित्य सरस और प्रेम परक था और जो उच्च शैक्षिक या बौद्धिक संस्कारों से मुक्त थीं। एक 'गोप' के रूप में कृष्ण का विकास हुआ। अपने घुमन्तु जीवन में कृष्ण ब्रजभूमि पर पलती-पनपती अन्य संस्कृतियों के सम्पर्क में भी आए और उन सबका विलयन धीरे-धीरे गोप संस्कृति में हो गया।

कृष्ण-केन्द्रित संस्कृति के मूल सूत्र ये हैं : बलभद्र, कृष्ण, लीला तत्व, गोपी, राधा और सखी। बलभद्र के व्यक्तित्व का विकास कुछ सीमा तक कृष्ण के साथ-साथ ही होता है, किन्तु जब रास-श्रृङ्गार में कृष्ण का व्यक्तित्व प्रविष्ट हो जाता है, तो बलभद्र का व्यक्तित्व साथ नहीं दे पाता। वे ब्रज के एक क्षेत्र के स्वामी बनकर कृषि के प्रवर्तक के रूप में पूज्य हो जाते हैं। कृष्ण का व्यक्तित्व रसात्मक चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ता जाता है और समस्त रस-योजना एक दार्शनिक प्रतीक का रूप लेती जाती है, कृष्ण का देवत्व पुष्ट होता जाता है। रसपरक भक्ति और भक्तिपरक साहित्य को एक सर्वांगपूर्ण नायक मिल जाता है। कृष्ण का व्यक्तित्व लीला-विहार के सन्दर्भ में 'बिहारी' बन जाता है। लीला सन्दर्भ रूढ़ शिव-परक परिवेश से विद्रोह करके अन्तश्चेतनापरक हो जाता है। रसात्मक लीलातत्त्व का गायन और उत्थापन भागवत, हरिवंश और ब्रह्मवैवर्त जैसे पुराण करते हैं। रस-परात्पर यदि साध्य के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, तो गोपी साधिका के रूप में उभरती है और नायिका-विहीन वासुदेव कृष्ण के चारों ओर नायिकाओं की भीड़ लगने लगती है। रास और दानलीला जैसी शुद्ध रसात्मक लीलायें सम्पन्न होती हैं। सभी नायिकाओं में से एक गोपी प्रमुख होने लगती है। आगे चलकर प्रमुख गोपी 'राधा' नाम धारण करती है। शाक्त प्रभाव से (?) सम्भवतः 'राधा' कृष्ण से भी अधिक प्रमुख होने लगती है : वह कृष्णाराध्या बन जाती है। सखियों के लिए साध्य युगल बन जाती है। संक्षेप में कृष्ण संस्कृति का

यह विकास क्रम है। इस संस्कृति का पोषण समय-समय पर दर्शन शास्त्र, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र और अन्य कला विलासों से होता रहा। ब्रज में इस संस्कृति के चिह्न ही सर्वाधिक मुखर और सबल हैं।

१.१ बलभद्र :

ब्रज में दाऊजी के छोटे बड़े मन्दिर सभी स्थानों पर मिलते हैं।[१] दाऊजी के साथ रेवती के नाम से बने हुए कुण्ड या उनकी झाँकियाँ भी हैं।[२] पर बलदाऊ और रेवती की परस्पर प्रेमलीला की भावना किसी स्थान से सम्बद्ध नहीं है। रेवती और दाऊजी के कुण्ड और झाँकियाँ यह अवश्य प्रकट करती हैं कि बलदाऊ—रेवती की युग्म भावना का नितान्त अभाव नहीं था। कई स्थानों पर उनकी मूर्ति अकेली भी है। स्वयं बलदेव (स्थान) में रेवती जी दाऊजी के पार्श्व में स्थित नहीं हैं।

दाऊजी के साथ एक भावना यह भी लगी हुई है कि वे मधु और आसव या भाँग का पान करते थे। बल्देव में आजकल भी शाम को भाँग का भोग लगाया जाता है। मधुवन में मधुपान के अनन्तर उन्होंने नृत्य किया था। इनके साथ दूसरी भावना दैत्यवध की है।[३] तीसरी घटना वह है जिसके आधार पर इनका नाम संकर्षण हुआ था। शेरगढ़ में दाऊजी ने अपने हल से यमुना जी के प्रवाह का आकर्षण करके उसे मोड़ा था। उसी समय से इनका नाम संकर्षण हो गया था। इस नाम से भी कुछ कुण्ड ब्रज में हैं।[४] शेषशायी में बलराम जी ने अपने को शेष-रूप में प्रकट करके माँ-बाप को आश्चर्य-चकित कर दिया था।

कृष्ण के गोचारण के सन्दर्भ में भी दाऊजी का नाम आता है। बठैन के सम्बन्ध में भावना इस प्रकार है : कृष्ण और बलराम ने अपनी-अपनी गायों को अलग कर लिया। बड़ी-बठैन दाऊजी की है और छोटी बठैन कृष्ण की। गोचारण कालीन दैत्यबध में दाऊजी का सहयोग था।

साँस्कृतिक दृष्टि से एक और सूत्र महत्वपूर्ण है। यक्ष-संस्कृति का दाऊजी से संबंध प्रतीत होता है। यक्षधन गांव (जिखिन गांव) में यक्षधन ने दाऊजी के लिए तपस्या की थी। इस स्थान पर बलराम-कुण्ड और रेवती-बलराम का मन्दिर है।

रास के सूत्र का संबन्ध कृष्ण से तो है, कुछ स्थानों पर बलराम के रास की भावना भी प्रचलित है। द्वारिका से आकर बलदाऊ शेरगढ़ में ठहरे। यहाँ उन्होंने रास का सेहरा बाँधा था। इसीलिए वे यमुना को उधर बुलाना चाहते थे। शेरगढ़ में रामघाट है। इस स्थान पर बलरामजी ने रास किया था। दाऊजी का संबन्ध ललिता सखी से भी जोड़ा जाता है। ऊँचा गाँव (बरसाना क्षेत्र) ललिता जी का स्थान बतलाया जाता है। यहाँ बलदाऊजी का स्थान भी है। सखी गिरिपर्वत के

त्रिवेणी कूप के विषय में कहा जाता है कि इसमें दाऊजी और ललिता साथ-साथ स्नान करते थे। यह सूत्र अत्यन्त निर्बल है। साहित्य में यह समाप्त हो गया।

१.२ कृष्ण :

कृष्ण पूर्व सांस्कृतिक सूत्र कृष्णकाल में या तो समाप्त हो गये अथवा वे कृष्ण वार्ता में संक्रमित या पर्यवसित हो गये। कृष्ण-परवर्ती ब्रज-संस्कृति का मौलिक तत्व कृष्ण और उनका परिकर बन गया। यद्यपि लोक-संस्कृति के सूत्र सजीव भी रहे, पर उनका भी अधिकांश कृष्णवार्ता से प्रभावित रहा।

कृष्ण पूर्व ब्रज में, लीला-संदर्भ और तत्सम्बन्धी स्थल अनुश्रुति-गत होकर सजीव रहे। धीरे-धीरे अनुश्रुति पौराणिक तत्व से घिरती गयी और तथ्य शिथिल पड़ता गया। बहुत-से स्थल अपनी लीला-स्मृति खो भी बैठे। एक समय ऐसा आया जब कृष्ण के वंशजों को स्थलान्वेषण करना पड़ा।[५] आगे चलकर आचार्यों और भक्तों को फिर स्थलान्वेषण करना पड़ा[६] जब किसी स्थल या तद्गत भावना की खोज होती थी, तब उस स्मृति को स्थूल आधार भी दिया जाता था। कभी छोटे मन्दिरों और विग्रहों के नामों, कभी कच्चे कुण्डों के नामकरण, कभी पक्के कुण्डों के निर्माण, कभी शिलाओं में चिह्न खोदने[७], कभी वृक्षों के नामकरण[८] आदि के द्वारा स्मृति एवं भावनाओं को स्थलीय आधार प्रदान किया जाता है। कभी-कभी गांवों के नामों की लोक व्युत्पत्ति ही इस आधार पर सिद्ध की जाती थी।[९] इन्हीं अनुश्रुतियों और चिह्नों के आधार पर आगे कृष्ण तत्व के सांस्कृतिक रूप पर विचार किया गया है।

१.२१ कृष्ण नाम :

ब्रज में अनेक कुण्डों का नामकरण कृष्ण नाम के आधार पर हुआ है।[१०] कुछ कुण्डों के साथ गोपाल,[११] श्याम, गोविन्द,[१२] मोहन[१३] आदि नाम भी मिलते हैं, किन्तु अधिक संख्या 'कृष्ण' नाम धारी कुण्डों की है। कुछ नाम क्रीड़ा विहार के आधार पर भी हैं जैसे—कुमुदबन, गिडोयो और नन्दगाँव में बिहार-कुण्ड और बरसाने में जल विहार-कुण्ड, अड़ींग में किलोलकुण्ड आदि। राधाकुण्ड[१४] में राधा एवं कृष्ण के नाम पर कुण्ड युग्म भी है।

स्थान-स्थान पर कृष्ण के जो विग्रह मिलते हैं, उनके नामों में अधिक वैविध्य मिलता है। प्रस्तुत अध्ययन में ब्रज-चौरासी कोस के ७७ विग्रहों को लिया गया है। इन विग्रहों के नामों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है: 'गो' शब्द पर आधारित, स्थानों पर आधारित, बिहार पर आधारित, अन्य लीलाओं पर आधारित एवं अन्य नाम। इनके अतिरिक्त राधा और लक्ष्मी पर आधारित युगल नाम भी हैं। इनकी तालिका इस प्रकार है :

(१) 'गो' पर आधारित नाम ६

(क) गोविन्द[१५] ३

(ख) गोपाल[१६] ३

(२) स्थानों पर आधारित १२

(क) गोकुल[१७] २

(ख) गोवर्धन[१८] ३

(ग) मथुरा[१९] २

(घ) द्वारका[२०] ३

(ङ) ब्रज[२१] २

(३) गोपी पर आधारित

गोपीनाथ[२२] ०७

(४) राधा पर आधारित[२३] ०९

(५) बिहार पर आधारित (बिहारी)[२४] १९

(६) काम पर आधारित (मदन गोपाल)[२५] ०७

(७) अन्य लीलाओं पर आधारित[२६] ०६

(८) अन्य नाम ०९

(क) मथुरा-देवकीनन्दन १

(ख) ,, -केशवदेव १

(ग) परासौली श्रृङ्गार मन्दिर १

(घ) कामबन - मुरलीमनोहर १

(ङ) नन्दगाँव - मालाधारी १

(च) कर्णावल - माधवराय १

(छ) लक्ष्मी पर आधारित[२७] ३

(९) विशिष्ट नाम ३

(क) अर्द्धनारीश्वर की पद्धति पर

मिलित नाम[२८] २

(ख) ललिता मोहन[२९] १

उक्त सूची के विश्लेषण से निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहली बात यह है कि कृष्ण के ब्रज परक नामों का ही इसमें प्राधान्य है। दूसरी बात यह है कि सबसे अधिक नाम बिहार शब्द से व्युत्पन्न (बिहारी) हैं। इसका तात्पर्य है कि ब्रज की

कृष्ण वार्ता में राधा, गोपी, सखी बिहार की भावना सबसे अधिक दृढ़ है। काम, सम्मोहन से सम्बन्धित नाम भी कम नहीं है। ये नाम शिव की काम-विजय की तुलना में काम-मोहन की ओर संकेत करने वाले हैं। सखी भावना के बीच राधा-कृष्ण भावना का सर्वोच्च स्थान है। वात्सल्यपरक, सख्यपरक एवं असुरबध पर आधारित नामों से गोपी, राधा और बिहार पर आधारित नाम बहुत अधिक बढ़ जाते हैं। इससे होता है कि कृष्णोपासना में अन्ततः यही भाव मुख्य हो गया था।

१.२२ लीला सन्दर्भ

सबसे प्रथम बाललीला सन्दर्भ आता है। मथुरा से गोकुल जन्म लेते ही कृष्ण गये। यमुना चरण स्पर्श के लिए उमड़ी। 'कोले'[३०] 'कौन ले' वसुदेव जी के मुँह से निकला महाबन में 'छटी पूजन' का स्थान है। 'कनुवारा' और 'कर्नावल' कर्णछेदन के अनुष्ठान से सम्बद्ध स्थान है। 'नन्दगाँव' में 'हाऊ' नाम से यशोदा ने कृष्ण को डराया था। 'ब्रह्माण्ड घाट' पर कृष्ण ने मिट्टी खायी थी। कहीं माखन-चोरी के स्मृति चिह्न मिलते हैं।[३१] गोदोहन की स्मृति में भी दोहनी कुण्ड बने हैं।[३२]

बाललीला की अपेक्षा सख्य भाव की लीलाओं की भावनाएँ अधिक वैविध्य-पूर्ण हैं। कुछ स्थानों पर ग्वाल बालों के साथ भोजन-छाक खाने के चिह्न हैं।[३३] कुछ स्थान गोचारण से सम्बद्ध माने गये है।[३४] गोचारण के समय वेणुवादन किया था। कुछ स्थानों पर इस लीला की स्मृतियाँ रूपायित हैं: बहुलाबन में बंशी में मल्हार राग भरा, चरण पहाड़ी पर एक पैर से खड़े होकर त्रिभंगी मुद्रा में वेणु वादन किया। अजानी गाँव में कृष्ण की वंशी को सुनकर यमुना अजानी सी बहने लगी थी। कुछ स्थानों पर कृष्ण के खेल-कूद के स्मृति चिह्न हैं।[३५]

कृष्ण के प्रति ग्वाल बालों की भी प्रतिक्रियाएँ हुईं। वे भी सख्य के अन्तर्गत आती हैं। 'तोषबन' तोष सखा का स्थान है। इस सखा ने कृष्ण को नृत्य सिखलाया था। पैंठे की भावना यह है: ग्वालों ने यह सन्देह किया कि कृष्ण गिरिराज को उठा नहीं सकेंगे। उन्हें विश्वास दिलाने के लिए कृष्ण ने एक कदम्ब उमेंठ कर उठा लिया था। कुछ स्थान अन्य गोप-ग्वालों से सम्बन्धित हैं।[३६] कामबन में ग्वालों को एक असुर ने बद्ध कर लिया था। कृष्ण ने उन्हें मुक्त किया। 'दावानल कुण्ड' कृष्ण के द्वारा दावानल से गोप-गायों की रक्षा का स्मारक है।

सख्य सन्दर्भ वैसे ब्रज का अपना सन्दर्भ है। फिर भी राधा, गोपी और सखी को लेकर ब्रज में जो शृङ्गार सन्दर्भ गठित हुए वे संख्या, वैविध्य और प्रभाव की दृष्टि

से महत्वपूर्ण हैं। ब्रज में अनेक स्थानों पर रास चौंतरा या रास मण्डल बने हुये हैं।[३७] रास-शृङ्गार सन्दर्भ का चरम है। नीचे गोपी-कृष्ण, राधाकृष्ण और सखी सन्दर्भ के शृङ्गार पर विचार किया गया है।

१.२३ गोपी-कृष्ण :

गोपी तत्व कृष्ण के साथ अविभाज्य रूप से संबद्ध है। गोपियों के स्मारक के रूप में ब्रज में अनेक कूप और कुण्ड मिलते हैं।[३८] कुछ स्थानों पर रास सम्बन्धी जो स्मृति चिह्न हैं, उनको जोड़कर भागवतीय रास का रूप खड़ा हो जाता है। चीरघाट पर कात्यायनी व्रत और चीरहरण लीला के संदर्भ घटित हुए। इन्होंने महारास की भूमिका बनायी। परासौली में रास को पूर्ण करने के लिए कृष्ण ने छः महीने की रात की। 'अहोर' नामक स्थान की भावना है कि यहाँ कृष्ण ने आठ प्रहर क्रीड़ा की। 'जाव' नामक स्थान की भावना है कि वेणुनाद से कृष्ण ने गोपियों को बुलाया और फिर उनसे कहा 'जाओ' (=जाव)। जब रास हो रहा था, तो कृष्ण गोपियों को छोड़कर अन्तर्धान हो गये और पीछे राधा को छोड़ गये। इस अंश की स्मृति कोकिला बन के साथ संबद्ध है। 'पाई' नामक स्थान पर कृष्ण फिर से मिल गए। मधुबन, करहला और बृन्दावन भी रास-क्षेत्र माने जाते हैं।

अन्य शृङ्गारी लीलाओं में दानलीला, फागलीला और हिंडोर लीला आती हैं। इन तीनों से सम्बन्धित स्थानों का भी ब्रज में अन्वेषण हुआ। दधिदान से संबन्धित स्थान ये हैं—अड़ींग, गोवर्धन (दानघाटी), बरसाना (सांकरीखोर) और करहला। 'जाव' में होली की निकुञ्ज है। रत्नसिंहासन और गुलालकुण्ड (गांठौली) भी होली के स्थल हैं। 'संकेत' में हिंडोरा की भावना है। इस प्रकार शृङ्गारी लीलाओं के संदर्भ ही गोपी-कृष्ण भावना को सजीव किये हुए मिलते हैं।

१.२४ राधाकृष्ण :

ब्रज में कुछ स्थान राधा और उनके सम्बन्धियों से सम्बन्धित हैं।[३९] राधा जी की बैठकें भी हैं।[४०] इनके अतिरिक्त सभी स्थानों की भावना राधा और कृष्ण के सम्मिलित सन्दर्भों से ही सम्बन्धित है। कुछ मिलन-स्थल हैं : बरसाने और नन्दगाँव के बीच 'संकेत' सहेट-स्थल है। यहाँ युगल-मिलन होता था। यहाँ कृष्ण और राधा का गान्धर्व विवाह भी सम्पन्न हुआ। यहीं पास में प्रेम सरोवर है : यह प्रथम प्रेम-प्रस्ताव का स्थान बतलाया जाता है। 'गाँठौली' में राधाकृष्ण विवाह ग्रन्थि-बन्धन प्रणाली से हुआ था।

अधिकांश स्थान ऐसे हैं जहाँ कृष्ण ने अपने हाथों से राधा का श्रृङ्गार किया था। 'कुमुदवन' में कृष्ण ने राधा का सर्वांग श्रृङ्गार किया था। माल्याहार कुण्ड पर कृष्ण ने राधा के श्रृङ्गार के लिए मोती उगाए थे। 'आंजनौख' स्थान की भावना है कि यहाँ कृष्ण ने राधा की आँखों में काजल आँजा था।[४१] 'जाव' स्थान की व्युत्पत्ति 'जावक' शब्द से कल्पित करके भावना की गई कि कृष्ण ने राधा के पैरों में महावर लगाया था।

कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ गोपियों ने युगल-श्रृङ्गार किया था : कुसुम सरोवर (गोवर्धन क्षेत्र) युगल श्रृङ्गार से सम्बन्धित स्थान है। चिकसौली में अकेली राधा का श्रृङ्गार सखियों ने किया था। सखीगिरि के पास एक चित्र-विचित्र शिला है। यहाँ राधा जी ने अपने हाथों में मेंहदी लगाने के लिए गोपियों को शिला पर अनेक नमूने काढ़कर बतलाए थे।

कुछ स्थानों पर मान सरोवरें हैं।[४२] इनका सम्बन्ध एक ओर तो राधा जी के 'मान' से जोड़ा जाता है और दूसरी ओर यहाँ का स्नान मनवांछित फलदाता बतलाया जाता है। मानसरोवर की भावना तो इतनी तीव्र है कि यहाँ के कुण्ड मान-विरह जन्य आँसुओं से ही भरे हैं। 'डिमरा' गाँव के नाम की व्युत्पत्ति 'डबडबाने' से की जाती है। प्रेमातिरेक के कारण यहाँ प्रिय की आँखें आँसुओं से डबडबा आई हैं।

कुछ स्थान कृष्ण के प्रति राधा के लिए किए गए व्यवहारों की याद दिलाते हैं। कृष्ण ने अरिष्टासुर को मारा। इससे कृष्ण को दोष लग गया। राधा जी ने इस दोष-निवारण के लिए 'राधाकुण्ड' का प्राकट्य किया। 'बठैन' में कृष्ण और बलराम गाय चराया करते थे। राधा ने यहाँ कृष्ण के लिए 'छाक' भेजी थी।[४३] इसके विपरीत राधा के प्रति कृष्ण के भी कुछ मधुर व्यवहार घटित हुए। उनसे सम्बन्धित स्थान भी हैं। बिलछू बन में राधा का बिछुआ खो गया था। कृष्ण ने उसे ढूँढ़ा और स्वहस्त से राधाजी के पैर में पहनाया था। इस प्रकार राधा जी की कृष्ण के प्रति और कृष्ण की राधा के प्रति प्रेमजन्य क्रिया की स्मृति को अमर किया गया है।

अनेक स्थल विविध लीला सन्दर्भों की भावना को सँजोये खड़े हैं। जतीपुरा के पास 'जान-अजान' कुण्ड है। यहाँ राधा जी कृष्ण के प्रति जान-बूझ कर अजान बन गई थीं। फलतः कृष्ण अन्तर्धान हो गये। राधा ने पश्चाताप किया। 'जाव' में कृष्ण ने नट-लीला से राधा को मुग्ध किया था। 'गिडोयो' गाँव में गारूड़ी लीला घटित हुई। 'झूला' झूलने के सन्दर्भ से कई स्थान सम्बन्धित हैं।[४४]

कई स्थानों पर रास-स्मृति को सुरक्षित रखा गया है। 'पैंठा' गाँव में बसन्त रास के समय कृष्ण अन्तर्धान हो गये थे। इस क्षेत्र में गोपियों सहित श्री जी ने उनकी

खोज की थी। कोलाबन में कृष्ण राधा के साथ अन्य गोपियों को छोड़कर अन्तर्धान हो गये। फिर राधा को छोड़ गए। राधाकुण्ड क्षेत्र भी राधा-कृष्ण की निकुंज केलि या गुप्त केलि से भी सम्बन्धित है। 'पिसाया' में राधा जी की गुप्त कुंज बतलाई जाती है। 'कामर' राधाकृष्ण के गुप्त मिलन का स्थान है। बैंदोखर में राधाकृष्ण ने कुंज के द्वार पर रोक कर केलि की थी। 'जाव' में होली लीला की निकुंज है। ऐसा प्रतीत होता है कि निकुंज भाव बरसाना क्षेत्र के केन्द्रों में पला-पनपा।

युगल भावना से सम्बन्धित स्थान भी हैं। राधाकुण्ड में युगल भावना दो मिलेजुले कुण्डों में प्रतीकायित है। एक होने पर भी दोनों कुण्ड अलग हैं। 'गिडोया' गाँव में जुगल किशोर के दर्शन हैं। नंदगाँव में राधा-कृष्ण की मिली जुली मूर्ति है।

१.२५ सखी :

सखीत्व का आरम्भिक सूत्र 'वृंदा' है। वृंदा से सम्बन्धित तीन स्थान माने जाते हैं : कामबन, कुसुमसरोवर, और बृन्दावन। कुसुम सारोवर पर सखी पद्धति से वृन्दा ने नारद को कृष्ण तत्त्व का साक्षात्कार कराया था। प्रश्न है—वृन्दा कौन ?

एक अनुश्रुति के अनुसार राजकन्या सत्यवती ही वृन्दा थी। इसने अपनी तपस्या से कृष्ण को सन्तुष्ट कर लिया। वृन्दा ने वर माँगा : "मैं तुम्हारी लीला के लिए एक निकुंज बनाऊँगी। उस उपवन में छः ऋतुएँ एक साथ विलसित होंगी। विहगों के कलरव से वह कूजित होगा। तुम प्रतिदिन उस निकुंज में अपनी कान्ता के साथ विहार किया करना। बस, इतना ही दे दो।" कृष्ण ने तथास्तु तो कह दिया, पर जिज्ञासा की, "इससे तुम्हें क्या मिलेगा ?" वृन्दा ने कहा : "युगल दर्शन, तुम विहार से आनन्दित होगे और मुझे उससे आनंद ! क्या यह कम है ? और तुम वचन दो कि उस कुंज-उपवन से तुम कभी जाओगे नहीं।" और वृन्दा की मनोकामना पूरी हुई। वृन्दा के वन-निकुंज में ही मधुर लीला संपन्न होती है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार वृन्दा केदार राजा की पुत्री थी। उसका विवाह जलंधर के साथ हुआ था। अन्य पुराणों में इस कथा का उल्लेख नहीं है। वृन्दा या बेंदा नाम की एक यक्षी भी थी। बौद्ध ग्रन्थों में अलका, मधा और तिमिसका के साथ उसका नाम भी आता है। साथ ही यह भी माना जाता है कि यहाँ वृन्दादेवी का शक्ति पीठ था। वृन्दा तुलसी का भी नाम है।

इस प्रकार 'वृन्दा' का तत्त्व अनेक संकेतों से गर्भित है। इसमें शाक्त, तंत्र, योग, यक्ष-आचार, निकुंज, बिहार आदि सभी सूत्र सन्निविष्ट हैं। इन्हीं सूत्रों का विकास

सखी भावना की उत्कटता में हुआ है। उक्त समस्त साधना-पद्धति का विलयन सखी भाव के माधुर्य में हुआ।

अन्य प्रमुख सखियों से संबन्धित स्थान भी ब्रज की स्मृति-परंपरा में बने हुए हैं—

(१) ललिता—इनका गाँव 'ऊँचागाँव' था। सखी गिरिपर्वत पर कृष्ण ने सात वर्ष की अवस्था में उनसे विवाह किया। करहला गाँव से भी ललिता का संबन्ध था। नंदगाँव में एक ललिता कुण्ड है। ललिता कुण्ड राधाकुण्ड में भी है।

(२) विशाखा—विशाखा जी का गाँव आँजनौख था। कमई भी उनकी स्मृति को रखे हुए है। कामबन में विशाखा नामक एक देवी है। संभवतः यहाँ देवी का संक्रमण सखी रूप में हुआ हो! राधा-कुण्ड में भी विशाखा कुण्ड है।

(३) चित्रा——डभारा गाँव में इनका जन्म हुआ था (बरसाना क्षेत्र)।

(४) तुङ्गभद्रा—इनका गाँव 'चिकसौली' (बरसाना क्षेत्र) था।

(५) चंद्रभागा—कामर में चन्द्रभागा कुण्ड है। कामबन में चन्द्रभागा सरोवर है।

(६) रंग देवी— } इन दोनों का जन्म बजेरा (कामबन क्षेत्र) में हुआ था।

(७) सुदेवी—— } करहला में इनके नाम के कुण्ड हैं।

(८) विमला—कामबन में विमला देवी का मंदिर है और वहाँ विमल कुण्ड भी है।

(९) इन्दुलेखा—करहला में इनके नाम के कुण्ड हैं।

(१०) चमेलीबन—चमेली नामक सखी का बन कहलाता है।

(११) श्यामला—यूथेश्वरी श्यामला जी का घर यहाँ था।

(१२) कमई——इस सखी का स्थान कमई में है।

सखियों की उक्त तालिका में जितने नाम आए हैं, सभी का सम्बन्ध बरसाना या कामबन क्षेत्र से है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सखियों के शक्ति या देवी रूप यहाँ मान्य थे।

इन्हीं क्षेत्रों में शक्ति पीठ भी थे। इन सभी देवियों का वैष्णवीकरण हुआ और सभी राधा कृष्ण की सखियाँ बन गईं।

गोवर्धन क्षेत्र का राधाकुण्ड भी इन सखियों की स्मृति से विह्वल है। पर, इस क्षेत्र की प्रमुख सखी चन्द्रावली प्रतीत होती है। यद्यपि चन्द्रावली जी का गाँव 'रीठौरौ' बताया जाता है जो बरसाना क्षेत्र में है, तथापि इनकी प्रेम-वल्लरी का विकास गोवर्धन क्षेत्र में हुआ। आन्योर के समीप एक 'गौरीतीर्थ' स्थल है। वहाँ गौरी पूजा के बहाने चन्द्रावली कृष्ण से मिलने आया करती थी। यहीं सखियों सहित वे कृष्ण से मिलती थीं। वल्लभ संप्रकाय में चन्द्रावली जी की मान्यता है। एक मत के अनुसार स्वामिनी जी (वल्लभाचार्य जी) भी चन्द्रावली ही हैं।

वार्ता साहित्य में इस क्षेत्र की दो और सखियों का उल्लेख मिलता है—जान, अजान। ये राधा की प्रिय सखियाँ थीं। आज दो-वृक्षों में उनकी स्मृति शेष है। अनु-श्रुति इस प्रकार है : एक दिन ये दोनों सखियाँ कृष्ण को राधा से मिलाने के लिए लाईं। राधा-कृष्ण के रहस्यमय या गुह्य मिलन का क्षण आया। जब इनकी उपस्थिति लज्जा-जन्य व्यवधान उपस्थित करने लगी, तब ये दोनों वृक्षों के रूप में जड़ीभूत हो गयीं। विश्वास है कि श्रीनाथ जी खिड़की से इस स्थल को देखा करते थे।

बसोंती स्थान की वसुमती नामक सखी भी बतलाई जाती है। यह स्थान भी गोवर्धन क्षेत्र में आता है। पर, यह जतीपुरा अंचल में नहीं है, राधाकुण्ड अंचल में है।

आगे चलकर अष्ट सखियों की मान्यता रूढ़ हो गयी। वल्लभ, चैतन्य और राधावल्लभ संप्रदाय के आचार्यों ने अष्ट सखियों का विवरण दिया है। कुछ स्थानों पर अष्ट सखियों की सम्मिलित स्मृति भी जीवित है।[४५]

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रज में कृष्ण की संस्कृति के सबसे अधिक सूत्र मिलते हैं। कृष्ण संस्कृति की रसात्मक संरचना अपने से पूर्व के सभी सांस्कृतिक रूपों पर आरोपित हो गई। धीरे धीरे लोक संस्कृति के रूप में विकसित कृष्ण-संस्कृति सभी वर्गों में मान्य हुई। पहले इस संस्कृति की भावनाओं का वहन लोक साहित्य ने किया। पीछे संस्कृत साहित्य में भी लोक साहित्य के कृष्णाश्रयी रूप अपना स्थान बनाने लगे। नारद, शांडिल्य, व्यास, शुकदेव जैसे आचार्यों ने प्रेमभाव परक संस्कृति के साथ एक शास्त्र भी संबद्ध कर दिया। ईस्वी शती के पश्चात् बौद्ध और जैन भी इस क्षेत्र में प्रविष्ट होते रहे। इनके ग्रन्थों में वासुदेव कृष्ण का ही विशेष उल्लेख है। गोपी आदि के संबद्ध तत्त्व पुराणों में हैं।

२.२ स्थलान्वेषण : ब्रजयात्रा

२.२१ पुराणों में—वराह पुराण में भूमण्डल की यात्रा का तत्त्व मिलता है। वराह पुराण के अनुसार जितने तीर्थ समस्त भूमंडल में हैं, उतने ही ब्रज में हैं। समस्त भूमंडल के तीर्थों का सर्वेक्षण पहले वायु देवता ने किया। फिर अन्यों ने भूमण्डल की यात्रा[४६] की। यह यात्रा बाह्यमंडलीय मार्ग से की गई थी।[४७] दूसरी परिक्रमा अंतर्मण्डलीय मार्ग से की गई। 'इसी आधार से मथुरा मंडल के समस्त तीर्थों की भूमंडल-वर्ती देवस्थलों के संस्थान क्रम से उतनी ही संख्या और नामरूपता के साथ स्थापना हुई और इसी मर्यादानुसार ब्रज-परिक्रमा के भी दो अंग स्थिर हुए। पहला अन्तर्ग्रही यात्रा और दूसरी 'बहिर्मंडल' यात्रा। विश्व के समस्त तीर्थों की यात्रा करने में असमर्थ जीव को मथुरा और ब्रज की तीर्थ यात्रा करके ही भूमंडल तीर्थ-दर्शन का लाभ इस प्रकार सुगम करने की व्यवस्था....श्री वराहदेव ने अपने पुराण में प्रस्तुत किया।[४८] इस पुराण में इसीलिए ब्रज के तीर्थों और वन-उपवन का विस्तार से उल्लेख है।

पद्मपुराण में ब्रजमंडल की बाह्य रेखा में सोलह स्थलों की गणना की है। यही यात्रा का क्रम है : महत् धाम (मथुरा-गोवर्धन), वृन्दावन, (काम्यवन) उत्तम स्थल, रस स्थल (रासौली), नन्दीश्वर बन (नन्दगाँव), नन्दवन (नौगवाँ), बहुलाबन, तालबन (तरौली), कुमुदवन, कामाख्य (काम्य, आटस), सेतुबन्ध, (सेई), भांडीरबन, किंजिल्क (जैसवाँ), श्रीवन (बेलवन), लोहबन तथा महावन।[४९] इस प्रकार वराह पुराणोक्त ब्रज-तीर्थ निरूपण की परम्परा पद्मपुराण में भी मिलती है। इस क्षेत्र के देवता माधव बतलाए गये हैं। इनकी क्रीड़ा से सम्बन्धित वन-उपवनों का कथन सहस्र दल कमल के रूपक के माध्यम से किया गया है। मथुरा की स्थापना सभी तीर्थों के प्रतीक के रूप में हो गई। भूमंडल की प्रदक्षिणा=ब्रज-परिक्रमा—एक पौराणिक संधारणा बन गई।

जिस ब्रह्मा ने पहले 'भू-प्रदक्षिणा की थी, उसको ब्रजयात्रा करनी पड़ी। परीक्षा के उपरान्त जब ब्रह्मा मोह-मुक्त हुआ और वह ब्रज-भाव के मर्म से अवगत हो गया, तब कृष्ण ने स्वयं उसे ब्रजयात्रा का आदेश दिया।[५०] श्रीमद्भागवत में उद्धव जी की ब्रजयात्रा का भी उल्लेख है। पहली यात्रा तो भ्रमरदूत के सन्दर्भ में हुई थी। दूसरी यात्रा सम्भवतः उन्होंने कृष्ण के लीला-संवरण के पश्चात् की, क्योंकि वज्रनाभ को यात्रा के समय उद्धव जी मिले थे। नारद जी की ब्रजयात्रा का उल्लेख भी मिलता है। पद्मपुराण [पाताल खंड] के अनुसार नारद जी ने ब्रज में आकर, प्रिया जी की कृपा से रास-रहस्य का दर्शन किया। बृहन्नरदीय पुराण में भी नारद की ब्रजयात्रा का उल्लेख है।[५१]

उद्धव को ब्रज के विभिन्न लीला स्थलों का परिचय गोपी जन से प्राप्त हुआ। वृन्दा देवी ने नारद को ब्रज के रास-स्थलों से परिचित कराया। पीछे इन स्थानों की स्थिति और इनसे संबद्ध लीला प्रसंग विस्मृत होने लगे। इसलिए इन लीला स्थलों की खोज आवश्यक हुई। द्वापर के अन्त में कृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाभ मथुरा मंडल में राज्याभिषिक्त हुए भक्ति तत्त्व के पारंगत महर्षि शांडिल्य[४२] ने वज्रनाभ को प्रेरणा दी कि वे प्रत्येक लीलास्थली को खोजें और उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए, लीला-स्थलों पर ग्राम-नगर बसायें और कुएँ-कुण्ड खुदवायें। शांडिल्य की सहायता से वज्रनाभ और परीक्षित ने इन स्थानों का लीलाओं के अनुसार नामकरण किया : लीला विग्रहों की स्थापना की : भगवान के नाम पर कुण्ड और कुँए खुदवाये।[४३] आज भी इनके सम्बन्ध में अनुश्रुतियाँ जीवित हैं।[४४] ब्रज के कुछ प्रमुख स्थानों पर[४५] चौकियाँ भी स्थापित करने का आदेश मिला। आज भी ये स्थान ब्रज में प्रमुख हैं। ब्रज के चार वैष्णव विग्रह[४६] भी वज्रनाभ जी के द्वारा स्थापित किये गये।

स्कन्द पुराण के द्वितीय खंड (वैष्णव खंड) में शांडिल्य ने पृथ्वी और स्वर्ग में भगवान की व्यावहारिक लीला की स्थिति बतलाई है। पृथ्वी पर मथुरा मंडल है और उसके अन्तर्गत ब्रज है। इस ब्रजभूमि में भगवान की गोपनीय रहस्य लीला, गुप्त रूप से निरन्तर चलती रहती है। ब्रजभूमि की इस लीला में भगवान के अन्तरंग पार्षद ही भाग लेते हैं। इन्हीं अधिकारियों के लिए यह लीला दृश्य रहती है और अनधिकारियों के लिए यही अदृश्य है।

२.२२ भक्ति के आचार्यों के द्वारा स्थलान्वेषण

नारद, उद्धव और वज्रनाभ की खोजों का पौराणिक युग समाप्त हो गया। पौराणिक उल्लेख तो शेष रहे, पर वज्रनाभ का प्रयत्न फिर विस्मृति के गर्भ में विलीन होने लगा। स्मारक कुण्ड, कुँए और विग्रह खंडित होने लगे—हो गये। नामकरण विकृत हो गया। नामकरण की भावनाएँ कुछ अस्पष्ट अनुश्रुतियों में शेष रह गईं। मध्यकाल में भक्ति के प्रमुख आचार्यों ने ब्रज के लीला स्थलों की फिर से खोज की।

२.२२१ श्री वल्लभाचार्य जी का स्थलान्वेषण

वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रज और ब्रज लीलाओं की सर्वाधिक मान्यता है। एक गोस्वामी महोदय के उद्‌गार इसके साक्षी हैं : "हम ब्रज के केवल प्रशंसक नहीं, वरन् हमारी समस्त भगवत्सेवा, प्रणति, दिन-चर्यादि ब्रज भावना से भरी है। हमारा तन-मन-धन सब कुछ ब्रज ही है।···हमें ब्रज और ब्रज की लीला प्राण से भी अधिक प्यारी

है।"[५७] ब्रज का प्रतीकत्व स्वयं आचार्य वल्लभ और गो० विट्ठलनाथ जी ने स्वीकार किया है।

श्री वल्लभाचार्य जी ने ब्रज का ब्रह्मत्व स्वीकार किया है। वृन्दाबन, गोवर्धन आदि को उन्होंने गुणातीत कहा है।[५८] गो० विट्टलनाथ जी ने श्रुति-यूथ के आग्रह पर भगवान कृष्ण के अवतार की गाथा लिखी है। इस प्रकार ब्रज को प्रकट करके भगवान ने गोपी रूप में अवतरित ऋचाओं की रमणेच्छा पूर्ण की।[५९]

इस प्रकार ब्रज एक प्रमुख संप्रदाय का प्रधान पीठ बन गया। आचार्य वल्लभ ने स्वयं ब्रज के लीला स्थलों की खोज के लिए ब्रजयात्रा की।[६०] कहा जाता है कि आचार्य प्रभु ने नारदपुराण को अपनी यात्रा का आदर्श बनाया। वल्लभाचार्य जी ने स्थलान्वेषण में मथुरा के उजागर चौबे से सहायता लेनी चाही। स्कन्दपुराण में उल्लेख है कि वज्रनाभ ने मथुरा में माथुर ब्राह्मणों को बसाया। इसको दृष्टि में रख कर ही सम्भवत: आचार्य जी ने इनसे सहायता की आशा की। पर उन्हें निराश ही होना पड़ा। इसीलिए उन्होंने अकेले ही स्थलान्वेषण के लिए यात्रा की : "उजागर चौबे को बचन लेई मर्यादा राखिबे कें लीयें पीछें विध्योक्तमन: पूर्वक संकल्प करि विश्रान्त ते प्रारम्भ जन्मस्थल पधारे। ·····पीछें चौबे नें बीनती कीनीं कै मैं साथ आऊँ तब श्री जी कह्यौ कै तुम्हारो कहां काम हे : तुम्हारौ बचन लैनो है सो तो लीयौ यह कहि चौबे की बिदा कीनीं।"[६१] आज के यात्रा-क्रम से ज्ञात होता है कि आचार्य जी ने पहले गिरिराज क्षेत्र में स्थलान्वेषण किया। इस क्षेत्र में स्थित श्रीनाथ जी उनके उपास्य बने। गिरिराज के 'मुखारविन्द' की ओर सम्भवत: आचार्य जी ने ही पहले संकेत किया। इस संकेत ने गिरिराज को इष्टदेव का मानवीकृत मूर्त रूप प्रदान किया। इससे पहले वे 'विश्राम घाट' का उद्‌घाटन कर चुके थे : इससे पूर्व यह स्थान श्मशान था। इस प्रकार यमुना और गिरिराज दोनों ही क्षेत्र आचार्यजी की यात्रा में प्रमुख हुए। वात्सल्य भाव से अभिसिंचित 'गोकुल' की खोज भी यमुना के तट पर हुई। महावन (=पुराना गोकुल) की तुलना में वल्लभोक्त गोकुल को 'नया गोकुल' या 'गुसाँइयों' का गोकुल कहा जाता है। ब्रज में वल्लभ संप्रदाय की प्रमुख गद्दी गोकुल में ही है। वल्लभाचार्य जी के पश्चात् श्री गो० विट्टलनाथ जी ने ब्रज की यात्रा की।[६२]

ब्रजयात्रा का विषय ब्रजभाषा के गद्यकारों के लिए आकर्षक रहा। इस विषय पर ब्रजभाषा की कई कृतियों की खोज हो चुकी है।[६३] "ब्रज की यात्रा में चौरासी कोस की पैदल यात्रा को धार्मिक रूप दिया गया। इसमें कौन-कौन से स्थान श्री कृष्ण के जीवन से किस प्रकार सम्बन्धित हैं, इस विषय के साहित्य की रचना हुई है। समय-समय पर बहुत से भक्तजन और सम्प्रदाय के आचार्यों ने ब्रजप्रदेश के भक्ति-स्थलों की

यात्रा की। उनमें से कई यात्राओं का महत्वपूर्ण विवरण मिलता है। बीकानेर के एक माहेश्वरी भक्त का ब्रजप्रदेश यात्रा संबन्धित विवरण अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में मुझे प्राप्त हुआ।"[६४] आगे नाहटाजी ने लिखा है : "१६वीं शताब्दी से ब्रजभाषा में भी कई महत्व-पूर्ण पद्य और गद्य रचनाएँ ब्रजप्रदेश की यात्रा आदि के रूप में लिखी गईं।" इस प्रकार ब्रज-यात्रा संदर्भ ब्रजभाषा से संभवतः वल्लभ संप्रदाय की खोजों के पश्चात् लोकप्रिय हुआ। अब प्रतिवर्ष कम-से-कम एक ब्रजयात्रा इस संप्रदाय के गुसाइयों के नेतृत्व में होती है।

ब्रज में वल्लभ संप्रदाय के प्रमुख केन्द्र गोकुल, मथुरा, गोवर्द्धन, जतीपुरा और कामबन में आज भी सजीव-सक्रिय हैं। गो० बिट्ठलनाथजी के सातों पुत्र मथुरा के सतघड़ा स्थान पर निधियों सहित रहते थे।

२.२२२ चैतन्य संप्रदाय का स्थलान्वेषण : [वराह पुराण के आधार पर]

चैतन्य महाप्रभु ने भी ब्रज के लुप्त तीर्थों और लीला स्थलों के अनुसंधान के लिए ब्रजयात्रा की। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी से इनकी भेंट गोविन्द कुण्ड पर हुई थी।[६५] चैतन्य के अनुसंधान के संदर्भ में स्कन्द पुराणोक्त वज्रनाभ के ब्रजानुसंधान का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। चैतन्य संप्रदाय में लीला-स्थलों की खोज और स्थानीय संदर्भों के आधार पर रस-शास्त्र निरूपण का क्रम साथ-साथ चले। रूप-सनातन को इसीलिए ब्रज भेजा गया।[६६] रूप और सनातन ने वराह पुराणोक्त कृष्ण लीला स्थलों का अनुसन्धान किया।[६७] स्वयं चैतन्य ने ब्रज की यात्रा की।[६८] और कई लुप्त स्थानों की ओर संकेत किया। इन्होंने यात्रा का आरम्भ तो मथुरा से ही किया, पर वृन्दावन पहुँचकर लता-द्रुम को देखकर महाप्रभु जी प्रेम पुलकित और गलदश्रु हो उठे।[६९] ब्रजवासियों से भेंट करके उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि अपने बन्धुओं से ही भेंट हो रही हो। राधाकुण्ड में पहुँच कर महाप्रभु जी ने कहा कि यह प्रिया-प्रियतम की जल-केलि–सरसी है। रास और जल-केलि की सन्दर्भ भावना एक साथ स्फुरित हुई।[७०] ब्रज की जनता से उन्होंने स्थलों और विग्रहों के सम्बन्ध में अनुश्रुतियाँ एकत्र कीं। यहाँ से महाप्रभु जी कामबन क्षेत्र में गये और वहाँ गुहा-स्थित त्रिभंगी विग्रह का साक्षात्कार किया। लुप्त ब्रज की खोज और अनुभूतियों को पुनरुज्जीवित करने में में चैतन्य का महत्त्व उल्लेखनीय है। वृन्दावन की रास स्थली को देख कर तो उन्हें भावमूर्छा हो गई थी—'रासस्थली देखे प्रेमे मूर्छित होइला' चैतन्य भावावेश और स्थलीय मौलिक आविष्कार की दृष्टि से वृन्दाबन, राधाकुण्ड और कामबन बरसाना क्षेत्र विशेष महत्त्व रखते हैं।

नारायण भट्ट ने दक्षिण से आकर इस संप्रदाय के तत्वावधान में लुप्त स्थानों का आविर्भाव एवं उद्धार अत्यन्त मनोयोग के साथ किया।[७१] राधाकुंड के भौतिक रूप के प्राकट्य का श्रेय बहुत कुछ इन्हीं को है। कृष्णकुंड का आविष्कार करके राधाकुंड के साथ इसके संगम की ओर आपने ही संकेत किया। राधाकुंड-गोवर्धन क्षेत्र के प्राकट्य के पश्चात् भट्ट जी ने मथुरा और वृन्दावन क्षेत्रों में अपनी भावपूर्ण खोजों का चमत्कार दिखलाया।[७२]

आपकी इन्हीं खोजों से प्रभावित होकर लोक ने आपको नारद का अवतार माना। ब्रज के गुप्त स्थानों की खोज के संबंध में, स्वयं नाभादास जी ने इनके कर्तृत्व को स्वीकार किया है।[७३] राज साहाय्य से स्थान-स्थान पर भट्ट जी ने रासमंडल बनवाये।[७४] इन्हीं उल्लेखों के आधार पर ग्राउज महोदय ने इन्हें ब्रजयात्रा का आरंभ-कर्ता माना है।[७५]

चैतन्य संप्रदाय के अन्वेषण की प्रथम कड़ी के रूप में ईश्वरपुरी का नाम आता है। ये वृन्दावन के एक विरक्त, विद्वान भक्त माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे। 'वृन्दाबन के पुनः उद्धार का वास्तविक श्रेय माधवेन्द्रपुरी को है। माधवेन्द्रपुरी बंगाली थे।'[७६] इन्हीं की मूल प्रेरणा चैतन्य, रूप, सनातन आदि के माध्यम से ब्रज में प्रतिफलित हुई।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीनाथजी की खोज भी चैतन्य-मतानुयायियों ने ही की थी। श्रीनाथजी की पूजा पहले बंगाली वैष्णव माधवानन्द करते थे। जब वल्लभाचार्य-जी ने श्रीनाथजी के मंदिर का निर्माण कराया, उस समय भी सेवा-कार्य बंगाली वैष्णवों के ही हाथ में था। इनके सेवकों में एक माधवेन्द्रपुरी भी थे। कृष्णदास अधिकारी ने कूटनीति से बंगालियों को यहाँ से निकाला। यह आरोप लगाया गया कि इनकी पूजा शुद्ध वैष्णव प्रकृति की नहीं थी। ये साथ में एक देवी की उपासना भी करते थे। इससे प्रतीत होता है कि सहजिया साधना के अवशेषों से युक्त बंगाली वैष्णव ब्रज में वल्लभ से पहले ही जम चुके थे। चैतन्य ही सहजिया वैष्णवमत के उत्तराधिकारी बने।

चैतन्य संप्रदाय ने ब्रज-प्रेम बिहार, बंगाल, आसाम और मणिपुर में जागृत किया। तंत्र-रसाविष्ट पूर्वी क्षेत्र वैष्णव-माधुर्य के संप्लव में निमग्न हो उठा। इन क्षेत्रों की अनेक प्रतिभाओं को ब्रज की ओर आकर्षित किया गया। इन क्षेत्रों में कई ब्रजभाषा कवि भी हुए। उनके माधुर्य का अजस्र स्रोत ब्रजभूमि में था। यही वैष्णव रस-शास्त्र की अद्‌भुत्-अलौकिक व्याख्या हुई।

२.२२३. निम्बार्क संप्रदाय का स्थलान्वेषण :

निम्बार्काचार्य दक्षिणात्य थे।[७७] निम्बार्काचार्य का ब्रज से घनिष्ठ संबंध रहा।[७८] गोवर्धन क्षेत्र में मथुरा नगर से लगभग सोलह मील की दूरी पर नींमगाँव

नामक स्थान है। "नीम गाँव श्री निम्बार्काचार्य का साधनास्थल है। ब्रज में यह स्थल निम्बार्क संप्रदाय का प्रधान तीर्थ है।[३] इस स्थान पर इस संप्रदाय की स्थिति ब्रज और चैतन्य संप्रदायों के भी पूर्व थी, यह प्रतीत होता है। इस स्थान का पौराणिक नाम निम्बवन था।[७९] पद्म पुराण के अनुसार और अनुश्रुतियों के अनुसार यह स्थान गोपी-भाव का प्रमुख केन्द्र था।[८०] गोपी, राधा और सखी भाव के अन्वेषी निम्बार्काचार्य का यहाँ निवास करना एक विशेष अर्थ रखता है। संभवतः इन्हीं के द्वारा इस स्थल की खोज और इसका महत्व-संकेत हुआ।

कोकिलावन से भी निम्बार्काचार्य का संबंध था। इस स्थान का संबंध भी रास-भावना से है। महारास के अवसर पर कृष्ण राधा के साथ गोपियों के बीच से यहीं अंतर्धान हो गये थे और पीछे इसी स्थान पर गर्विष्ठ राधा को छोड़ गये थे। वल्लभाचार्य-जी की भेंट यहाँ इस संप्रदाय के एक साधु से हुई थी। इससे प्रतीत होता है कि निम्बाकाचार्य जी, ब्रज के कुछ स्थानों की खोज, वल्लभाचार्यजी के पूर्व ही कर चुके थे। महर्षि वेदव्यास से संबंधित स्थान आदि बद्री (कामबन क्षेत्र) का आंतरिक सान्निध्य भी आपने प्राप्त किया। नींमगाँव--राधाकुण्ड क्षेत्र का संबंध सखी भावापन्न नारद से भी था। अनुश्रुति के अनुसार निम्वार्काचार्यजी ने नारद से ही दीक्षा ली। नींमगाँव में रहकर ही इन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर "वेदांत पारिजात सौरभ" नामक भाष्य किया था। नंदगाँव में आपने पच्चीस श्लोकों में श्रीकृष्ण-स्तुति की। किसी योगी-यति को भी उन्होंने अपनी कला से नींमगाँव में ही चमत्कृत किया था। ब्रज और निम्बार्क का घनिष्ठ संबंध "ब्रज-निम्बार्क" से स्पष्ट होता है।[८१]

निम्बार्काचार्यजी के पश्चात् उनके अनुयायी श्री केशव काश्मीरी जी, हरिव्यास देवाचार्य, परशुराम देवाचार्य आदि ने भी ब्रज में रहकर संप्रदाय और साहित्य की सेवा की। बृन्दावन में आज भी इस संप्रदाय का पीठ है।

२.२२४. मध्व संप्रदाय की खोज :

मध्वाचार्य और ब्रज के संबंध पर अभी अधिक खोज नहीं हुई है। इस संप्रदाय की स्थिति ब्रज में थी, यह इस बात से स्पष्ट है कि अब भी वृन्दावन में इस संप्रदाय के गुसाइयों का परिवार है।[८२] वल्लभाचार्यजी को अपनी यात्रा में भाण्डीरवन स्थान पर एक माध्व महंत व्यासतीर्थ मिले थे।[८३] ये महंत जी आचार्य जी को अपना शिष्य भी बनाना चाहते थे। इन दोनों महानुभावों का समकालीन होना तो सिद्ध है।[८४] फिर भी ब्रज में व्यासतीर्थ की स्थिति चिन्त्य है।

इतना अवश्य प्रतीत होता है कि भाण्डीरवन की पुनर्स्थापना में मध्व संप्रदाय

का हाथ रहा। भाव की दृष्टि से यह स्थान बालभाव या सख्य से संबंधित रहा।[८५] यहाँ दाऊजी तथा बिहारी जी की साथ-साथ झाँकी सख्य भाव की ओर ही संकेत करती है। संभवतः वल्लभाचार्य जी से पूर्व ही इस स्थल की खोज माध्व संप्रदाय कर चुका था।

आगे चलकर माध्व और चैतन्य मतों में सामीप्य हुआ। प्रेम रत्नावली में माध्व मत की गुरु-परंपरा में श्री चैतन्य का नाम भी आता है।[८६] इस शिष्य परंपरा में से ईश्वरपुरी और माधवेन्द्र से चैतन्य का संबंध पहले देखा जा चुका है। माधवेंद्र की प्रेरणा से ही चैतन्य का ब्रजानुसंधान आरंभ हुआ था।[८७] इससे प्रतीत होता है कि ब्रजानुसंधान में आचार्य मध्व का हाथ चाहे न रहा हो, पर माधवेंद्रजी और ईश्वरपुरी का अवश्य ही स्थान रहा। चैतन्य के रूप में इन्हीं का अभियान प्रबल हुआ। माध्व और चैतन्य का मिलित संप्रदाय ब्रज में फला-फूला। सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी एवं श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने इस संप्रदाय का ब्रज में विस्तार किया। वज्रनाभ के द्वारा स्थापित गोविंद देव जी की मूर्ति का प्राकट्य रूपगोस्वामी जी ने किया।

२.२२५. रामानंदी संप्रदाय और ब्रज :

श्री रामानंद एक ऐसे वैष्णव नेता थे जिनसे वैष्णवों की निर्गुण और सगुण दोनों धाराएँ निःसृत हुईं। ब्रज से इनका कितना सम्बन्ध था, इसको स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता। "श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर" ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की पूजा और ब्रज-वास के संबंध में उल्लेख है।[८८] ब्रज में आज भी तीन ब्रज यात्राएँ होती हैं : वल्लभ संप्रदाय की, चैतन्य संप्रदाय की और रामदल की। रामदल वालों को 'लठाभारती' भी कहते हैं। संभवतः रामदल वाली यात्रा का संबंध रामानंद जी से है।

२.२२६. स्थानीय आचार्यों की खोज :

दक्षिण और पूर्व के आचार्यों ने ब्रजयात्रा के द्वारा कृष्ण की लीलाओं से संबद्ध स्थानों की खोज की और ब्रज निवास करके कृष्णाश्रयी भावों का अन्वेषण भी किया। स्वामी हरिदास और श्री हितहरिवंश ऐसे आचार्य थे जिन्होंने ब्रज में ही जन्म लिया और विविध स्थलों और भावों का अन्वेषण भी किया।

२.२२६१. स्वामी हरिदास जी :

इनको जन्म देने का श्रेय ब्रज भूमि को ही है।[८९] इनकी साधनास्थली वृन्दावन रही। बृन्दावन में इन्होंने निधिवन का अन्वेषण किया।[९०] निधिवन में ही इनके उपास्य बाँकेबिहारी जी की मूर्ति का प्राकट्य हुआ।[९१]

२.२६२. गो० हित हरिवंश :

इनको भी ब्रज भूमि ने ही जन्म दिया।[९२] वृन्दावन क्षेत्र के एक जागीरदार नरवाहन ने आपको साधना के लिए भूमि प्रदान की।[९३] इनकी भी स्थायी साधना भूमि वृन्दावन बनी। इन्होंने अपनी आराध्या राधा के केलि स्थलों का अनुसंधान और प्राकट्य किया। ये केलि-स्थल मानसरोवर, सेवाकुंज, रासमंडल और वंशीवट हैं।[९४] सेवाकुंज में उन्होंने भी राधावल्लभ जी के विग्रह की स्थापना की।[९५] यहीं उन्होंने अपनी रस-पद्धति से अष्टयाम पूजा का विधान किया। यदि सेवाकुंज उनकी रस स्थली है तो मानसरोवर[९६] उनकी ध्यानस्थली। श्री हित जी ने खोज की कि यह राधारानी के मान का स्थान है।[९७] यहाँ राधा जी के नेत्रों के दर्शन हैं। दो सम्मिलित कुण्ड मानकुण्ड एवं कृष्ण-कुण्ड हैं। भाव है, मानकुण्ड राधा के मान से पीड़ित कृष्ण के अश्रुजल से भरा है। हो सकता है कि इस स्थान की भावनाओं का प्राकट्य हित जी ने ही किया हो! वैसे यहाँ श्री वल्लभाचार्य जी और गोसांई जी, दोनों की बैठकें भी है। वृन्दावन के चैनघाट या गोविंदघाट पर रासमण्डल की भी इन्होंने स्थापना की। यह प्रिया-प्रियतम के रासमण्डल की खोज थी। कहा जाता है कि रास का सर्वप्रथम आयोजन भी यहीं हुआ। इस प्रकार ब्रज क्षेत्र में अवतीर्ण दोनों आचार्यों ने राधा-कृष्ण की निकुंज लीला से संबंधित स्थानों का अन्वेषण किया।

३/ ब्रज : भावानुसंधान का अनुक्रम

भाव राग की एक गतिशील इकाई है।[९८] इससे केवल स्थिति या अस्तित्व का ही बोध नहीं होता, बीज वपन, विकास एवं फल का क्रम भी द्योतित होता है। साधना और रसपरिपाक भाव की गतिशीलता के कारण उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया में ढल जाते हैं। कर्मकाण्डीय यज्ञ-क्रिया में भावना बीज रूप से सन्निहित रहती है।[९९] इसके द्वारा यज्ञकर्ता की कामना प्रकट होती है जिसका परिपाक यज्ञ-फल में होता है। पहले स्थूल रूप से 'भाव' शब्द त्रिगुण का द्योतन भी करता था,[१००] किन्तु पीछे यह शब्द मानसिक भावना अथवा घटना के लिये प्रयुक्त होने लगा।[१०१] व्याप्त करने के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग होता रहा है : भाव वह, जो भावित करे।[१०२] इस प्रकार भाव की मुख्य अर्थछायायें मानसिक स्थिति, एक विकासशील इकाई, व्याप्त या अभिव्यक्त करने वाले तत्व के रूप में प्रकट होती हैं।

भक्ति के क्षेत्र में भाव वह गतिशील इकाई है जो उत्तरोत्तर विकास करती हुई इष्ट साक्षात्कार के रूप में चरम परिणति प्राप्त करती है। जिस प्रकार काव्य शास्त्र के क्षेत्र में भोज ने सभी भावों की रसात्मक सम्भावना को स्वीकार किया,[१०३]

उसी प्रकार भक्ति-क्षेत्रीय मान्यता के अनुसार सभी भाव भक्ति में परिणत हो सकते हैं।[१०४] भाव के प्रत्येक स्तर[१०५] पर साध्य का साक्षात्कार हो सकता है क्योंकि 'परम पुरुष' भक्ति भाव से वश्य है।[१०६] फिर भी इनमें तीव्रता, व्याप्ति और तल्लीनता की दृष्टि से प्रेम भाव प्रमुख है।[१०७]

जब तक भक्ति भाव की ज्ञानमूलक और आचारमूलक व्याख्याएँ चलती रहीं, तब तक भाव को कोई स्थलीय सन्दर्भ प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु जब भक्ति प्रेममूलक हो गई, तब प्रेम लक्षणा भक्ति के आदर्श के रूप में गोपियाँ निर्दिष्ट होने लगीं और गोपियों के साथ ब्रज का स्थलीय सन्दर्भ भी उभरने लगा।[१०८] इसीलिए ब्रज में भावानुसंधान की क्रिया आरंभ हुई।

प्रस्तुत संदर्भ में अनुसंधान का अर्थ अमूर्त भावस्थिति का मूर्त संदर्भीकरण है। अमूर्त को मूर्त संदर्भ में रखकर उसका भावन और विभावन करना माननीय चेतना की एक अनिवार्यता रही है। संमूर्तन की प्रक्रिया ज्ञानक्षेत्र में अतीन्द्रिय बिम्बों की परिकल्पना के रूप में होती रही। ज्ञान और योग की परंपरा में 'नाद' और 'बिन्दु' जैसे अतीन्द्रिय बिम्ब संमूर्तन केन्द्र रहे। योगी ने चेतना के शरीरस्थ केन्द्रों पर अमूर्त की मूर्त रूप में अनुभूति की। धीरे-धीरे परा-भौगोलिक 'कैलास' भौगोलिक 'कैलास' में परिणत होने लगा। यह वस्तुतः संदर्भानुसंधान की एक परंपरा है। वैष्णवभक्ति परंपरा में भी पहले क्षीरसागर, श्वेतद्वीप, गोलोक जैसे पराभौगोलिक संदर्भ स्थलों पर वैष्णव 'भाव' की अवधारणा की गई। धीरे-धीरे भावसंदर्भ का अनुसंधान भौगोलिक परिधियों में सीमित होकर एक जीवन्त स्थूलता प्राप्त करने लगा। ब्रज के भावों के स्थूल सौंदर्यबोध के स्थलीय संदर्भों का अनुसंधान होता रहा। इसी अनुक्रम पर आगे विचार किया गया है। इस अनुसंधान की दो स्थितियाँ स्पष्ट मिलती हैं : पौराणिक भावानुसंधान और भक्तिकालीन भावानुसंधान।

३.१. पुराणों में भावानुसंधान :

ब्रज की सांस्कृतिक संरचना के सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि इस भूमि में संस्कृति के अनेक तत्व रागात्मक होते चले गये। रागात्मक संस्कृति का केन्द्र राधाकृष्ण भाव है। डॉ० सत्येन्द्र के शब्दों में : "इस कृष्ण या राधाकृष्ण संस्कृति का मूल तत्त्व तो अमर्यादित प्रेम है। .... इन्द्र को परास्त कर यहाँ कृष्ण उठे हैं, वैसे ही वेद को और उसकी मर्यादा को छोड़कर यहाँ कृष्ण-प्रेम उभरा है।[१०९] इस मधुर युग्म के साथ ही एक और युग्म कृष्ण-बल्देव का है। पांचरात्र व्यूह कल्पना से आगत यह युग्म गोपाल, गोकुल या गोवर्धन की संस्कृति का केन्द्र रहा। इन दोनों युग्मों पर आधारित भाव संदर्भों

की खोज भक्ति के आचार्यों ने ब्रज में की। खोज की एक दिशा प्रेम-माधुर्य की बनी और दूसरी सख्य-वात्सल्य की। भक्ति के आचार्यों ने जहाँ ब्रज में स्थलान्वेषण का अभियान चलाया, वहाँ उन्होंने भावान्वेषण भी किया : लीला स्थलों का भावन और विभावन भी हुआ। भावान्वेषण का जो कार्य पुराणों ने आरंभ किया था, भक्ति के आचार्यों ने उसे भावन क्रिया से पुनरुज्जीवित किया।

प्रह्लाद, ध्रुव, गरुड़ और अंबरीष जैसे भक्तों के साधना-स्थल ब्रज में मिलते हैं। ये भक्त शान्त या दास भाव की साधना में तत्पर थे। गरुड़ ने इस भूमि में सेवक सेव्य भाव की उपलब्धि की। दुर्वासा और अंबरीष के विवाद में भक्ति-प्रतिष्ठा भी यहीं हुई थी। फिर भी यह भावानुसंधान के क्रम से अलग पड़ने वाले प्रसंग हैं। भावानुसंधान की दृष्टि से दो महानुभाव विशेष उल्लेखनीय है : उद्धव और नारद।

उद्धव को ब्रजगत भावानुसंधान की प्रेरणा स्वयं कृष्ण ने दी। अंततः गोपियों ने उद्धव को अपने भाव में दीक्षित किया। उद्धव ने गोपियों की पद-रज की वंदना उसी प्रकार की[११०] जिस प्रकार गुरुपद-रज की वंदना की जाती है। उद्धव का व्यक्तित्व ब्रज के वात्सल्य भाव और सख्य भाव से भी अभिभूत हुआ था। इस प्रकार उद्धव ब्रज की भावत्रयी [वात्सल्य, सख्य एवं माधुर्य] का प्रतीक बन जाता है। साथ ही उद्धव ज्ञानयोग की परंपरा के रागानुगा पद्धति में संक्रमित होने का प्रतीकत्व भी ग्रहण करता है।

नारद के भावानुसंधान का प्रसंग भी पुराणों में वर्णित है।[१११] नारद ने ब्रज में राधाभाव एवं सखी-भाव का अनुसंधान किया। नारद निकुंजेश्वरी राधा के दर्शन के लिये ब्रज में आये। बालिका राधा ने किशोरावस्था में स्थित होकर उन्हें दर्शन दिया। वर के रूप में नारद ने रास दर्शन की याचना की। राधा की अनुमति से वे रात को कुसुम सरोवर पहुँचे।[११२] समय पर प्रिया-प्रियतम पधारे। लता वृक्षादि सभी नारी रूप हो गये। रूपक शैली में यह रास रस एवं सखी भाव का ही अनुसंधान एवं अनुकथन है।[११३]

वृहद् नारदीय पुराण में यही प्रसंग अन्य प्रकार से दिया गया है।[११४] नारद एक बार अष्ट सखियों की स्थली कुसुम सरोवर आये यहीं वृन्दा की तपोभूमि है। वृन्दा-देवी से नारद ने कृष्ण-रहस्य की जिज्ञासा की। वृन्दा ने अपनी सखी माधवी को यह कार्य सौंपा। उसने पहले नारद को वृन्दासर में स्नान कराया। तदुपरांत नारद नारी रूप में परिणत हो गये। इस रूप में वे कृष्ण के केलि-महल में गये। ललितादि सखियों से सेवित एवं विभूषित कृष्ण ने 'नारदी' से भी रमण किया। इस वृत्त से रास रहस्य रस-केलि

जैसे भावान्वित संदर्भ तो प्रकाशित होते ही हैं, साथ ही यह भी ध्वनित होता है कि कृष्ण की रस-केलियों में केवल नारी का प्रवेश है। इस भाव के अनुसंधान का क्षेत्र गोवर्धन का राधाकुण्ड अंचल रहा। नारद के माध्यम से पुराण ने सखी भाव का पारिभाषिक रूप निष्पन्न किया।

नारद भक्ति भाव के आरंभिक व्याख्याताओं में से हैं। उन्होंने इसी नव-अन्वेषित भाव का व्याख्यान शास्त्रीय सूत्र-पद्धति में किया। नारद ने भक्ति को प्रेमरूपा और अमृत स्वरूपा कहा।[११५] कर्म, ज्ञान और योग से भक्ति को श्रेष्ठ घोषित किया।[११६] आगे भक्ति का शास्त्रीय व्याख्यान करने वाले ग्रन्थों की परंपरा चली जो मध्यकाल तक चली आती है।[११७] पौराणिक संकेतों को पाकर भक्ति के आचार्यों ने भी ब्रज में भावानुसंधान किया।

प्रेमाभक्ति का आलंबन, 'युगल' (राधाकृष्ण) ध्यानियों और तपस्वियों में भी स्वीकृत हुआ। इन पर ध्यान केन्द्रित करके भी 'आसुरि' जैसे तपस्वी मुनि तपस्या में लीन रहते थे।[११८] उनके सामने ध्येय संदर्भ की समस्या खड़ी हो गई थी। एक रात उनके ध्यानकेन्द्र में बार-बार प्रयास करने पर भी युगल प्रवेश नहीं हो सका। अर्थात् अमूर्त के मूर्त भावन में उनकी तपस्या सफल न हो सकी। तब उन्होंने अन्य लोकों में अनुसंधान किया : बदरीखंड (नारायणाश्रम), लोकालोक पर्वत (सहस्त्र सिर वाले अनंत-देव का निवास स्थान) गोलोक (वृन्दावनीय निकुंजों में रहले वाले परात्पर कृष्ण का नित्य स्थान), और ब्रह्माण्ड (प्रश्नगर्भ का अवतार स्थल) लोकों को गये। पर कहीं इष्ट का अनुसंधान न हो सका। अंततः वे कैलास पर्वत पर शिव के पास गये। उन्होंने 'आसुरि' को सूचना दी कि कृष्ण वृन्दावन में सखियों के साथ रास कर रहे हैं। तब शिव और 'आसुरि' दोनों ने ब्रज में रास भाव के अनुसंधान के लिये प्रवेश किया।

दोनों वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य से मुग्ध हो गये। बलिष्ट गोलोक वासिनी लोक सुन्दरियाँ हाथ में छड़ी लेकर रास मंडल का पहरा दे रही थीं। द्वार पालिकाओं ने शिव और 'आसुरि' को रोक दिया और कहा—"रास का सारा वातावरण गोपी यूथों से भरा हुआ है। इस रास मंडल में कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं। गोपियों के अतिरिक्त अन्य सभी का प्रवेश इसमें वर्जित है।" उनके कहने से शिव और 'आसुरि' ने मानसरोवर में स्नान किया : उनको गोपी देह और गोपी भाव की प्राप्ति हुई। गोपी रूप में उन्होंने रास-मण्डल में प्रवेश किया। इस प्रकार इष्ट देव के साक्षात्कार का क्रम नारद के भावानुसंधान के समान ही है। वंशीवट के पास कालिंदी पुलिन इस संदर्भानुसंधान का स्थल।[११९]

३/२ : भक्तिकालीन भावानुसंधान :

३ २.१ :वात्सल्यानुसंधान :

ब्रज में इस भाव का संबंध गोकुल-महावन क्षेत्र से है[१२०] यहाँ कृष्ण की शैशव लीलाओं से संबंधित अनेक चिह्न बतलाये जाते हैं।[१२१] भक्ति काल में इन स्थानों का पुनर्भावन हुआ। आरंभ में किस आचार्य ने इस क्षेत्र में भावानुसंधान किया, यह बतलाना आज कठिन है। आये तो यहाँ चैतन्य महाप्रभु भी थे,[१२२] किन्तु आज इस क्षेत्र में वल्लभ संप्रदाय का प्रमुख केन्द्र है।[१२३] वार्ता साहित्य का निर्माण भी यहाँ हुआ। बालभाव की केन्द्रीय स्थिति इस संप्रदाय में बनी। संभवतः इस क्षेत्र में व्याप्त वात्सल्यभाव की प्रतिष्ठा मुख्य रूप से आचार्य वल्लभ ने की और उसका विस्तार हरिराय जी जैसे आचार्यों ने किया। आचार्य वल्लभ 'सूर' को लेकर भी पहले इसी स्थान पर आये थे। वात्सल्य के अन्यतम गायक इस कवि मन में यहीं वात्सल्य की लीलाएँ स्फुरित हुईं।[१२४] कृष्णदास जी ने गाया 'गोकुल और महाबन की छवि सारद लिखी न जाई।' यहाँ गोविंददास जी ने भी निवास किया।[१२५]

रसखान का भी इस स्थल से घनिष्ठ संबंध प्रतीत होता है।[१२२] इसी क्षेत्र में 'धूरि भरे अति सोभित स्याम जू' तथा या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारों' जैसी भावनाएँ गूँजी थीं। वल्लभ संप्रदाय के भक्त अलीखान पठान और उनकी पुत्री की समाधियाँ भी इसी क्षेत्र में मिलती हैं।

गौड़ीय वैष्णव आचार्यों ने इस भाव रस की सैद्धांतिक विवेचना तो की।[१२७] पर इस भाव को साम्प्रदायिक प्रतिष्ठा चैयन्य सम्प्रदाय में नहीं मिली। इसकी चरम क्रियान्विति और काव्यगत परिणति का श्रेय वल्लभ सम्प्रदाय को ही है। चैतन्य सम्प्रदाय के कवियों का इससे दूर का भी संबंध नहीं रहा। निम्बार्क सम्प्रदाय में कुछ छींटे अवश्य हैं,[१२८] पर "उससे संबंधित रति बालक कृष्ण और राधा के पोषण में सहचरी भाव की नित्य बिहार दर्शन की सुख लालसा ही छिपी है।"[१२९] हरिदासी एवं राधावल्लभ सम्प्रदाय में भी इस भाव की पूर्ण मान्यता नहीं है। औपचारिक रूप से बालभाव का वर्णन मिल अवश्य जाता है।[१३०] पर अंततः सभी संदर्भों का समापन मधुर भाव में हो जाता है।

ब्रजभाषा में रचित रामोपासक भक्त कवियों ने राम और सीता की बाललीलाओं पर पर्याप्त साहित्य रचा है।[१३१] इसका ब्रज से संबंध नहीं है, पर वहाँ भी इस भावना की मुख्य वाहिका ब्रजभाषा ही है।

३.२२. सख्य भावानुसंधान :

इस भाव का अनुसंधान भी ब्रज में वल्लभ सम्प्रदाय ने ही किया। उसका संबंध भी गोकुल महावन क्षेत्र से ही है। इस क्षेत्र में जहाँ सूर एवं परमानंददास जी की वात्सल्यमाधुरी प्रवाहित हुई, वहाँ सख्य की निश्छल सरणियाँ भी विकसित हुईं। जहाँ रसखान ने 'खेलत खात फिरें अँगना' का गायन किया, वहाँ 'लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं' भी गाया। पुष्टि संप्रदाय में वात्सल्य के साथ-साथ सख्य भाव की प्रतिष्ठा भी हुई। ब्रज-सखाओं के सभी भेद-उपभेद[१३२] सूर साहित्य में मिल जाते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में सख्य भावासक्ति की पूर्ण व्यावहारिक परिणति भी मिलती है। इसका प्रमाण अष्ट छाप के कवियों की अष्ट सखाओं के रूप में भावना है।[१३३] वार्ता साहित्य में भी इन कवियों के जीवन में सख्य प्रसंगों के साक्षात्कार की बात आती है। ब्रज के अन्य वैष्णव संप्रदायों में इस भाव की स्वीकृति नहीं है। अन्य सम्प्रदायों में सखियों की मान्यता तो है, पर सखी तत्व का संबंध सख्य भाव से नहीं है।

पुष्टिमार्ग की प्रकट सेवा विधि वात्सल्य और सख्य पर ही आधारित है। संप्रदाय के मंदिरों में आठ झाँकियाँ होती हैं : मंगला, शृङ्गार, ग्वाल और राजभोग तो प्रातःकाल की झाँकियाँ होती हैं और संध्याकालीन झाँकियाँ उत्थापन, भोग, संध्या-आरती और शयन हैं। इनमें प्रातःकाल की प्रथम दो झाँकियाँ तो शुद्ध बालभाव की हैं। ग्वाल और राजभोग में वात्सल्य की स्थिति और सख्य की तैयारी है। राजभोग के पश्चात् ठाकुर जी गोचारण को पधारते हैं। संध्या की झाँकियाँ भी यशोदा के घर की ही हैं। ये झाँकियाँ वात्सल्य और सख्य परक संयोग के क्षणों से संबंधित हैं। इस प्रकार वल्लभ संप्रदाय ने गोकुल-महाबन क्षेत्र की वात्सल्य एवं सख्य भावनाओं की साक्षात् प्रतिष्ठा वल्लभ कुली सेवाविधि में हो गई।

३.२३. गोपी भावानुसंधान :

वल्लभ सम्प्रदाय का दूसरा केन्द्र गोवर्धन-जतीपुरा में है। यहीं श्रीनाथ जी के विग्रह की स्थापना की गई। पौराणिक दृष्टि से यह क्षेत्र गोपी भावापन्न है।[१३४] अनुश्रुतियों के अनुसार भी गोपी भाव की विवृत्ति इसी क्षेत्र में हुई।[१३५] गोपियों की प्रेमाभक्ति ऐश्वर्य ज्ञान से मुक्त थी। अन्य भावों की स्थिति अन्यत्र हो सकती है,[१३६] पर शुद्ध गोपीभाव की निष्पत्ति ब्रज या गोकुल में ही संभव है।[१३७] गोपियों की प्रेमाभक्ति को नवधा भक्ति से परे 'दशधा' भक्ति कहा गया है।[१३८] इसलिये प्रेमा-भक्ति का आदर्श गोपियों में ही मिल सकता है।[१३९] ब्रजवासियों की भक्ति-प्रीति गोपिका भाव की ही थी।[१४०] नारद ने 'यथा ब्रज गोपिकानां' कहकर गोपीभाव को उच्च

न्तर प्रदान किया। उद्धव ने 'वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णश:' कहकर उन्हें आचार्य के रूप में वरण किया। इसी गोपीभाव का केन्द्र वल्लभ सम्प्रदाय ने 'जतीपुरा' में स्थापित किया।

आचार्य वल्लभ ने उद्धव का अनुसरण करते हुए गोपियों को अपना भाव-गुरु माना—'गोप्यस्तु अस्माकं गुरुः।'[१४१] आचार्य जी ने अपनी गोपी भावापन्न साधना के फल के रूप में गोपियों की विरह वेदना की आकांक्षा की।[१४२] इसलिए संप्रदाय में गोपी-विरह की अवस्था इष्ट बन गई। श्री हरिराय जी ने पुष्टिमार्ग की परिभाषा विरह के आधार पर दी है : जहाँ भगवान की विरहावस्था में, भक्त भगवान की लीला की अनुभूति मात्र से ही संयोगावस्था का सुखानुभव करता है, वही पुष्टिमार्ग है।[१४३]

मंदिरों की सेवा-विधि में भी प्रत्यक्ष झाँकियों के साथ परोक्ष रूप में से गोपी-भाव के विरह और संयोग गूँथ दिये गये : "राजभोग के बाद जैसे श्री ठाकुर जी गोचारन वन में पधारते, तब ब्रजभक्त श्री ठाकुर जी के वियोग में वेणुगीत युगल गीत गान करतीं। शाम को जब ठाकुर जी ब्रजभक्तों को सुखदानार्थ पीछे व्रज में पधारते तब ब्रज-भक्तें आनंद से दर्शन करतीं। वैसे ही पुष्टिमार्ग में सेवा समय सेवा दर्शन करें और 'अनोंसर' में श्री ठाकुर जी संबंधी क्लेश (वियोगार्ति) करें और इसी प्रकार शाम को श्री ठाकुर जी शयन पश्चात् शुद्ध मन करके रासलीला, मानलीला आदि मन मे भावना करें, साक्षात् और परोक्ष दोनों समय के स्वरूप संवलित कर सेवा करें। सेवा के समय साक्षात्स्वरूप की सेवा कर संयोग रस का अनुभव करे। अनोंसर में कुंज की लीला विचार-विचार कर वियोग रस स्वरूप का अनुभव करें।"[१४४] इस प्रकार वल्लभ संप्रदाय की प्रत्यक्ष सेवा संयोग अनुभव के लिये हैं, जिनमें वात्सल्य और सख्य की भावना ओत प्रोत है। गोपी-भाव की सेवा परोक्ष है। यह विरह की भावना से विकल रहती हैं। विप्रयोग के समय वेणुगीत, मंगलगीत और गोपिकागीत का गायन रहता है।

संप्रदाय में गोपियों की मान्यता श्रुति-ऋचाओं के रूप में है।[१४५] गो० बिट्ठलनाथ जी ने ऋचाओं के आग्रह पर ही भगवान के अवतार की बात कही है।[१४६] इस अवस्था में श्रुतियाँ गोपियों के रूप में अवतरित हुईं।[१४७] वल्लभाचार्य जी ने गोपीतत्व की विस्तृत व्याख्या की है।[१४८] ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं वल्लभाचार्य जी ने गोकुलाश्रित बालभाव और सख्यभाव को मंदिर की प्रत्यक्ष सेवा के लिए और गोपी-भाव को निजी, गोपनीय साधना के रूप में स्वीकार किया। इनमें से प्रथम का अन्वेषण उन्होंने गोकुल क्षेत्र में, और दूसरे का गोवर्धन क्षेत्र में किया। 'गोपीभाव को जितनी शक्ति के साथ इस संप्रदाय ने स्थापित किया, उतना उसके समकालीन किसी भी अन्य सम्प्रदाय ने नहीं किया।[१४६]

संभवतः चैतन्य ने भी गोपीभाव का अन्वेषण राधाकुण्ड क्षेत्र में किया। गौड़ीय सम्प्रदाय का यह केन्द्रीय भाव है। सिद्धांत निरूपण में इसी भाव का प्रमुख स्थान रहा है। भागवत में जिस गोपीभाव को सर्वोपरि कहा गया गया है, उसको शास्त्रीय पद्धति में ढालने का श्रेय बंगाली वैष्णवों को ही है। गोपीभाव का क्रमिक संक्रमण राधाभाव में हो जाता है। अनेक बंगाली वैष्णव भावान्वेषण, रस-निरूपण और साधना के लिये ब्रजवास करने लगे थे। गोपीभाव के सिद्धांत-निरूपण में गौड़ीय गोस्वामियों ने ब्रज में प्रचलित लोकवार्ता की भी उपेक्षा नहीं की।[१५०] आचार्यों ने कहा कि ब्रज-वासियों की प्रीति गोपिका भाव की ही है।[१५१]सभी को इसी भाव से साधना करनी चाहिए। इस साधना के लिये उपयुक्त स्थान ब्रज है। संभवतः नारद के 'यथा ब्रज गोपि-कानां' शब्द गौड़ीय वैष्णवाचार्यों के लिये प्रेरणा बन रहे थे।

जहाँ गौड़ीय आचार्यों ने 'भगवत संदर्भ' में पौराणिक भाव तत्त्व को लोक-मानसीय और लोक साहित्यक तत्वों से समन्वित करके निरूपित किया, वहाँ 'श्रीकृष्ण-संदर्भ'[१५२] में कृष्ण लीला से संबंधित स्थानों, व्यक्तियों आदि का परिगणन और तत्त्व निरूपण किया। उन्होंने स्थानों में गोकुल (=गो लोक) को सर्वोपरि माना है।[१५३] गोलोक में जहाँ कृष्ण का केवल अप्रकट रूप रहता है, वह गोकुल में प्रकट-अप्रकट दोनों रूप रहते हैं।[१५४]

गौड़ीय संप्रदाय में परकीया भाव मान्य है। इस संप्रदाय के आचार्यों की मान्यता है कि यह भाव ब्रज के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं प्रतिफलित नहीं हो सकता है।[१५५] इस रस का आश्रयत्व केवल ब्रज गोपियों को ही प्राप्त है। इस प्रकार गौड़ीय आचार्यों और भक्तों ने भक्ति-दर्शन की व्यावहारिक परिणति के लिये, गोकुल, वृन्दाबन या ब्रज में भावानुसंधान को आवश्यक समझा।

निम्बार्काचार्य का गोवर्धन निवास उनके भावान्वेषण की दिशा का प्रतीक है। सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार निम्बार्काचार्य जी भक्तिकाल में युगलोपासना के अग्रदूत थे। प्रमाणस्वरूप दशश्लोकी का पाँचवाँ श्लोक प्रस्तुत किया जाता है—'अंगे तु वामे वृषभानुजामुदा।' कुछ विद्वानों को यह तर्क स्वीकार्य नहीं है।[१५६] वस्तुतः निम्बार्काचार्य जी की भावना और साधना का रसोन्मुख विकास हुआ प्रतीत होता है। जिन आचार्यों को पहले सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता था, वाणी साहित्य में उन्हें रंगदेवी सखी का अवतार कहा गया है। इस प्रकार शक्ति एवं ऐश्वर्य के प्रतीक उपास्य की ओर से हटकर उनका व्यक्तित्व गोपी भाव में समर्पित हो गया था। जिस गोपी भाव का बीजा-न्वेषण इन्होंने गोवर्धन (नींमगाँव) में किया, उसका पूर्ण पल्लवन वाणी साहित्य में मिलता है। 'महावाणी में लीलास्थली वृन्दाबन को ही वंदनीय माना गया है।[१५७] दक्षिण से

गोवर्धन, गोवर्धन से वृन्दाबन—ये भाव-विकास की स्थलीय कड़ियाँ ही हैं। इस संप्रदाय में ब्रज लीलाओं से संबद्ध गोपीभाव भी हैं और अंततः उसका विकास निकुंज लीलाश्रित सखी भाव के रूप में हुआ।

३.२४. राधाभाव का अन्वेषण :

३.२४१. पूर्वाभास :

श्री मद्भागवत में राधाभाव का अन्वेषण नहीं है : वह गोपीभाव की प्रतिष्ठा करने वाला ग्रन्थ है। 'अनयाराधितो' पद के आधार पर भागवत में राधाभाव खोजने का विफल प्रयत्न किया गया है।[१५८] राधाभाव और गोपीभाव की संरचना और प्रकृति में ही अन्तर हैं। विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण में भी रास हैं, पर रासेश्वरी राधा का उल्लेख नहीं है। ब्रह्मवैवर्त,[१५९] पद्म, वराह आदि पुराणों में राधा का अन्वेषण है। ब्रह्मवैवर्त में राधा की आदि स्थिति गोलोक में तथा अवतरित स्थिति वृन्दाबन में भी मानी गयी है।[१६०] 'राधा वराह कल्प' में गोकुलस्थ वृषभानु-गृह में राधा के अवतार की बात कही गयी है। इसमें 'रायाण' के साथ राधा का विवाह भी वर्णित है। इससे राधा के परकीया भावानुसंधान का संकेत मिलता है। परकीया भाव की परिष्कृति के लिये कहा गया है : राधा अपनी छाया वृषभानुसुता में रख गई थी और स्वयं कृष्ण के पास ही रही।[१६१] पद्मपुराण में राधाकृष्ण के युगल ध्यान का अन्वेषण है।[१६२] पुराणों में आये राधा नाम रस-रासपरक, कृष्णपरक, चन्द्रपरक और वृन्दाबनपरक हैं—वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दाबन-विनोदिनी आदि। इस प्रकार पुराणोक्ति राधाभाव वृन्दाबन से संबद्ध हो जाती है। राधा से अनंत गोपियों का प्रादुर्भाव भी हुआ। राधा के बिना कृष्ण की पूजा असंभव बतलाई गई।[१६३] इस प्रकार युगल ध्यान की प्रतिष्ठा की गई। राधा के पिता वृषभानु बरसाने के निवासी थे। किंवदन्ती के अनुसार 'रावल' इनका पूर्व निवास स्थान था।[१६४] दोनों ही स्थानों पर राधा के दर्शन हैं। भक्तिकाल में राधाभाव के अन्वेषण के स्थान मुख्यतः बरसाना और वृन्दाबन बने।

संस्कृत साहित्य में राधा के चित्रण की दीर्घ परम्परा मिलती है।[१६५] इस परंपरा में ब्रज, गोपी, और राधा परस्पर संबद्ध तत्त्व हैं। साहित्यिक परंपरा ने राधा को एक साहित्यक नायिका के गुणों से विभूषित कर दिया। रासपरायणा और कृष्णप्रिया तो वह है ही, विरहिणी, कलाकुशला आदि विशेषण भी राधा से संलग्न हो गये। कृष्ण राधा के प्रेमी भी हैं और अनुगामी भी। साहित्यिक परंपरा में पुराण भाव का अनुगमन-अनुसरण हैं, अन्वेषण नहीं है।

राधा को ज्योतिष ने एक और प्रतीकत्व प्रदान किया।[१६६] तंत्र ने भी राधा के प्रतीकत्व को दिशा दी।[१६७] राधा के प्राधान्य का स्रोत राधिकोपनिषद् और शक्तिवादी साहित्य है। राधिकोपनिषद् में कृष्ण की आराध्या के रूप में राधा की प्रतिष्ठा है। साथ ही दृढ़ता से युगल भाव की उपासना का समर्थन है।[१६८] भक्ति काल की सम्मान्या राधा का पूर्व रूप शक्तिवादी दर्शन मे मिलता है।[१६९] शैव शक्तिवाद का संक्रमण ही जैसे वैष्णव शक्तिवाद[१७०] में हुआ। शक्तिवाद में नारी पूजा का प्राधान्य है। स्त्री-पुरुष दोनों ही अपने को त्रिपुर सुन्दरी समझते हैं। इस प्रकार भक्तिकालीन सखी भाव का मूलरूप शक्तिवादी साहित्य में मिल जाता है। विद्वानों ने काश्मीरी शैव दर्शन का प्रभाव भी राधाभाव पर माना है।[१७१] राधा कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है।

३.२.४.२. चैतन्य की खोज :

राधाभाव की भक्तिकालीन स्थिति का आविर्भाव बंगाल में श्री चैतन्य के द्वारा हुआ। उनकी विचार धारा पर आल्वार साहित्य, जयदेव के 'गीतगोविंद', चंडीदास के साहित्य और विद्यापति की 'पदावली' का प्रभाव पड़ा। आल्वार साहित्य में 'नाप्पिन्नइ' (=राधा), 'कुरवैकुट्टु (=रास) की प्रधान नायिका है। जयदेव ने राधा की रूप माधुरी का गायन सर्वाधिक किया है। यमुना तटवर्ती निकुंज वृन्दाबन आदि भी इस काव्य में लहलहा रहे हैं। इसमें प्रेम ही परम तत्त्व है : लोक लाज त्याज्य है। विरहिणी राधा के कतिपय मर्मस्पर्शी चित्र तो हैं, पर मुख्यता संयोग पक्ष की है। गीत गोविंद की राधा-पद्धति ब्रह्मवैवर्त से मिलती-जुलती है। चंडीदास की राधा परकीया है। सहजिया वैष्णव दर्शन की गहरी छाया राधा के इस चित्रण पर है। संयोग-वियोग की अत्यन्त भाव-विकल झाँकियाँ चडीदास ने दी हैं। चंडीदास की राधा के साथ ब्रज-परिवेश अत्यन्त झीना है। राधा के पिता भी वृषभानु नहीं हैं। विद्यापति की राधा को काव्य शास्त्रीय संस्कार अधिक मिले हैं। चैतन्य ने पहले इस साहित्य में राधा का भावान्वेषण किया। इस भावान्वेषण में पुराण साहित्य ही नहीं, लोक साहित्य का समावेश भी हुआ।

चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्यों ने राधा के 'शक्तित्व का विस्तृत विवेचन किया है। [१७२] स्त्रीरूप नैज शक्तियों से भगवान वृन्दाबन में विलास करते हैं। शक्ति कल्पना पुराणों के गोपीभाव और राधाभाव दोनों में विकसित हुई। राधापरक शक्तिवाद को पुराणों से नहीं, शक्तिवाद, सहज-मत और लोक साहित्य से प्रेरणा, शक्ति और सामग्री मिली। चैतन्य मत में गोपीभाव और राधाभाव का सामंजस्य है, पर राधाभाव, भावी-विकास की संभावनाओं से अधिक संयुक्त है। राधाकृष्ण का तात्विक ऐक्य और लीला-र्थक वैभिन्य इस सम्प्रदाय में मान्य है। [१७३] राधाभाव के साथ वृन्दाबन के महत्त्व की विज्ञप्ति भी हुई। अनेक बंगाली वैष्णव राधाभाव की खोज में वृन्दाबन की ओर चल

पड़े।[१७४] राधाभाव के प्राधान्य में सखी भाव के बीज, विकास के लिये कुलबुलाने लगे। धीरे-धीरे ब्रजलीला और गोपीभाव गौण होते गये, एवं राधाभाव तथा सखीभाव प्रमुख।

चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण लीला के प्राय: सभी भावों का रसायन है। इस रसायन का अन्वेषण ब्रज के अनेक स्थलों पर हुआ। अधिकांश साधक, भक्त एवं कवि वृन्दाबन में ही बस गये। राधाभाव की खोज का दूसरा क्षेत्र 'राधाकुण्ड' बना। तीसरा क्षेत्र बरसाने का है। नारायण भट्ट का भावानुसंधान बरसाना क्षेत्र में ही चला। इनका तथा नारायणदास श्रोत्रिय का सम्बन्ध यहाँ के लाड़िली जी के मंदिर से घनिष्ठ रहा। किशोरीदास जी का निवास भी यहीं रहता था। लाड़लीदास जी के बनाये हुये अनेक पदों का गायन आज भी लाड़िली जी के मंदिर में होता है।

बरसाने के पास ही 'ऊँचागाँव'[१७५] में चैतन्य सम्प्रदाय की एक गद्दी भी थी। यहाँ नारायण भट्ट जी की समाधि भी है। इसी गद्दी के अधिकारी श्री गोपाल भट्ट एक अच्छे कवि भी थे। इस प्रकार चैतन्य एवं उनके अनुयायियों द्वारा राधा भावान्वेषण के केन्द्र वृन्दाबन, राधाकुण्ड और बरसाना बने।

३.२.४.३. वल्लभ सम्प्रदाय :

जहाँ तक वल्लभ सम्प्रदाय का संबंध है, इसमें बालभाव, सख्यभाव एवं गोपीभाव की मान्यता रही। आरम्भ में आचार्य जी ने भागवत के अनुकरण पर राधा की नहीं, 'पशुपजा' गोपकन्या की चर्चा की थी।[१७६] पर, बिट्ठलनाथ जी ने राधाभाव को पूर्णत: स्वीकार कर लिया।[१७७] गोस्वामी जी की प्रेरणा से सम्प्रदाय के कवियों ने इस भाव से समन्वित अनेक पदों की रचना की है। इन कवियों में प्रकृति और पुरुष के शाश्वत संबंध का भी संकेत है और 'युगल' भावना का भी बीज है।[१७८] फिर भी यह कहा जा सकता है कि इस सम्प्रदाय ने राधाभाव का ब्रज में अन्वेषण नहीं किया, केवल ग्रहण किया है। वल्लभाचार्य जी का जो कान्ताभाव गोपियों से सम्बन्धित था, वह अब राधा से सम्बद्ध हो गया।

३.२.४ ४. निम्बार्क सम्प्रदाय :

वल्लभ सम्प्रदाय की भाँति इस सम्प्रदाय में भी पहले प्रगाढ़ रसोपासना नहीं थी। पीछे इसका प्रवेश प्रबल रूप से हुआ। श्री भट्ट की आदिवाणी और हरिव्यास देव की महावाणी, रसोपासना के साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। इन्हीं ग्रन्थों ने वैधी भक्ति के स्थान पर, रागपरक व्यवस्था की स्थापना की। वृन्दाबन के अन्य रसाश्रयी सम्प्रदायों का

प्रभाव भी इसका कारण माना जा सकता है। इसमें गौड़ीय वैष्णवों की समन्वित पद्धति की छाया मिलती है।

सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार 'सर्वेश्वर'[१७६] आह्लादिनी शक्ति राधा के साथ बिहार करते हैं।[१८०] वे कृष्ण की स्वकीया हैं।[१८१] यह तत्त्व इस सम्प्रदाय की राधा-संधारणा को गौड़ीय सम्प्रदाय से पृथक करता है। युगल भावना निकुंजवादी सम्प्रदायों के समान हैं। सम्भवत: वंशीबट पर राधा-भावना का अन्वेषण इस सम्प्रदाय ने किया है। वैसे वृन्दाबन को नित्य बिहार एवं निकुंज-सुख-सार कहा गया है।[१८२]

३.२.४.५. राधा वल्लभ सम्प्रदाय :

सम्प्रदाय प्रवर्तक श्री हित हरिवंश जी ने स्वयं राधा जी से गुरुमंत्र लिया।[१८३] नाभादास जी ने इनकी राधा परक आसक्ति को ही इनके व्यक्तित्व का प्रधान तत्त्व माना है।[१८४] इस सम्प्रदाय में कृष्ण की आराध्या के रूप में राधा को प्रतिष्ठा है।[१८५] राधा भाव या रस रूप भी है। राधा भाव को समस्त दार्शनिक ऊहापोह से मुक्त करके, इस तत्त्व का शुद्ध रस पद्धति से बोध कराने का श्रेय इस सम्प्रदाय को है। राधा के केलि-कुंजों का आविष्कार और अन्वेषण वृन्दाबन में स्वयं हित जी ने किया। यह स्थापित किया गया कि राधाभाव की सम्प्राप्ति वृन्दाबन से बाहर सम्भव ही नहीं है।

३.२.४.६. हरिदासी सम्प्रदाय : (सखी सम्प्रदाय)

निकुंजेश्वरी राधा के महाभाव की खोज में इस सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान रहा। इस सम्प्रदाय की राधा ब्रज और रास की राधा से भिन्न निकुंज-बिहार-रता राधा है। कृष्ण का अपना सौंदर्य कुछ नहीं, वह तो राधा की प्रतिच्छाया है।[१८६] जहाँ राधा के चरण पड़ते हैं, वहाँ कृष्ण का मन छाया रहता है।[१८७] कृष्ण को इस बात का भय बना रहता है कि कहीं राधा रुष्ट न हो जायें—'मति कबहूँ कुमया करि जांति।' इस प्रकार कृष्ण की आलंबन राधा हैं। कृष्ण प्रिया-चरणों में विनत हैं : रस-याचक हैं : ब्रजराज उनकी प्रजा हैं। राधा से सम्बन्धित निकुंज का अन्वेषण इस सम्प्रदाय ने भी किया।

३.२.४७. ललित सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय ने राधा भाव को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। राधा परमतत्त्व के रूप में उपास्या हैं। वे ब्रह्म और भगवान की भी रचने वाली हैं।[१८८] कृष्ण के प्रति राधा का जो पत्नी भाव दिखलाई पड़ता है, वह तो लीला स्वादनार्थ है।[१८९] अन्यथा कृष्ण राधा के भक्त हैं।[१९०]

३.२.५ सखी भावानुसंधान :

कृष्ण लीला की दो साहित्यिक परम्पराएँ ज्ञात होती हैं : एक ब्रज लीला गायन की और दूसरी निकुंज लीला गायन की। पहली परम्परा भागवत आदि वैष्णव पुराणों एवं उससे प्रभावित परवर्ती साहित्य में प्रकट हुई है और दूसरी का सम्बन्ध सम्भवतः आभीर संस्कृति, लोक साहित्य और लोक मानस से प्रतीत होता है। पहली में केन्द्रीय स्थिति 'गोपी' और कृष्ण की थी और दूसरी में राधा और सखी तत्त्व प्रधान है। पहली परम्परा में कृष्ण उपास्य है और दूसरी में या तो 'युगल' तत्त्व या अकेली राधा। पहली में साधना का लक्ष्य रास में सम्मिलित होने की पात्रता साध्य है और दूसरी का लक्ष्य है 'युगल-केलि-रस।' ब्रज भूमि में सखी भाव का अन्वेषण और निरूपण भी हुआ।

यह अन्वेषण कार्य आरम्भ तो चैतन्य सम्प्रदाय ने कर दिया था। राधा वल्लभ सम्प्रदाय और हरिदासी (=सखी) सम्प्रदाय में इसकी चरम परिणति प्रदान की गई। काव्य शास्त्रीय एवं काम शास्त्रीय शृङ्गार का आध्यात्मिक उन्नयन और उसकी साहित्यिक निष्पत्ति इसी भाव के अन्तर्गत हुई। गोपी भाव में आध्यात्मिक प्रतीकत्व अधिक उभरता है। सखी भाव वाले आचार्यों ने न तो भागवत के रस-परक भाष्यों में ही रुचि ली और न 'प्रमाणों' की ऊहापोह में ही प्रवेश किया। इन्होंने प्रतीक स्थापन, सिद्धांत निरूपण और दार्शनिक विवेचन में पड़ना न उचित समझा और न आवश्यक। यदि पीछे ऐसा हुआ भी तो परम्परा के अपवाद के रूप में। इस प्रकार सखी भाव दार्शनिक गुत्थियों से स्वतन्त्र रहकर अपना स्वच्छन्द रस-परक विकास कर सका। इस स्वच्छन्द रूप को साहित्यिक आकार यदि जयदेव और ब्रज भाषा के रसिक भक्तों ने दिया, तो साधना के रूप में इसकी प्रतिष्ठा श्री हित हरिवंश और स्वा० हरिदास के सम्प्रदायों में हुई। भाव, काव्य, संगीत एवं साधना का अभूतपूर्व रसायन प्रस्तुत हुआ। सखी भाव ब्रज की मौलिक देन मानी जा सकती है।

३.२.५.१. पुराण स्तर :

सखी भाव की आरम्भिक खोज पुराणों में वर्णित है। इस तत्त्व का बोध 'वृन्दा' को था। वृन्दा की साधना भूमि ही 'वृन्दाबन' है।[१६१] इसी में आकर नारद ने सखी-भाव की पद्धति से कृष्ण रहस्य का साक्षात्कार किया था। सखी भाव की मूल मान्यता है—पुंभाव से कृष्ण लीला का सान्निध्य लाभ नहीं हो सकता। साधक को नारी रूप में भावात्मक प्रवेश लेना पड़ता है। नारद को भी नारी रूप में प्रविष्ट होना पड़ा।[१६२]

३.२.५.२. भक्ति सम्प्रदाय :

चैतन्य निम्बार्क एवं वल्लभ, इन तीनों आचार्यों की आरम्भिक स्थिति सखी-भावापन्न गोवर्द्धन क्षेत्र में दिखलाई पड़ती है। वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों की आरंभिक एकता के प्रमाण भी मिलते हैं। यह प्रायः सर्वमान्य है कि वल्लभाचार्य जी का सम्बन्ध विष्णु स्वामी और उनके सम्प्रदाय से था। पं० गदाधर दास जी ने चैतन्य सम्प्रदाय को विष्णु स्वामी सम्प्रदाय का उपसम्प्रदाय कहा है।[१९३] यह दोनों का उत्सगत साम्य है। वल्लभ और चैतन्य की भेंट के उल्लेख भी मिलते हैं। श्री नाथ जी की सेवा भी पहले बंगाली भक्तों के हाथ में थी बिट्ठलनाथ जी के समय में जब रूप और सनातन वृन्दावन में प्रेमाभक्ति का निरूपण कर रहे थे, तब बिट्ठलनाथ जी ने भी साम्प्रदायिक भावभूमि के माधुर्याश्रित रूप का निरूपण और प्रकाशन किया। 'कूट' गायक सूर की वाणी से यही रहस्य फूटा। यह सब नितांत आकस्मिक नहीं था। दोनों ही सम्प्रदायों ने सखी भाव का अन्वेषण गोवर्द्धन क्षेत्र में किया।

इन दोनों ही सम्प्रदायों में पहले सख्य भाव दो रूपों में अवतरित हुआ : सखा और सखीभाव। दोनों ही सम्प्रदायों के प्रमुख व्यक्तित्व इन दोनों को ही आश्रय बनकर द्विधा भावित थे। चैतन्य में स्वयं कृष्ण भाव[१९४] और राधा भाव का आवेश था। इसी प्रकार वल्लभाचार्य जी में कृष्ण (वस्तुतः कृष्ण एव) तथा 'स्वामिनी'[१९५] जी का समावेश था। इसी प्रकार इनके प्रिय पार्षद भी दुहरे आश्रयत्व में प्रतिष्ठित थे।[१९६] दोनों सम्प्रदायों में चाहे अष्ट सखियों के नाम भिन्न हों,[१९७] पर भाव-कल्पना में पर्याप्त साम्य है।

चैतन्य सम्प्रदाय ने इस भाव का अनुसंधान बरसाना क्षेत्र में भी किया : बरसाना के आस पास उन्होंने अष्ट सखियों के गाँवों की खोज की। ये ही 'मंजरियों' के रूप में खोजी गईं। पीछे चैतन्य सम्प्रदाय का सखी भाव आधुनिक वृन्दाबन में केन्द्रित हो गया।

माध्व सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा में माधवेन्द्र और ईश्वरपुरी का नाम आता है। इनका सम्बन्ध चैतन्य से हुआ। बल्देव विद्याभूषण ने इन दोनों सम्प्रदायों के सम्बन्ध की घोषणा की है।[१९८] कुछ विद्वान इन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं मानते।[१९९] पर माधवेन्द्र ने बङ्गाल में रहस्यपूर्ण भक्ति का प्रचार अवश्य किया था।[२००] चैतन्य और माधवेन्द्र पुरी की भेंट सखी भावाविष्ट गोवर्द्धन क्षेत्र में भी हुई।[२०१] माधवेन्द्र पुरी ने अपने रसान्वेषण से मध्व सम्प्रदाय का नवीन भाव संस्कार किया। इनकी रस-रहस्यपूर्ण भक्ति में सखीभाव के तत्त्व ही प्रमुख थे।

निम्बार्काचार्य की भावना में जिस उपास्य का रूप खड़ा होता है, और जिसका प्राकट्य गोवर्द्धन क्षेत्र में हुआ, वह राधा और सखी तत्वों से आवेष्ठित है। केन्द्रस्थ युगल मूर्ति सखियों से सेवित है।[२०२] दाक्षिणात्य निम्बार्क की सखी भावापन्न परिणति इसी गोवर्द्धन क्षेत्र [=वृन्दाबन] में हुई। परवर्ती साम्प्रदायिक साहित्य इस भाव के सघन कणों से सजल हैं।

इस प्रकार चैतन्य, वल्लभ, निम्बार्क एवं मध्व सम्प्रदायों के अनुयायियों ने गोवर्द्धन क्षेत्र में सखीभाव और तत्व का अन्वेषण किया। पीछे इस भाव का प्रमुख केन्द्र आधुनिक वृन्दाबन बना। वृन्दाबन के राधावल्लभ सम्प्रदाय में सखी भाव की एकांत प्रतिष्ठा है। सखियाँ उज्जवल अद्भुत् रस पूर्ण वृन्दाबन में निवास करने की उत्कट कामना करती हैं।[२०३] इस सम्प्रदाय में गोपीभाव से इस भाव को दुर्लभ बतलाया गया है।[२०४] अपने आध्यात्मिक रूप में श्री-पुरुष रूप और लिंगभेद विवर्जित हैं।[२०५] सम्प्रदाय में अष्ट सखियाँ मान्य हैं जिनके नाम चैतन्य सम्प्रदाय से साम्य रखते हैं। आधुनिक वृन्दाबन में शुद्ध सखी भाव की खोज और स्थापना हित हरिवंश जी ने की।[२०६] शुद्ध से तात्पर्य यह है कि गोवर्द्धन क्षेत्र में सखा और सखी दोनों भावों को आश्रय प्राप्त था और अब मात्र सखी का अस्तित्व रह गया। सम्प्रदाय के अनेक सेवक देश के विभिन्न भागों से आकर वृन्दाबन में सखी भावापन्न रसोपासना करने लगे।[२०७] अनेक कवियों ने अपने पुल्लिङ्ग नामों को छोड़कर सखी रूप में स्त्री लिंग नाम ग्रहण किये।[२०८] भौतिक वृन्दाबन सखियों और सखी भाव से भर उठा।

हरिदासी सम्प्रदाय का तो नाम ही 'सखी सम्प्रदाय' हो गया। इसके प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी सखी भावावेश में स्थित होकर युगलोपासना में निरत रहते थे।[२०९] युगल तत्व, निकुञ्ज बिहार, राधा प्राधान्य जैसे तत्व इस सम्प्रदाय में दृढ़ता से ग्रहीत हैं। हरिदास जी ने अपने प्रकृत व्यक्तित्व को 'हरिदासी' सखी के व्यक्तित्व में संक्रमित कर दिया था।[२१०] इसी सम्प्रदाय ने वृन्दाबन की केलि-स्थली के रूप में सबसे अधिक प्रतिष्ठा की। इस सम्प्रदाय के कवि-भक्त भी स्थान-स्थान से आकर वृन्दाबन में स्थायी निवास करने लगे।[२११]

ब्रज में ही आविर्भूत हुए दोनों सम्प्रदायों की साधना की भावभूमि बहुत कुछ समान हैं फिर भी दोनों में कुछ अंतर किये गये हैं।[२१२] राधा वल्लभ सम्प्रदाय की भावना में ब्रज लीलाओं का पलोथन आरम्भ में लगा रहा। किन्तु हरिदासी सम्प्रदाय में शुद्ध सखी भाव की प्रतिष्ठा रही। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में सखियों को बहु-संख्यक बनाने की प्रवृत्ति मिलती है।[२१३] हरिदासी सम्प्रदाय में इस प्रकार का प्रयत्न नहीं मिलया। राधावल्लभ सम्प्रदाय के रसिकों ने राधा और वृन्दाबन को हरिदासी

सम्प्रदाय की अपेक्षा अधिक उत्कर्ष दिया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में गुरुत्व की स्थापना राधा में है और हरिदासी सम्प्रदाय में ललिता को गुरु माना गया है।[२१४] वृन्दाबन में ही उद्भूत ललित सम्प्रदाय में इन दोनों का समन्वय है। ललिता में गुरुत्व की मान्यता भी है और राधातत्व की भी प्रतिष्ठा है।[२१५]

वृन्दाबन में जिस सखी भाव की एकांत प्रतिष्ठा हुई। उससे रामभक्ति शाखा भी प्रभावित हुई।[२१६] शुक्र सम्प्रदाय[२१७] जैसे निर्गुण सम्प्रदाय भी इसके प्रभाव से नहीं बचे। इस सम्प्रदाय में योग और निर्गुण के तत्व सखी भाव के आवेश से भर उठे हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भक्ति के प्रायः सभी आचार्य अथवा उनके अनुयायियों ने ब्रज में स्थलीय भाव-संदर्भों का अन्वेषण किया। पहले भावान्वेषण तीन केन्द्रों पर हुआ : मथुरा, गोकुल, गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, और बरसाना-कामवन। पीछे निकुञ्ज वृन्दावन का अन्वेषण हुआ। स्थलान्वेषण में कृष्ण की ब्रज लीला से संबद्ध भाव उभरते रहे। ज्यों-ज्यों निकुंज भावना प्रबल होती गयी त्यों-त्यों राधा-भाव और सखी-भाव सभी भावों पर छाने लगे। इसी निकुञ्ज भावना और सखी भाव ने समस्त भक्ति दर्शन और भक्ति-साधनाओं को आच्छादित कर दिया। साहित्य भी इन्हीं भावों की प्रतिकृति और बनने लगा। रीति कालीन कवि की रस-दृष्टि बहुत कुछ निकुञ्ज भावना से अनुशासित है। ब्रज-लीला के भाव-सन्दर्भ अपनी नाम मात्र की स्थिति रखते हैं। ब्रज-लीलाओं के गायक भी धीरे-धीरे निकुञ्ज रस में लीन हो गए।

४ रसान्वेषण

४.१ रसावतार और ब्रज :

अवतार किसी सूक्ष्म, अमूर्त अथवा असीम तत्त्व की स्थूल, मूर्त अथवा ससीम रूप में अभिव्यक्ति है। ब्रह्म की रस रूप औपनिषदिक कल्पना (रसो वैसः) में रसावतार का बीज-विंदु निहित है। श्रौत विकास क्रम की शृङ्खला यह है : असत् ▷ सत ▷ सुकृत—रस।[२१८] रस रूस ब्रह्म 'रस' से तृप्त भी होता है।[२१९] रसात्मक लीला अकेले सम्पन्न नहीं हो सकती (एकाकी नैव रमते। अतः ब्रह्म 'अनेक' में व्यक्त हुआ (सोऽकामयत एकोऽहं बहु स्याम्)। यही रसावतार की मूल योजना है।

रसावतार कृष्ण है। रसावतार कृष्ण आह्लादिनी शक्ति रूपा तथा अपनी ही आत्मा रूपा राधा में रमण शील हैं।[२२०] यह रसात्मक लीला पुराण और साहित्य में मान्य हुई। श्रुति रूपा गोपियों ने भी कृष्ण से आग्रह किया कि वे वृन्दाबन में उनके साथ रस-बिहार करें।[२२१] रसावतार कृष्ण बैंकुण्ठ बिहारी विष्णु नहीं, गोलोक के नित्य

विलासी परब्रह्म हैं। रसावतार कृष्ण लक्ष्मी-कुचमंडल-आश्रित हो गये।[२२२] कृष्ण श्रृङ्गार-सर्वस्व हो गये और उनके अवतार का लक्ष्य श्रृङ्गार-लीला-सम्पादन मान लिया गया।[२२३] यह रस लीला व्रज-वृन्दावन में सम्पन्न होती हैं। इस लीला सुख के लिए राधा कृष्ण (युगल) बार-बार व्रज में आते हैं।[२२४] यह लीलारस भक्तों, आचार्यों और कवियों के लिए परम काम्य हो गया।

वृन्दाबन की मान्यता सर्व श्रृङ्गार दायक स्थल के रूप में हो गई।[२२५] यमुना में श्रृङ्गार-जल ही प्रवाहित है।[२२६] यमुना जी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया कि प्रिया-प्रियतम के केलिजन्य श्रम जल से यमुना की उत्पत्ति हुई।[२२७]

इस प्रकार रसावतार की रस लीला का एकांत सम्बन्ध व्रज-वृन्दाबन-निकुञ्ज से होता गया। राधा-कृष्ण लीला के नायक-नायिका बने।

काव्यशास्त्र और रस-युगल :

भारतीय काव्यशास्त्र की दीर्घ और समृद्ध परम्परा काश्मीर में बनी। यह परम्परा सामान्य रूप से शैव-दर्शन से प्रभावित रही। फिर भी आनन्द वर्द्धन,[२२८] कुन्तक[२२९] तथा रुद्रट[२३०] ने राधा-कृष्ण सम्बन्धी कुछ उदाहरण दिये हैं। किन्तु नायक नायिका रूप में राधा-कृष्ण को ये प्रतिष्ठित नहीं कर पाये थे। काश्मीरी क्षेमेन्द्र में नवोदित वैष्णव संस्कारों की प्रेरणा है, जिनसे प्रेरित होकर कृष्ण (=नायक) और राधा (=नायिका) उनके दशावतार वर्णन में प्रमुख होते जा रहे हैं। उनके 'दशावतार चरित्र' में कृष्णावतार का वर्णन चतुर्थांश से भी अधिक है। राधा को इसमें कृष्ण की सर्वाधिक वल्लभा कहा गया है।[२३१] राधा और कृष्ण का नायक-नायिका रूप इसमें ध्वनित है।[२३२] इस प्रकार काश्मीरी काव्य शास्त्र की परम्परा की अन्तिम कड़ी—क्षेमेन्द्र-रसावतार 'युगल' की ओर पूर्ण आकुलता के साथ उन्मुख हैं।

क्षेमेन्द्र के लगभग समकालीन भोज (११वीं शती का पूर्वार्द्ध) हैं। भोज ने श्रृङ्गार का जो प्राकृतिक और आध्यात्मिक विस्तार किया है, उसमें 'मधुर रस' की प्रेरणा निहित है। इनकी दृष्टि में भी रस-रूप राधा-कृष्ण युगल है। इन्होंने सरस्वती-कंठाभरण में राधा विषयक आठ श्लोक उद्धृत किये हैं। रस सम्बन्धी ये नवीन धारणाएँ भोज के माध्यम से मालव देश में प्रकट हुईं।

बंगाल का वैष्णव आन्दोलन भोज तथा भोज से प्रभावित मिथिला के आचार्यों से प्रेरणा ग्रहण करने लगा। मिथिला के रसाचार्यों की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी भानुदत्त हैं। उनकी 'रस तरंगिणी' भोज से प्रभावित है। 'रस तरंगिणी' में आचार्य 'नाना रसमय' पीतांबरधारी कृष्ण को नमन करता है।[२३३] इस प्रकार नाना रसमय

आलम्बन कृष्ण की कल्पना उगी। यही आलम्बन केशव की रसिकप्रिया में नवरसमय है।[२३४]

यही परम्परा अन्त में बङ्गाल के भक्तिरसाचार्यों में विकसित हुई। भानुदत्त के स्वर को पकड़ते हुए 'भक्ति रसामृत सिंधु' के मंगल श्लोक में कृष्ण को 'अखिल रसामृत-मूर्ति' कहा गया है।[२३५] इसकी व्याख्या में, जीव गोस्वामी ने कहा कि इस कथन में कृष्ण का द्वादश रसमय रूप लक्षित है।[२३६] बङ्गाली आचार्यों के रस शास्त्रीय ग्रन्थों का उदाहरण भाग कृष्णमय हो गया। भानुदत्त की नायिका-भेद की परम्परा भी इन ग्रन्थों में पल्लवित हुई।

बङ्गाली रसाचार्यों का रसान्वेषण :

वैष्णव रसाचार्यों में सबसे प्रमुख स्थान सनातन, रूप और जीव गोस्वामी का है। इन तीनों ने ही ब्रज में निवास किया। ब्रजवास की प्रेरणा इनको स्वयं चैतन्य महा-प्रभु से मिली थी। चैतन्य की इच्छा थी कि ब्रज के स्थलान्वेषण और भावान्वेषण के साथ साथ रसान्वेषण की प्रक्रिया भी चले। इसी उद्‌देश्य से उन्होंने रूप-सनातन को ब्रजवास के लिए भेजा।[२३७]

रूप गोस्वामी के 'भक्ति रसामृत सिंधु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' ग्रन्थों का आरम्भ चाहे बङ्गाल में हो गया हो, पर, इनका विस्तार ब्रज-वृन्दाबन में ही हुआ। ब्रज के स्थलीय संदर्भों की खोज के साथ ही, गोस्वामी जी ने इन रसशास्त्रीय ग्रन्थों को अन्तिम रूप वृन्दाबन में ही दिया।

इस प्रकार ब्रज-वृन्दाबन में भक्ति रस के अन्वेषण की प्रक्रिया चली। भक्ति का प्रवेश रस रीति में हुआ। इससे ब्रजभाषा साहित्य बहुत प्रभावित हुआ। इस रस दृष्टि की चरम परिणति ब्रजरामाओं में दिखलाई पड़ती है, जिनमें 'प्रेमा' और 'काम' अभिन्न हो जाते हैं—'प्रेमैव ब्रजरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्' और प्रेमा ही परम पुरुषार्थ है—'प्रेमा प्रमर्थो महान्।'



संदर्भ संकेत

१—मथुरा, मधुबन, तालवन, सतोहा, रार (गोरेदाऊ), जिखनगाँव (यक्ष-धनगाँव), अड़ींग, गिरिराज (ढका बलराम), चन्द्रसरोवर, पैंठा, आन्यौर, कामवन, ऊँचागाँव, बरसाना, कमई, पिसाया, खदिरवन, वृन्दावन, बल्देव, कोसी, शेषशायी, पैगाम, शेरगढ़, नरीसेमरी, भांडीरबन, महाबन दर्शन हैं।

२—जिखिनगाँव में रेवती के दर्शन, गिड़ोये में रेवती कुण्ड, कमई में रेवती कुण्ड, और बल्देव में रेवती जी के दर्शन उल्लेखनीय हैं। साथ ही बठैन, शेरगढ़ आदि भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

३—कहा जाता है कि अडींग में दाऊजी ने कंस के आठ भाइयों का बध किया था। भांडीरबन में उन्होंने प्रलंबासुर को मारा था। इस लीला से सम्बन्धित चिह्न यहाँ हैं। तालबन में धेनुकासुर को मारा था।

४—गिर्राज की परिक्रमा में संकर्षण कुण्ड, चन्द्र सरोवर में संकर्षण कुण्ड।

५—पुराणोक्त वज्रनाभ-प्रयत्न उसी प्रकार प्रयत्न कहा जायेगा।

६—भक्ति काल में वल्लभाचार्य जी और चैतन्य महाप्रभु की खोजें इसी कोटि में आती हैं।

७—आन्यौर में दहीकटोरा, कामबन में थालकटोरा, करहला में मुकुट, चरण-पहाड़ी पर चरन, दधि गाँव में मुकुट और वेणु के चिह्न इसी के अन्तर्गत आयेंगे।

८—राधाकुण्ड में राज कन्दन पर मुकुट चिह्न बतलाया जाता है।

९—आन्यौर=आनि+और और=लाओ; जाव=जाओ अथवा राधा के शृङ्गार का जावक।

१०—कनवारा, गह्वरबन, संकेत, नन्दगाँव, बठैन, चरनपहाड़ी, राधाकुण्ड और मानसरोवर में कृष्णकुण्ड।

११—डीग में गोपाल सागर, पैगाम में गोपाल कुण्ड आदि।

१२—आन्यौर, गोकुल आदि में गोविन्द कुण्ड।

१३—नन्दगाँव, बठैन और कामर में मोहन कुण्ड हैं।

१४—अरौठ और शेरगढ़ में राधाकुण्ड हैं। राधाकुण्ड और मानसरोवर में सम्मिलित कुण्ड हैं।

१५—आन्यौर, कामबन, और वृन्दाबन में।

१६—आन्यौर में गोपाल, परमदरा और शेरगढ़ में साक्षी गोपाल।

१७—गोकुल में गोकुलनाथ जी, कामबन में गोकुल चन्द्रमा जी।

१८—मथुरा, कामबन और नन्दगाँव में गोवर्धन नाथ जी।

१९—मथुरा में मथुरानाथ : जतीपुरा में मथुरेश।

२०—मथुरा व करहला और कोसी में।

२१—दहगाँव में ब्रजभूषण; गोकुल में ब्रजराज।

२२—मथुरा, कामबन, खदिरबन, कामर, शेरगढ़, वृन्दाबन, लोहबन में।

२३—मथुरा–किशोरीरमण, राधाकुण्ड--राधावल्लभ, बरसाना–राधागोपाल, प्रेम-सरोवर-राधागोविन्द, संकेत--राधारमण, शेरगढ़--राधारमण, वृन्दाबन--राधारमण, राधावल्लभ; भांडीरवन--राधाकृष्ण।

२४—बहुलावन--बहुला बिहारी, अड़ींग--किलोल बिहारी, गिरिराज--अप्सरा बिहारी, बछगाँव--वत्स बिहारी, बच्छबन--बच्छ बिहारी, पूंछरी--राधा बिहारी, कामबन--काम्यबन बिहारी, कमल बिहारी, सुनेहरा--बिहारीजी, प्रेमसरोवर--प्रेमबिहारी, संकेत--संकेतबिहारी, गिड़ौयौ--बिहारीजी, कोकिलाबन--कोकिला बिहारी, पैगाम–पयबिहारी, बाँकेबिहारी, वृन्दाबन--बाँकेबिहारी, शाहबिहारी, दाऊजी--दानबिहारी, ब्रह्मांडघाट--ब्रह्मांड बिहारी, रमणरेती--रमणबिहारी, बिलछूकुण्ड–बिलछूबिहारी।

२५—मथुरा, जतीपुरा, कामबन, जाव, शेरगढ़, वृन्दाबन, कर्णाबल में मदनमोहन।

२६—बछबन में माखनचोर, जाव में नटवर जी की बैठक, कामर में रोमना ठाकुर, सतोहा में गिरधारी, गोकुल में नवनीतप्रिय एवं बालकृष्ण।

२७—मथुरा, जतीपुरा में श्रीनाथ में, गोवर्द्धन में लक्ष्मीनारायण।

२८—मथुरा में एक प्राण द्वैदेह तथा संकेत में राधानन्दनन्दन की एक ही मूर्ति।

२९—नन्दगाँव में 'ललितामोहन' के दर्शन।

३०—मथुरा के पास एक गाँव का नाम है।

३१—बछवन, कामवन (यशोदा कुण्ड) और दहगाम।

३२—चिकमौली के साथ यह भावना संबद्ध है। कामबन में भी दोहनी कुण्ड है।

३३—तालबन में फल खाए, खिलाए, गोविन्दकुण्ड पर छाक खाई, (श्यामढाक में इसीलिए पत्ते आज भी दोने के आकार के हैं) भोजन थाली पर थाल-कटोरा के चिह्न हैं।

३४—धूलेडा का सम्बन्ध गोधूलि मे है। कुसुम सरोवर (रत्नसिंहासन) भी गोचारण की भूमि; वठैन में भी गोचारण की भावना है।

३५—रुद्रकुण्ड (जतीपुरा) में कृष्ण ने गेंदबच्ची खेली, लुकलुक कुण्ड आंख-मिचौनी खेलने का स्थान, कामवन में कृष्ण-बलराम खिसलानी शिला।

३६—मुखराई का मुखरा गोप, गोवर्धन में ग्वाल पोखरा, हरजी कुण्ड–हरजी ग्वाल का, परमदरा का सुदामा, यहीं श्रीदामा का स्थान, नन्दगाँव में ईश्वर ग्वाल की पोखर है।

३७—परासौली में रासमंडल, गोविन्दकुण्ड पर रास चौंतरा, सुनहरा में रास-मंडल, करहला मे रास चौंतरा, आंजनौख में रास मंडल, पिसाये में रास-चौंतरा, रासौली बच्छवन में भी रास चौंतरा, वृन्दाबन में रास मंडल है ही।

३८—राधाकुण्ड में गोपी कूप, नीमगाँव और पाडर में गोपीकुण्ड हैं। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी हैं। अप्सरा कुण्ड में गोपियों की निकुञ्ज मानी जाती है।

३९—बसति नामक स्थान पर वृषभानु जी ने कुछ दिन निवास किया था, मुखराई राधा जी की मातामही मुखरा का गाँव है, महरानौ राधा जी की ननसाल का स्थान बतलाया जाता है, बरसाना उनका जन्म स्थान है, रावल भी उनके माँ-बाप का गाँव था।

४०—जतीपुरा के रुद्रकुण्ड पर राधाजी की बैठक है। कामर में भी स्वामिनी जी की बैठक है। नरीसेमरी में किशोरीकुण्ड और वृन्दाबन में राधा बावड़ी हैं। आँजनौख में किशोरी कुण्ड भी है। पिसाये में गुप्त कुण्ड है।

४१—यहाँ अंजनी शिला भी है।

४२—बहुला बन में और मानसरोवर में ऐसे ही कुण्ड हैं।

४३—'पिसाया' स्थल की भावना है कि यहाँ किशोरी जी ने कृष्ण की प्यास बुझाई थी।

४४—सांडरा शिखर, करहला, शेषशायी आदि को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

४५—बरसाने में अष्ट सखियों का एक मन्दिर है। वृन्दाबन में भी अष्ट सखी का मन्दिर है।

४६—यात्रा करने वालों के नाम ये हैं : ब्रह्मा, लोमश, नारद, ध्रुव, जामवंत, पुरूरवा, रावण, हनुमान, बलि ने भी वायु के द्वारा निर्धारित मार्ग से भू-प्रदक्षिणा की।

४७—इस यात्रा के करने वाले ये थे : सुग्रीव, इन्द्र, पाण्डव, मार्कंडेय, और भी कुछ योग सिद्ध पुरुषों ने विश्व की अन्तःग्रही परिक्रमा की।

४८—बालमुकुन्द चतुर्वेदी, पुराणों में ब्रज, ज्ञानदा (१-२), पृ० २२

४९—पद्मपुराण, पातालखंड ६९। ३७-५२

५०—श्री मुख बानी कहत बिलंब अब नेंक न लावहु।
ब्रज-परिक्रमा करहु, देह कौ पाप नसावहु। सूरसागर, १११०

५१—वृहन्नारदीय पुराण, उत्तरखंड, ७९। ६-१८

५२—महर्षि शांडिल्य संभवतः गोप जाति के पुरोहित थे।

५३—इस प्रकरण के लिए द्रष्टव्य, स्कन्द पुराण, द्वितीय वैष्णव खंड, श्री भागवत् माहात्म्य, प्रथम अध्याय, श्लोक १७, २७ आदि।

५४—ब्रज के स्थानों के नाम आवास, गिरि, वन या जलाशयों पर आधारित मिलते हैं।

५५—इनमें गोवर्द्धन, दीर्घपुर (=डीग) मथुरा, महावन, नंदिग्राम, वृहस्तान (=बरसाना) आदि की ओर संकेत है।

५६—गोविन्ददेव, हरिदेव, केशवदेव, और बलदेव।

५७—गो० विद्यानिधि, श्री १०८ श्री ब्रजरत्नलाल जी महाराज, 'ज्ञानदा' (१-२) पृ० १२

५८—वृन्दाबनं गुणातीतं मुनयश्चापि पक्षिणः।
गोवर्धनश्च त्रितयं गुणातीत मिह स्थितम्। [सुबोधिनी]

५९—यह गाथा 'विद्वन्-मंडन' में आई है। श्री गो० ब्रजरत्नलाल जी, श्री ब्रज और श्रीमद्वल्लभाचार्य जी, ज्ञानदा (१-२), पृ० १२

६०—काँकरौली का इतिहास, पृ० ४६

६१—श्रीमदाचार्य कृत बन यात्रा, श्री अगरचन्द नाहटा, 'ज्ञानदा' (२-४) पृ० ३५ पर उद्धृत ।

६२—इनकी दूसरी यात्रा, सं० १६२४ में हुई थी ।

६३—जगत नंद की तीन रचनाएँ 'वनयात्रा' 'ब्रजवस्तु वर्णन', 'ब्रजगाम वर्णन', शुद्धाद्वैत एकेडमी विद्या विभाग काँकरौली से 'जगतानन्द', के रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं । नाहटा जी ने ऐसी रचनाओं की सूचना दी है : 'ब्रज और ब्रजयात्रा' पृ० ११५, ज्ञानदा (२-४) में 'श्रीमदाचार्य कृत वनयात्रा' छप चुकी है । उसी में उन्होंने लिखा है ।

६४—अगरचन्द नाहटा, ज्ञानदा (२-४) पृ० ३७

६५—वार्ताओं के आधार पर यह भेंट सं० १५५० में हुई ।

६६—ब्रजेजाइ रस-शास्त्र कर निरूपण ।
तीर्थ सब लुप्त तार करिओ प्रचारण ।। [चैतन्य चरितामृत, अध्याय-१, भक्त रत्नाकर, पंचम तरंग ।

६७—पुलिन बिहारी दत्त, माथुर कथा, पृ० २७६

६८—चै० च० मध्य लीला, अध्याय १६-१८

६९—प्रभु देखे वृन्दाबन स्थावर जंगम ।
आनंदित बन्धु जेन देखे बन्धु गण ।। (चै० च०, वही)

७० - सब गोपी हेइति राधाकृष्णेर प्रेयसी । तैंषि राधा कुण्ड प्रिय प्रियार सरसी । जेई कुंड नित्य राधिकार संगे । जले जलकेलि करे तीरे रासरंगे ।

७१—इनका ग्रन्थ 'ब्रजभक्ति विलास' इसका प्रमाण है ।

७२—प्रियादास जी के अनुसार स्वयं कृष्ण ने प्रकट होकर भट्ट जी को स्थल—रहस्य बतलाया—'बोलिकें बतामें यहाँ अमुक स्वरूप है जू, लीला कुण्ड धाम स्याम प्रगट दिखाये हैं ।'

७३—गोपस्थल मथुरा मंडल जिते वाराह बखाने ।
किये नारायण प्रगट, सकल पृथ्वी नें जाने । [भक्तमाल]

७४—ठौर ठौर रास के विलास लै प्रगट किये, जिये यों भगतजन कोटि सुख पाये हैं । [भक्तमाल, टीका]

७५—मथुरा, मेमोयर्स, पृ० ८६

७६—डा० देवी शंकर अवस्थी, ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति, पृ० ३६

७७—कुछ के अनुसार आंध्र प्रदेश में गोदावरी के तट पर स्थित वैदूर्य पत्तन (पैठन)आपका जन्म स्थान है। डा. भंडारकर ने बललारी जिले के वर्तमान निम्बापुर को आपके जन्मस्थान के रूप में मान्यता दी है। कुछ लोग ब्रज में ही उनका प्राकट्य मानते हैं। पर यह मत अभी पुष्ट नहीं है।

७८—बलदेव उपाध्याय, भागवत संप्रदाय पृष्ठ ३१, आर० जी० भण्डारकर, वैष्णविज्म्, शैविजम् अण्ड माइनर रेलिजियस सिस्टम्स, पृष्ठ ६३, परशु-राम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, पृष्ठ ८५
ब्रज और ब्रजयात्रा, पृ० १५४

७९—इस नामकरण के सम्बन्ध में कई अनुश्रुतियाँ हैं। एक अनुश्रुति के अनुसार श्री कृष्ण के चरणों में गोचारण के समय लगे काँटों का गोपियों ने अपनी दृष्टि से 'निर्मच्छन' किया था। इसी के आधार पर यह नींम गाँव हुआ। दूसरी अनुश्रुति के अनुसार श्रुतिरूपा गोपियाँ यहाँ निवास करती थीं। इन 'निगमबारी' गोपियों ने भागवतोक्त श्रुतिगीत द्वारा कृष्ण-स्तुति की थी। तीसरी अनुश्रुति के अनुसार नैमिशारण्य के शोनकादिक ऋषि सूतजी के साथ यहाँ आये थे और श्रीकृष्ण विषयक समागम यहाँ हुआ था। नैमिशारण्य निवासी ऋषियों के निवास के कारण ही यह नींम गाँव है। कहा जाता है कि कृष्ण का सुदर्शन चक्र नीमिशीर्ण होकर पृथ्वी में प्रविष्ट हुआ था।

८०—गोपिका रमणोल्लास सौरम्य सुख दायिने।
कृष्ण कैवलय संज्ञाय निम्बनाम्ने नमोस्तुते ।। पद्म पुराण

८१—इसके दो अर्थ हो सकते हैं : ब्रज में निम्बार्क ही है और निम्बार्क की शरण में जाओ।

८२—इन गुसाइयों को व्यासवंशी कहा जाता है और इनका सम्बन्ध व्यासतीर्थ से संभावित है।

८३—माण्डीरवन में वल्लभाचार्य जी की एक गुप्त बैठक भी बतलाई जाती है।

८४—श्रीकृष्ण देवराय के दरबार में इन दोनों का शास्त्रार्थ हुआ बतलाया जाता है। यन् ए, दक्षिणामूर्ति, कर्णाटक और उसका साहित्य (बैंगलूर १९६४) पृष्ठ १६६।

८५—मध्वाचार्य जी स्वयं माधुर्यभाव के उपासक नहीं थे। इस संप्रदाय के अनुयायी भक्त पुरंदर दास ने वात्सल्यपरक पदों की रचना की है।

८६--मध्व, पद्मनाथ, नरहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिंधु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेन्द्र, जयधर्म, पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्य, व्यासतीर्थ, लक्ष्मीपति, माधवेंद्र, ईश्वरपुरी और श्री चैतन्य। भागवत संप्रदाय पृ० २२८-२६

८७—"Madhavendra is described as the seed, Iswarpuri as the spront, Shri Chaitanya as the trunk."

—The cultural Heritage of India, V ol. II. P. 152.

८८—वृन्दावने नंदसुतं गोविदं कालिय ह्रदे।
गोवर्धने गोपवेषं भवघ्ने पद्मलोचनम्॥ —वैष्णवमताब्ज भास्कार।

८९—एक मत के अनुसार इनका जन्म अलीगढ़ जिले के हरिदासपुर गाँव में हुआ और दूसरे मत के अनुसार वृन्दाबन के समीप राजपुर ही आपका जन्मस्थान है।

९०—निधिवन में स्वामी जी की तथा उनके शिष्य बिट्ठल विपुल, भगवत रसिक आदि की समाधियाँ भी हैं।

९१—आज यह मूर्ति निधिवन में नहीं, एक अन्य मन्दिर में स्थापित है। वृन्दाबन में इसकी सबसे अधिक मान्यता है।

९२—मथुरा के निकट आगरा की सड़क पर 'बाद' नामक ग्राम में आपका जन्म हुआ।

९३—श्रीहित चौरासी में दो पद (११, १२) ऐसे हैं जिनमें नरवाहन की छाप है।

९४—ये स्थान आजकल निम्बार्क संप्रदाय के अधिकार में है।

९५—प्रथम पाटोत्सव (संवत् १५९१) इसी स्थान पर संपन्न हुआ था। पीछे अब्दुर्रहीम खानखाना की प्रेरणा से सुन्दर दास भटनागर ने इस विग्रह के लिए लाल पत्थर का मन्दिर बनवाया (रसिक माल, भागवत् मुदित, चौदहवाँ प्रकरण)।

९६--यह स्थान वृन्दाबन से यमुना के दूसरे तट पर है।

९७--यहाँ आज भी राधारानी जी (प्रियाजी) का मन्दिर है। प्रत्येक मास की पूर्णिमा को यहाँ हजारों लोग दर्शन के लिए आते हैं। फूल-डोल भी होता है।

९८—'भाव' ऽभू—से व्युत्पन्न है। धात्वर्थ=बढ़ना या विकास करना। यास्क ने इसकी ६ अवस्थायें मानी हैं: जायते, अस्ति, परिणमति, वर्धते, अपक्षीयते एवं विनश्यति।

९९—वी. ए. रामस्वामी शास्त्री, मीमांसकों की भावना-संज्ञा, 'वाक्' (दिसम्बर १९५३)।

१००—दि० के० वेदेकर, नाट्यशास्त्र एवं सांख्यदर्शन में भाव, 'आलोचना' (जनवरी-मार्च, १९७१) पृष्ठ २६।

१०१—नाट्य शास्त्र के छटवें-सातवें अध्यायों एवं चौबीसवें अध्याय के प्रथम आठ श्लोकों में जो भाव विवेचन हुआ है, उससे यही अर्थ व्यक्त होता है: 'मानुषाणां भावा:'।

१०२—ना० शा० अध्याय सात का आरम्भ।

१०३—भोज के अनुसार आठ स्थायी+तेंतीस संचारी+आठ सात्विक=उननचास भाव रस की संभावना से युक्त हैं।

१०४—श्रीमद्भागवत्–३।१९।१५। 'सर्वदा सर्वभावेन भजनीय ब्रजाधिप:' वल्लभाचार्य, चतु:श्लोकी, १।

१०५—भाव के तीन स्तर हैं: अनुग्रह (=स्नेह, पुत्र, शिष्यादि के प्रति), प्रेम (=भार्यादि के प्रति) तथा भक्ति (=गुरुजन देवादि के प्रति)।

१०६—भक्तिरेवैनं नयनि भक्तिवश: पुरुष: (माहरश्रुति)।

१०७—नारद सूत्र २, ३, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र—३।

१०८—लोभे ब्रजवासीर भावेर करे अनुमति
शास्त्रयुक्ति नाहि माने रागानुसार प्रकृति। (चैतन्य चरितामृत)

१०९—ब्रज का इतिहास, पृ० ८

११०—वन्दे नन्द ब्रजस्त्रीणां पादरेणु ममीक्षणाश:। [श्रीमद्भागवत]

१११—पद्मपुराण और वृद्ध नारदीय पुराण में यह विवरण उपलब्ध है।

११२—श्रीमद्भागवत (१०।१५।२) में इस स्थान का वर्णन है। पद्मपुराण में इसे पुष्पवन भी कहा गया है। कहीं-कहीं कुसुमवन को वृन्दाबन भी कहा गया है। कुसुम सरोवर क्षेत्र में ही उद्धव कुण्ड और नारद कुण्ड हैं। यहीं बज्रनाभ ने उद्धव की प्रेरणा से भागवत कथा और हरिकीर्तन का आयोजन कराया था।

११३—यह प्रसंग पद्मपुराण में आया है।

११४—वृहद् नारदीय पुराण, अध्याय ८०।

११५—नारद भक्ति सूत्र २,३।

११६—वही, २५।

११७—हरिभक्ति रसामृत सिंधु, उज्ज्वल नीलमणि, भक्ति-सन्दर्भ, प्रीति सन्दर्भ, चैतन्य चरितामृत (कृष्णदास कविराज), भक्तिरस तरंगिणी, (नारायण भट्ट), भक्ति रसायन (मधुसूदन सरस्वती) आदि इसी परम्परा में आते हैं।

११८—विस्तार के लिए द्रष्टव्य : अग्निपुराण (गर्ग संहिता) वृन्दावन खण्ड अध्याय २४।

११९—गर्ग संहिता, वृन्दावन, अध्याय २५।

१२०—डॉ. आनन्द स्वरूप पाठक [श्रीकृष्ण के शैशव का लीला स्थल, महाबन, बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३०२-३०६] ने इसका विस्तृत परिचय दिया है।

१२१—महाबन में छटी पालना, नन्दभवन, पास के 'कर्णाविल' स्थान पर नाम-करण और कर्णछेदन की अनुश्रुति, ब्रह्माण्ड घाट पर मृत्तिका भक्षण, रमणरेती में घुटनों चलने आदि की भावनाएँ प्रसिद्ध हैं।

१२२—श्रीवन देखि पुनः गेला लोहबन, महाबन गया जन्मस्थान दरशन। [चैतन्य चरितामृत]।

१२३—वर्तमान गोकुल की स्थापना महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने की थी। यहाँ इस संप्रदाय की चौबीस हवेलियाँ हैं। महाप्रभु जी की—भीतरली, बाहरली—दो बैठकें हैं, दामोदर हरसानी की बैठक, गो० गोकुलनाथ जी बैठक, आदि इस स्थान के सांप्रदायिक महत्व के प्रमाण हैं।

१२४—'अब जो श्री आचार्य जी महाप्रभु ब्रज कौं पाँव धारे, सो प्रथम श्री गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून के साथ सूरदास जी हू आये। ···श्री गोकुल की बाललीला सूरदास जी के हृदय में फुरी।' [वार्ता]

१२५—एक समै गोविंददास आँतरी गामतें ब्रज कों आये और महाबन में आइके रहे, काहे ते, जो या ब्रजधाम है। इहाँ भगवत चरणारविंद की प्राप्ति होयगी।' [दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता]

१२६—इस क्षेत्र में रसखान कूप और रसखान की समाधि मिलती है।

१२७—भक्ति रसामृत सिंधु, ४।८, २०-२४, २७३ आदि।

१२८—भट्ट, हरिव्यास देवाचार्य, वृनावनदेव, घनानंद आदि ने बालक्रीड़ा और बधाई के पद लिखे हैं।

१२९—डॉ. नारायणदत्त शर्मा, निंबार्क संप्रदाय के कृष्णभक्त कवि।

१३०—राधा जन्म की बधाई और बाललीला पर कुछ साहित्य रचा गया है। हरिदासी अष्टाचार्यों में से रसिकदास ने 'बाललीला' परक एक छोटी सी पुस्तक लिखी है।

१३१—राम प्रियाशरण प्रेमकली ने 'सीतायन' में सीता जी की बाल लीलाओं का वर्णन किया है, सूर किशोर जी की सीता जी में बालरति थी, पं० उमापति वशिष्ठभाव से राम की आराधना करते थे। डॉ० देवी शंकर अवस्थी, अठारहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति।' पृष्ठ-१०८

१३२—सखा=पुरसे तथा ब्रज से संबंधित, सुहृत, सखा, प्रियसखा, प्रिय नर्म-सखा (हरिभक्ति रसामृत सिंधु (प० वि०) ३।६,१०

१३३—सूर=कृष्ण सखा, परमानंद दास=तोष सखा, कुंभनदास=अर्जुन सखा, कृष्णदास=ऋषभ—छीतस्वामी=सुबल, गोविन्द स्वामी=श्रीदामा, चतुर्भुजदास=विशाल, नन्ददास=भोज।

१३४—इस क्षेत्र के निम्बवन के सम्बन्ध में पद्मपुराण का कथन है—'गोपिका रमणोल्लास सौरम्य सुखदायिने।'

१३५—अनुश्रुति के अनुसार श्रुतिरूपा गोपियां यहीं निवास करती थीं। नैमिषारण्य के ऋषियों ने भी गोपीभाव की प्राप्ति के लिए यहाँ की यात्रा की थी।

१३६—ऐश्वर्यबोध मिश्रित भक्तिभाव का संबंध मथुरा, द्वारका एवं बैकुंठ से है।

१३७—कृष्णदास कविराज, चैतन्य चरितामृत, परि० १९

१३८—स्वामी रसिकदेव, भक्ति सिद्धांत चिंतामणि, ७२।७३,८९

१३९—नारद भक्ति सूत्र, २१,

१४०—हरिभक्ति रसामृत सिंधु (पू० वि०) २।६०-६२

१४१—सन्यास निर्णय, ८

१४२—निरोध लक्षणम, १

१४३—यत्र वा सुख संबंधो वियोगे संगमादपि।
सर्व लीलानुभवतः पुष्टिमार्गः सकथ्यते॥
श्री हरिराय वाङ् मुक्तावली में संग्रहीत, 'श्री पुष्टिमार्गलक्षणानि' निबंध।

१४४—श्री नानालाल मुखिया, वल्लभकुल की सेवा, पृष्ठ १६ ।

१४५—ब्रज सुन्दर नहिं नारि रिचा श्रुति की आहीं । (सूर)

१४६—यह कथा विद्वन-मण्डन में आई है । सूर : 'श्रुतिन कह्यौ ह्वै गोपिका केलि करें तुव संग ।'

१४७—सो श्रुति रूप होय ब्रजमण्डल कीनों राम बिहार (सूर)

१४८—सुबोधिनी, रास पंचाध्यायी, फल प्रकरण, अध्याय ३/२-५

१४९—डॉ. देवी शंकर अवस्थी, ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति, पृष्ठ २४३

१५०—डॉ. शशिभूषणदास गुप्त, श्री राधा का क्रम विकास, पृ० २१४

१५१—हरिभक्ति रसामृत सिंधु (पू. वि.) २/६०-६२

१५२—ये दोनों कृतियाँ जीव गोस्वामी विरचित हैं ।

१५३—तदेव गोलोकं वर्णयित्वा तस्य गोकुलेन सदा मेदमाह । श्रीकृष्ण संदर्भ, पृ० ३६६

१५४—वही, पृ० ३७४ । इन उल्लेखों में आये गोकुल, वृन्दाबन और ब्रज प्रायः पर्याय हैं ।

१५५—परकीया भावे अति रसेर उल्लास ।
ब्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास । चै० च० (आ० ली०) परि० ४

१५६—डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दशश्लोकी को प्रक्षिप्त माना है । 'हिन्दी साहित्य' पृ० ११९

१५७—महावाणी सिद्धान्त सुख, १७०

१५८—सनातन गोस्वामी (वैष्णवतोषिणी टीका) विश्वनाथ चक्रवर्ती कृष्णदास कविराज के प्रयत्न इसी प्रकार के हैं । आधुनिक युग में फर्कुहर साहब ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया है ।

१५९—ब्रह्म वैवर्त, प्रकृति खण्ड, कृष्ण जन्म खण्ड ।

१६०—अवतार का एक कारण उनकी रास परायणता है और दूसरा श्रीदामा का शाप ।

१६१—ब्रह्म वैवर्त, प्रकृति खण्ड, ४/८५

१६२—प० पु०, उत्तराखंड, राधाष्टमी व्रत, अ० १६२-६३

१६३—देवी भागवत, खंड ९, अध्याय ५०

१६४—यदि रावल के पास नन्द कृष्ण का गोकुल है, तो बरसाने के पास नन्दगाँव है ।

१६५—गाहा सत्तसई (हाल), पंचतंत्र, वेणी संहार (भट्ट नारायण), ध्वन्यालोक (आनन्द वर्धन) नल चम्पू (त्रिविक्रम भट्ट) शिशुपाल वध (वल्लभदेव काशमीरी) दशरूपक (धनंजय) दशावतार चरित (क्षेमेंद्र), काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) प्राकृत पैंगलम आदि ग्रन्थ इस परंपरा में हैं ।

१६६—योगेश चन्द्र राय 'भारतवर्ष' (पत्र) माघ, १३४० बंगाब्द

१६७—राधा तंत्र प्रसिद्ध है ।

१६८—डॉ. हरवंशलाल शर्मा, 'सूर और उनका साहित्य', पृष्ठ २६७

१६९—शशिभूषण दास, श्री राधा का क्रम विकास, पृष्ठ ३

१७०—ए. बार्थ, द हिन्दू रिलीजन्स ऑफ इण्डिया, पृष्ठ २३६

१७१—कविराज गोपीनाथ, 'कल्याण' [शिवांक] काश्मीरीय शैव-दर्शन से संबद्ध कुछ बातें ।

१७२—द्रष्टव्य जीव गोस्वामी का 'भगवत् सन्दर्भ ।'

१७३—राधाकृष्ण एके सदा एकहू स्वरूप ।
लीला रस आस्वादिते, धरे दुइ रूप । [चै० च० (आ० ली०) परि० ४]

१७४—सूरदास मदन मोहन सँडीली से, गदाधर भट्ट दक्षिण से, किशोरदास चित्तौड़ से, तीर्थराम मारवाड़ से आकर वृन्दाबन वास करने लगे । आज भी ब्रज के गाँव-गाँव में बंगाली साधक मिलते हैं ।

१७५—अनुश्रुति के अनुसार यह ललिता जी का गाँव है ।

१७६—द्रष्टव्य, परिवृढ़ाष्टक ।

१७७—गुसाँई जी के स्वामिन्याष्टक, स्वामिनी स्तोत्र एवं शृङ्गार रस मंडन में इस तत्व की स्वीकृति और प्रतिष्ठा है ।

१७८—सदा एक रस एक अखंडित, आदि अनादि अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल सरूप [सू० सारावली, (वें. प्रे.) पृ० ३८ ।

१७९—यह सम्प्रदाय के इष्ट विग्रह का नाम है ।

१८०—वृन्दावनदेव, गीतामृत गंगा, प्रथम घाट, ३

१८१—महावाणी, सिद्धान्त सुख, ५, युगल शतक, पद १९-२०

१८२—महावाणी सिद्धान्त सुख, १७०

१८३—नागरीदास कृत अष्टक, चाचा वृन्दावनदास कृत, श्री हरिवंश सहस्रनाम, पद ११४

१८४—राधा चरण प्रधान हृदै, अति सुदृढ़ उपासी। भक्तमाल, १२४

१८५—राधा चरण विलोड़ित, रुचिर शिखंड हरिवंदे। [राधा सुधानिधि, श्लो० २००] यहाँ राधा ही 'परमतत्व' है कृष्ण नहीं।

१८६—'हरिदास केलिमाल', २४

१८७—जहाँ जहाँ चरन परत प्यारी जू तेरे,
तहाँ तहाँ मन मेरौ करत फिरत परछाहीं। केलिमाल, ५३

१८८—वंशी अलि, राधा सिद्धान्तम्, २

१८९—वही २२

१९०—सेव्य सदा श्री राधिका सेवक नंद कुमार। हृदय सर्वस्व, सं. ५

१९१—कुसुम सरोवर के समीप वृन्दा का आश्रम बतलाया जाता है। यह गोवर्धन क्षेत्र में है।

१९२—इस समस्त के लिए द्रष्टव्य, वृहद् नारदीय पुराण, अध्याय, ८० [वृन्दाबन माहात्म्य] १४-३३

१९३—'विष्णु स्वामिन उपसंप्रदायश्चैतन्य:' (सम्प्रदाय प्रदीप)

१९४—नारद पुराण में चैतन्य को कृष्ण रूप कहा गया है: 'क्षितितले चैतन्य रूप: प्रभु:।'

१९५—स्वामिनी जी राधा भी हो सकती हैं और चन्द्रावली भी।

१९६—द्रष्टव्य, मेरा लेख, 'चैतन्य मत में सखी और मजरी', ब्रजभारती, आश्विन-अगहन, २००९।

१९७—दोनों में केवल विशाखा, चम्पकलता और ललिता समान हैं।

१९८—रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृ० ६८१।

१९९—डॉ. सुशील कुमार डे, 'वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट इन बंगाल'

२००—वही पृष्ठ १८-१९

२०१—माधवेंद्र पुरी का सम्बन्ध श्रीनाथ जी से भी था। इसका संकेत पहले किया जा चुका हूँ।

२०२—अंगे तु वामे वृषभानुजा मुदा, विराजमानामुनुरूप सौभगाम् ।
सखी सहस्त्रै परिसेवितां सुदा स्मरेमदेवीं सकलेष्ट कामदाम् । [दशश्लोकी]

२०३—हित हरिवंश, राधा सुधानिधि, श्लोक-२६६ ।

२०४—ध्रुवदास, नेह मंजरी लीला (बयालीस लीला), पृष्ठ २०३ ।

२०५—डॉ. स्नातक, राधावल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ २१९ ।

२०६—राधासुधानिधि (२१६, २६१, २६६, २७५) में वृन्दाबन की इस रूप में प्रशस्ति है ।

२०७—सेवक जी, (गोंडवाना), ध्रुवदास जी (सहारनपुर), नेही नागरी दास जी (बुन्देलखंड), आदि का नाम उल्लेख्य है ।

२०८—अनन्यादि=भगवानदास, चन्द्रसखि, सुख सखि आदि ।

२०९—युगल नाम सों नेम जपत नित कुञ्ज बिहारी ।
अवलोकत रहें केलि सखी सुख के अधिकारी । (भक्तमाल ९१)

२१०—केलिमाल—२५ ।

२११—नरहरिदास एवं स्वामी रसिकदास बुन्देलखंड से, पीताम्बर नारनौल (शाहजहाँपुर) से, ललितकिशोरी भदावर से, बनी-ठनी जी किशनगढ़ (राजस्थान) से आये ।

२१२—डॉ. देवीशंकर अवस्थी,ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति, पृष्ठ २१९-२२, डॉ. स्नातक राधा वल्लभ संप्रदाय पृ०८४।

२१३—ध्रुवदास, सभामण्डल लीला (बयालीस लीला) पृ० १३१-३२, रसानन्द लीला (वही) पृष्ठ २५० ।

२१४—साम्प्रदायिक अनुश्रुतियों के अनुसार हित हरिवंश जी को राधा से मंत्र प्राप्त हुआ और हरिदास जी ललिता के अवतार माने जाते हैं ।

२१५—इसके प्रवर्तक वंशी अलि थे । इनके ग्रन्थ 'राधातत्व प्रकाश' 'राधा सिद्धांत', 'राधोपनिषद टीका हैं । इनको राधा की वंशी का अवतार माना जाता है ।

२१६—राम की रसोपासना के प्रवर्तक अग्रदास जी थे और इनका जन्म स्थान गलता जी था ।
द्रष्टव्य : डा. भगवती प्रसाद सिंह 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' तथा भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'रामभक्ति में मधुरोपासना' ।

२१७—इसके प्रवर्तक महात्मा श्यामचरण दास थे ।

२१८—तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानंदवल्ली २.७

२१९—अथर्व संहिता १०.८.४४

२२०—स्कंद पुराण, वैष्णव खंड २.१

२२१—संप्रदाय प्रदीप (अनु० कंठमणि, पृष्ठ २२-२३ (श्लो० २३-२५) सूरसागर पद १७०३ (पृष्ठ ६६३)

२२२—गीत गोविंद, प्रथम सर्ग, द्वितीय प्रबंध, १

२२३—श्री कृष्ण कर्णामृत (स० एम० के० आचार्य) १.९२ पृष्ठ ४७

२२४—सूर सागर, २८०३

२२५—वनं वृन्दावनं नाम सर्व श्रृङ्गार दायकम् [अनंत संहिता]

२२६—कंकनाकार सौढार सरिता, बहति अति सुरस सिंगार भरिता [श्री हरिव्यास, महावाणी, श्री योग पीठ, ८]

२२७—इदमेव परं पुण्यं युवयोः केलिजं जलम् । तस्या स्तद्वाक्यमार्ण्य सा चकार नदीं वराम् । [सनत्कुमार संहिता]

२२८—ध्वन्यालोक (२-५) में राधा कृष्ण संबंधी एक श्लोक उद्धृत है ।

२२९—वक्रोक्ति जीवितम् (२.५९) में संवृत्ति वक्रता के उदाहरण में राधा के विप्रलंभ सम्बन्धी श्लोक दिया है ।

२३०—काव्यालंकार (८.४६) नमि साधु टीका में राधा संबंधी एक श्लोक उद्धृत है ।

२३१—दशावतार, ८३

२३२—विरही राधा और कृष्ण का चित्र, वही, १७१, १७६

२३३—रसतरंगिणी, १.१

२३४— रसिक प्रिया १.२

२३५—भक्ति रसामृत सिंधु, १

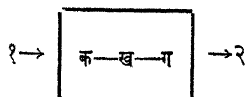
२३६—दुर्गम संगमनी में उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या ।

२३७—ब्रजे जाइ रस शास्त्र कर निरूपण ।
तीर्थ सब लुप्त तार करिओ प्रचारण । चै० चरितामृत, अध्याय १ । भक्त रत्नाकर, पंचम तरंग) भी द्रष्टव्य ।

२/ कृष्ण वस्तु-व्यंजना : मानसीय स्थानांतरण

०. प्रास्तविक

ब्रजभाषा काव्य के वस्तु संदर्भ पर विचार करने वाले, प्रबन्ध के इस प्रस्तुत भाग का मूलभूत प्रत्यय यह है कि कवि के अभिव्यंजना व्यापार का आरम्भ उसकी वस्तु संदर्भीय रचना-प्रक्रिया से होता है। वाह्य जगत में स्थित, प्रकृत रचना युक्त वस्तु का कवि के द्वारा ऐन्द्रिय ग्रहण, गृहीत वस्तु का मानसीय बिंबीकरण तथा इस रूप में प्रकट वस्तु की पुनर्रचना, प्रेषण पूर्व वस्तु स्थितियाँ हैं। क्रम का प्रत्यक्ष इस प्रकार किया जा सकता है :



[१ वस्तु की स्थिति; क=प्रकृत वस्तु रचना का ऐन्द्रिय ग्रहण; ख=गृहीत वस्तु का मानसीय बिंबीकरण; ग=वस्तु की पुनर्रचना, २=प्रेषण]

इन स्थितियों में से स्थिति [ग] वस्तुगत रचना प्रक्रिया को प्रकट करती है। अभिव्यंजना का यही आन्तरिक रूप है। अभिव्यंजना की प्रविधियों पर इसी विंदु से विचार आरम्भ होता है। वस्तु की पुनर्रचना की आधारभूत सामग्री वस्तु के चेतन बिंबों के रूप में रहती है। पूर्व स्थिति, अन्य मानस-बिंबों के साथ इनका सम्बन्ध, रागवृत्ति के आधार पर इनका भावन और भावित बिंबों का प्रकल्पन-वस्तु की पुनर्रचना के प्रमुख विंदु हैं।

भारतीय आचार्यों के अनुसार स्वभाव-सुन्दर वस्तु के नैज, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संरचक गुणों का दर्शन[1], वस्तु-आहरण[2], तथा कवि-प्रौढ़ि[3] वस्तु की पुनर्रचना से संबंधित कवि के कर्तृत्व के भाग हैं। इस कर्तृत्व के सहायक तत्त्व हैं—संस्कार, प्रतिभा,

कल्पना और अध्ययन। शैली पर विचार करने वाले विद्वान 'वस्तु संयोग' पर विचार करते हैं। भौतिक यथार्थ (विज्ञान), आधिभौतिक यथार्थ (धर्म) अमूर्त यथार्थ (दर्शन) तथा कलात्मक यथार्थ (साहित्य) के सानुपातिक मिश्रण से प्रेष्य वस्तु की पुनर्रचना की जा सकती है।[४] वैसे, इसका समावेश भी काव्यशास्त्र के उपर्युक्त सिद्धान्तों में हो जाता है। वस्तु की आन्तरिक संरचना की खोज की बात भी कही जाती है। वस्तु के आन्तरिक और प्रतिभा-प्रत्यक्ष गुणों तथा उनकी आन्तरिक समन्विति का आविष्कार और चित्रण, प्रतीकवादी वस्तु की मौलिक एवं अनूठी कल्पना के लिए आवश्यक मानते थे। अलंकार-शास्त्र में 'जाति' अलंकार पर विचार करते हुए आचार्यों ने इस तत्त्व की ओर संकेत किया है। तात्पर्य यह है कि वस्तु की पुनर्रचना कवि की रचना-प्रक्रिया का प्रमुख अंग है।

वस्तु ग्रहण और वस्तु का स्थानांतरण

'वस्तु' अपनी 'सत्ता' की ओर संकेत करती है। सत्तायुक्त वस्तु का वर्गीकरण कुन्तक ने इस प्रकार दिया है[५] :

- चेतन
  - प्रधान [उच्चयोनि : देवता, मनुष्य]
  - अप्रधान [तिर्यक योनि : पशु, पक्षी]
- अचेतन
  - स्वभाव प्रधान
  - रस प्रधान
  - नीति प्रधान

राजशेखर जब दिव्य, दिव्यमानुष और मानुष की चर्चा करता है,[६] तो संभवतः उसकी दृष्टि में शुद्ध और मिश्रित वस्तु की भावना होगी। डा० नगेन्द्र ने कुंतक के वर्गीकरण को नवीन शब्द दिये हैं : नवीन आलोचना शास्त्र की शब्दावली में इन्हें ही क्रमशः प्राकृत तत्त्व, रागात्मक तत्त्व तथा नैतिक (बौद्धिक) तत्त्व के नाम से अभिहित किया गया है।[७]

प्राकृत वस्तु की सत्ता प्राकृतिक जगत् में होती है, जिसको कवि वहीं से ग्रहण करता है। रस प्रधान और नीति प्रधान वस्तु की सत्ता सांस्कृतिक परम्परा में हो सकती है। वस्तु की सांस्कृतिक परम्परा में 'सत्ता' का तात्पर्य है—वस्तु के रूपायन की आरम्भिक और परवर्ती स्थितियाँ। ये स्थितियाँ रूपायन के मूल संस्थान से आरंभ यात्रा के कालायाम में पड़ने वाले वे पड़ाव हैं, जहाँ अभीष्ट वस्तु का विविध दृष्टियों से संमूर्तन, विस्तार, संशोधन, व्याख्यान, प्रतीकन, भावन और अलंकरण हुआ है। इस परम्परा में कुछ वस्तुएँ रूढ़ भी हो जाती हैं, जिनकी अभिव्यंजना सम्बन्धी संभावनाएँ चुक जाती हैं। कवि प्रायः इस परम्परा से गतिशील और संभावना पूर्ण वस्तु को ही चुनता है। सांस्कृतिक परम्परा से वस्तु चुनाव सुविचारित होता है।

'वस्तु ग्रहण' के अतिरिक्त एक और स्थिति माननी चाहिए—वस्तु का 'आरोपण' (ट्रांस्प्लांटेशन) अथवा 'स्थानांतरण' (ट्रांसफॉर्मेशन)। यह शुद्ध मानसीय व्यापार है। एक मानस की वस्तु को दूसरे मानस में स्थानांतरित किया जाता है। वस्तु की उद्‌भावना पहले मानस में होती है और उसका पल्लवन-प्रतिफलन दूसरे मानस में। तुलसी ने जो बात काव्यास्वादन के सम्बन्ध में 'उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं' उक्ति के द्वारा कही है, वही वस्तु के स्थानांतरण के सम्बन्ध में कही जा सकती है। रामकाव्य वस्तु के शुद्ध मानसीय स्थानांतरण को तुलसी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है : शिवमानस > मुनिमानस (याज्ञवल्क्य, भरद्वाज) > गुरुमानस (नरहरि) > कवि-मानस (तुलसी)। वस्तु—स्थानांतरण के इस मानसीय या परामानसीय रूप पर विज्ञान या आधुनिक मनोविज्ञान का क्या अभिमत है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इनकी अपनी सीमाएँ हैं। इस स्थानांतरण का सम्बन्ध चेतना की गहनतम स्थितियों से है। इसके सम्बन्ध में कवि की स्वीकारोक्ति की उपेक्षा करना न्याय्य नहीं है।

ब्रजभाषा के भक्त कवि के मानस में, आचार्य मानस में स्थित 'वस्तु' का स्थानांतरण ही हुआ है। यह कवि किसी-न-किसी भक्ति संप्रदाय तथा उसके आचार्य से संबंधित है। वह आचार्य के द्वारा संप्रदाय में दीक्षित किया गया है और कवि का वैयक्तिक मानस, सांप्रदायिक मानस का भाग बन गया है। इस आधार पर साधारण कविमानस से भक्त कविमानस को अलग किया जा सकता है। जहाँ साधारण कवि वस्तु ग्रहण या वस्तु चुनाव करता है, वहाँ भक्त कविमानस का संबंध वस्तु के स्थानां-तरण से है। ग्रहण और चुनाव की प्रक्रिया जहाँ बहुत कुछ चेतन-सुविचारित है, वहाँ स्थानांतरण अचेतन स्तरों पर ही प्रायः होता है। जहाँ ग्रहण प्राकृतिक या सांस्कृतिक स्रोत से होता है, वहाँ स्थानांतरण दो मानसों के बीच का विनिमय-व्यापार है। जहाँ 'ग्रहण-चुनाव' वितर्क और विकल्प की क्रियाओं से गुजरते हैं, वहाँ स्थानांतरण का व्यापार आद्यंत संकल्पात्मक होता है।

ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवि का संबंध वस्तु के स्थानांतरण की प्रक्रिया से नहीं है। उसने भक्ति साहित्य की रसिकोपासना या युगलोपासना की पद्धति को 'ग्रहण' करके, उसको अभिजात वर्गीय शृङ्गारपरक अभिरुचि से सम्बन्धित वस्तु रचना में ढाल दिया।

२. वस्तु स्रोत : भक्ति आचार्य मानस

जिस काव्य वस्तु को भक्त कवि ने प्रेषित किया उसकी उद्‌भावना भक्ति के आचार्य के मानस में हुई। अतः इस उद्‌भावक मानस की संरचना पर विचार कर

लेना आवश्यक होगा। इस मानस की सबसे बड़ी विशेषता है—इसकी गतिशीलता। रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों में यह मानस जकड़ा हुआ नहीं था। सबसे पहले तो अद्वैतवादी शंकराचार्य जी के दर्शन के प्रति यह आचार्य मानस प्रतिक्रियाशील था। शंकर के व्यक्तित्व में एक द्वन्द्व मिलता है: एक ओर तो ज्ञानकांडीय विचारधारा की चरम बौद्धिक व्याख्या है और दूसरी ओर उनके स्तोत्रों में प्रकट भक्ति मानस। इन दोनों मे पूर्ण सामंजस्य कृतित्व के धरातल पर नहीं हो पाया। भक्ति आचार्य का मानस इस सामंजस्य को लेकर उपस्थित हुआ: उसमें राग और बुद्धि का द्वन्द्व नहीं है। शंकर ने जिस प्रस्थानत्रयी का ज्ञानात्मक व्याख्यान किया था, उसी का राग संवलित व्याख्यान भक्ति आचार्य के मानस में स्फुरित हुआ। दूसरी ओर निगम परम्परा की मान्यता रखते हुए भी, आगम की अधिक गतिशील, संभावनापूर्ण और लोकोन्मुख परम्परा के साथ इस मानस का संबंध जुड़ा। आचार्य मानस की गतिशीलता के ये ही सूत्र हैं। भक्ति के आचार्य की गति का निर्धारण राग के द्वारा होता है: इसी दिशा से उसे दृष्टि प्राप्त होती है। इसी दृष्टि से वह प्रस्थानत्रयी की परम्परा की रागात्मक पुनर्व्याख्या करता है।

२.१ आचार्य मानस की भावात्मक संरचना

आचार्य मानस की भावात्मक संरचना के सूत्र आगम, पुराण और लोकभाषा साहित्य से आगत हैं।

२.११ आगम :

जिस प्रकार दक्षिण में विकसित भक्ति आचार्य के मानस को प्रस्थानत्रयी ने भाव-आचारपरक ज्ञानवादी संस्कार दिये, वहाँ भक्तिपरक क्रिया और अर्चना, अनुष्ठान और व्रत आदि की व्यवस्था उसे आगमीय स्रोत से प्राप्त हुई। शैवागम और शाक्तागम की भाँति वैष्णवागम भी मिलते हैं। आचार्यों का आगम की ओर झुकना एक विशेष लोकोन्मुख मानसिकता का परिचय देता हैं। वैष्णवागम की दो प्रसिद्ध शाखाएँ हैं: वैखानस और पांचरात्र। इनमें से पहली निगम की ओर अधिक झुकी हुई थी और दूसरी की प्रकृति मुख्यत: आगमीय है। आगम को कलियुग धर्म के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

सत्ययुग में वेद, त्रेता में स्मृति, द्वापर में पुराण तथा कलियुग में आगमोक्त आचार श्रेयस्कर माना गया है।[९] इसको छोड़ने वाले की गति नहीं है।[१०] पुराण साहित्य में हरिकीर्तन ही कलिधर्म के रूप में निरूपित है।[११] इसी से मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सकता है। यह पुराणोक्ति लोक मानस और मुनि मानस के द्वारा

आगमीय परम्परा की पुनः स्वीकृति और पुनर्प्राप्ति की स्थिति की ही सूचना देती है। हो सकता है यही उक्ति आगमीय परंपरा की ओर झुकने की प्रेरणा बन गई हो !

आगम का संबंध निगमेतर सांस्कृतिक परम्परा से है। इसका अग्रगामी संक्रमण समय-समय पर होता रहा। यदि निगम साहित्य अपौरुषेय है, तो आगम को भी भगवदोक्त कहा गया।[१२]

वेदोत्तर काल में धर्म-दर्शन के क्षेत्र का नेतृत्व मुख्यतः क्षत्रिय के हाथ में था। एक ओर राजर्षियों ने उपनिषद् की राजविद्या को जन्म दिया और दूसरी ओर नवोदित क्षत्रिय वर्गों ने वैष्णव धर्म का पोषण किया। वैष्णव धर्म का आरम्भिक रूप संभवतः वृष्णियों और आभीरों ने खड़ा किया। ये मूलतः तो क्षत्रिय जातियाँ नहीं थीं, पर क्षत्रिय-वर्ग में धीरे-धीरे सम्मिलित हो रहीं थीं। वैष्णवीकरण की प्रथम क्रिया तो वासुदेव-कृष्ण के द्वारा वैदिक विष्णु का प्रतिस्थापन थी। संभवतः श्रीमद्भगवद्गीता में यह योजना पूर्ण हो गई। वैदिक या ब्राह्मणोक्त विष्णु-पूजन और वैष्णवीय विष्णु पूजन में कोई साम्य नहीं है। करुणामय भगवान को साध्य मानकर वैष्णव भक्ति चली।

एक और जाति इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है--सात्त्वत। मेगास्थनीज ने सात्त्वतों की स्थिति शौरसेन प्रदेश में मानी है। एक स्रोत के अनुसार वे दक्षिण के शासक थे।[१३] सात्त्वत वृष्णिवंशीय क्षत्रियों की एक जाति थी। वासुदेव कृष्ण ने ही सात्त्वत जाति में सर्वप्रथम नारायणीय धर्म का प्रचार किया।[१४] महाभारत के आदि पर्व में एक स्थान पर वासुदेव के लिए सात्त्वत शब्द प्रयुक्त है।[१५] वैष्णव यज्ञों में सत्वगुण की अधिकता के कारण भी संभवतः इसे सात्त्वत कहा गया।[१६]

सात्त्वत धर्म एक आन्दोलन ही था : "...... लगभग छः सौ ईसवी पूर्व जिस समय ब्राह्मण ग्रन्थों के हिंसा प्रधान यज्ञ-याग की प्रतिक्रिया में बौद्ध और जैन धर्म के सुधार आन्दोलन हो रहे थे, उससे भी पहले से, अपेक्षाकृत शान्त किन्तु स्थिर ढंग से एक उपासना प्रधान संप्रदाय विकसित हो रहा था जो प्रारम्भ में वृष्णिवंशीय क्षत्रियों की सात्त्वत नामक जाति में ही सीमित था। वैदिक परम्परा का इसने सीधा विरोध नहीं किया, प्रत्युत अपने अहिंसा-प्रधान धर्म को वेद-विहित ही बतलाया।[१७]" और "अनुमान किया जाता है कि सबसे पहले भागवत धर्म एक अब्राह्मण उपासना-मार्ग के रूप में क्षत्रियों द्वारा प्रचलित किया गया था। बाद में चल कर नास्तिक जैन, बौद्ध जैसे अवैदिक धर्ममतों को जोर पकड़ते देखकर ब्राह्मणों ने वैष्णव या नारायणी धर्म के रूप में उसकी विधिवत व्यवस्था की।[१८]

पौराणिक साहित्य में विष्णु और वैश्य वर्ण का भी संबध स्थापित किया गया है। सतयुग में ब्रह्मा की पूजा होती थी, त्रेता में यज्ञ-पद्धति समादृत थी : द्वापर में विष्णु पूजा लोक प्रिय हुई।[१९] द्वापर वैश्य युग है।[२०] नारायण की पूजा क्षत्रिय और वैश्य करते थे।[२१]

वैष्णवागम

शैवागम, शाक्तागम और वैष्णवागम नाम यह सूचित करते हैं कि विभिन्न धार्मिक संप्रदाय अपने-अपने आगम और तत्संबंधी साहित्य को जन्म देते रहे। आगम की मूल प्रकृति को अक्षुण्य रखते हुए भी, कुछ सांप्रदायिक विशेषताएँ आगम शाखाओं में उगती रहीं। वैष्णवागम की प्रमुख विशेषता यह रही कि इसने वैदिक मंत्रों और सूक्तों को भी अपनी व्यवस्था में स्थान दिया।[२२] दूसरी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य आगम चर्या, अर्चा, साधना, मंत्र-तंत्र आदि पर बल देते रहे, वहाँ वैष्णव आगम में सौन्दर्य तात्विक दृष्टि का विकास विविध कला रूपों में अधिक हुआ। सभी आगमीय कला रूपों में एक अखिल भारतीय साम्य मिलता है।[२३] विशेष रूप से मूर्ति और स्थापत्य कलाओं के विकास में आगम का महत्वपूर्ण योगदान रहा। तीसरी विशेषता यह है कि अन्य आगमों की अपेक्षा, वैष्णवागमों में भक्ति तत्व मुखर से मुखरतर होता गया। वैष्णवागम की दो शाखाएँ मिलती हैं, वैखानस और पाँचरात्र।

२·१११ वैखानस : निगम-आगम समन्वय

ऋग्वेद में वैखानस शब्द का प्रयोग तो नहीं मिलता, पर कुछ व्यक्तियों का वर्णन अवश्य मिलता है, जिनकी प्रकृति इनसे मिलती-जुलती थी।[२४] ऋग्वेद के दृष्टाओं में से लगभग सौ को वैखानस बतलाया जाता है।[२५] बौद्ध साहित्य में बुद्ध और वैखानसों के बीच हुए शास्त्रार्थ का उल्लेख है।[२६] इनका वेद संबंध कृष्ण यजुर्वेद की किसी शाखा से है। तैत्तिरीय की दो शाखाओं औखेय और खंडिकेय में से, वैखानस का संबंध औखेय से माना जा सकता है।

प्रायः सभी ने वैखानसों को बनवासी कहा है।[२७] आश्रम की दृष्टि से इनका संबंध सन्यास से नहीं, वाणप्रस्थ से था[२८] अत्रि अपनी पत्नी के साथ वन में रहते ही थे।

विचारधारा की दृष्टि से वैदिक कर्मकांड और आचार से इनका असन्तोष ही प्रकट होता है। यद्यपि 'सामन' को वैखानस कहा गया है,[३०] तथापि इनका विचार था कि अनुष्ठान से भी स्वर्ग नहीं मिल सकता।[३१] इससे वैखानसों की वैचारिक क्रांति का परिचय मिलता है। वे बौद्धिक और तर्कनिष्ठ दृष्टि से स्वाध्यायाध्ययन में रत हुए।

वैखानस भृगु की विष्णु-परीक्षा, उनकी बौद्धिकता की ही परिचायिका है। अंगिरा की क्रांति दृष्टि बहुमान्य है ही। वैखानस मानस उस युग का प्रतिनिधित्व करता है। जब यज्ञ परक कर्मकांड से विरुचि होने लगी थी। वैखानसों ने यज्ञ का अनुष्ठान त्याग दिया था और विष्णु पूजा का व्रत ले लिया था। (विमानार्चनकल्प, पृष्ठ ५)

वैखानस के साथ 'तप' का तत्त्व दृढ़ता से संलग्न है। राम से मिलने जो तपस्वी आये थे, उनमें वैखानस भी थे। तप भी उनका उग्र प्रकृति का था।[३३] ये साधु से इसलिए उच्चतर कहे गये हैं कि साधु योग परक तपस्या करते हैं और वैखानस कठोर तप करता है।[३४] तप के साथ 'जप' का तत्व भी इनके साथ संबद्ध है। महाभारत के साक्ष्य से इसकी पुष्टि होती है।[३५] वैखानसों ने कर्म मार्ग को छोड़ कर 'ध्यान' का मार्ग अपना लिया था।[३६] भागवतोक्त आठ प्रकार के ध्यानियों में एक वैखानस भी हैं।[३७] इनके भोजन आदि के विवरण[३८] से स्पष्ट होता है कि ये कठोर जीवन व्यतीत करने का व्रत ले चुके थे।

वैखानस धर्मशास्त्र का कठोरता से पालन करते थे।[३९] धर्मशास्त्रों में इनके कर्तव्य कर्मों का भी विस्तृत विवेचन मिलता है।[४०] शास्त्रोक्त धार्मिक नियमों से इनका जीवन नियमित था।

वैखानसों के आश्रम देश के अधिकांश भागों में बिखरे थे।[४१] समाज में इनको बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।[४२] यद्यपि वैदिक कर्मकांड के प्रति इनमें प्रतिक्रिया दिखलाई पड़ती है, तथापि इनको श्रुति परायण कहा गया है।[४३]

विखनस ऋषि के सम्मुख विष्णु के शब्दों का वेद के रूप में प्राकट्य हुआ। विखनस को यह ज्ञान स्वयं विष्णु से प्राप्त हुआ।[४४] इसको 'सर्व वेदार्थ सारभूत' कहा गया और इसके अवतरण का मूल उद्‌देश्य था—सर्व भूत हित। वैखानस शास्त्र का विभाजन चतुर्विध है: चर्या (नित्य नैमित्तिक कार्यक्रम), क्रिया (इष्ट की पूजा और आराधना) ज्ञान और योग। क्रिया का लक्ष्य भगवान को प्रसन्न करना है।[४५] भागवत में इसका विस्तार से वर्णन है।[४६] ज्ञान का श्रेय है—नारायण (=ब्रह्म)।

इस प्रकार, वैखानसों ने निगम[४७] और आगम का[४८] समन्वय किया। जहाँ पाँचरात्रों को उग्र कहा जाता था, वहाँ वैखानसों को सौम्य।[५०] यद्यपि इन्होंने वैदिक आचार का संशोधित रूप ही ग्रहण किया था, फिर भी इनकी प्रकृति निगमीय मानी गई और पाँचरात्रों की आगमीय।[५१] कमलापति भगवान ने वैखानस मत का कथन 'वेदभ्रष्टों' के लिए किया था।[५२] इससे यह प्रतीत होता है कि इसमें वेद बाह्य जातियाँ सम्मिलित थीं।

रामानुज पूर्व युग में दक्षिण के वैष्णव मन्दिरों में वैखानस पूजा-पद्धति ही गृहीत थी। रामानुजाचार्य जी ने अधिकांश मन्दिरों में पांचरात्र पद्धति के द्वारा इसका प्रतिस्थापन किया।

२.११२. पांचरात्र

जैसा कि अभी संकेत किया गया है, जहाँ वैखानस सौम्य प्रकृति का वेद-विरोधी आन्दोलन था क्योंकि उसकी प्रकृति निगमीय बनी रही, वहाँ पांचरात्र की प्रकृति उग्र थी। वैदिक तत्त्वों की स्वीकृति इसमें बहुत सीमित हो गई। भक्ति आचार्यों के मानस को पांचरात्र पद्धति ने ही अधिक प्रभावित किया।

कुछ विद्वानों ने भागवत और पांचरात्र को दो प्रमुख वैष्णव संप्रदायों के रूप में स्वीकार किया है।[५३] भावगत में वैखानस भी सम्मिलित है। भागवत और पांचरात्र को एक भी कहा गया है।[५४]

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भागवतों और पांचरात्रों को अलग माना है।[५५]साध्य के स्वरूप की दृष्टि से भी कुछ अन्तर लक्षित होता है—वैखानस शाखा का सर्वोच्च देव विष्णु तथा उसके चार रूप [अच्युत, सत्य, पुरुष तथा अनिरुद्ध] हैं। सात्त्वतों में विष्णु नारायण रूप की मान्यता थी। पांचरात्र वासुदेव तथा चतुर्व्यूह के पूजक हैं। किन्तु कालांतर में भागवत धर्म इन तीनों का वाचक हो गया और सर्वोच्च देव हो गया—वासुदेव।

कुछ भी हो, एक बात निर्भ्रान्त रूप से कही जा सकती है कि पांचरात्र, वैष्णवागम परंपरा का अग्रगामी विकास है। इसमें वेद की वैखानसीय औपचारिक मान्यता बहुत शिथिल हो गई। भक्ति की पद्धति को इसी ने अधिक प्रभावित किया। पांचरात्र की प्रकृति और संरचना पर आगे संक्षेप में विचार किया गया है। यह भी प्रतीत होता हैं कि पांचरात्र संहिताओं का उदय सात्त्वत, भागवत, वैष्णव और पांचरात्रों के मिल जाने पर ही हुआ।[५६] संहिताओं के पूर्व ही मथुरा के सात्त्वतों ने दक्षिण में वासुदेव—भक्ति प्रचलित करदी थी।[५७] कंस के पश्चात् दक्षिण में इनके पाँच राज्य स्थापित होगये थे।[५८] तमिल साहित्य में प्राचीन काल से ही कृष्ण (कण्णन) और कृष्ण लीलाओं का उल्लेख मिलता है।[५९]

(क) पांचरात्र प्रकृति
वैखानस > पांचरात्र : ऋषिमानस > मुनिमानस—

सातवीं शती तक वैखानस प्रामाण्य और उसकी निगमीय प्रकृति निर्विवाद

रही ।[६०] इसके विपरीत पांचरात्र की निगमीय प्रकृति संदिग्ध और विवादास्पद रही। मीमांसकों ने पांचरात्र परम्परा को अवैदिक घोषित किया ।[६१] शंकर ने भी इस दर्शन को संदेह की दृष्टि से देखा ।[६२] पांचरात्र का खंडन भी हुआ ।[६३]

पीछे पांचरात्र प्रामाण्य को सिद्ध करने के प्रयत्न भी हुए। पांचरात्र साहित्य को निगमीय सिद्ध करने का प्रयत्न यमुनाचार्य जी ने किया ।[६४] वेदांत देशिकाचार्य जी ने पांचरात्र प्रामाण्य को सिद्ध ही नहीं किया, वैखानस की आलोचना भी की ।[६५] साथ ही इन्होंने दोनों में समन्वय करने की चेष्टा भी की और दोनों का प्रामाण्य भी स्वीकार किया ।[६६] श्री रामानुजाचार्य ने दक्षिण के अधिकांश मन्दिरों में पांचरात्र पद्धति की प्रतिष्ठा की[६७] और वैखानस पद्धति को हटाया।

जहाँ वैखानस में वैदिक ऋषियों की प्रतिष्ठा थी, वहाँ पाँचरात्र में सनत्कुमार की प्रतिष्ठा हुई। ये मुनि हैं, ब्रह्मा के मानस पुत्र सनत्कुमार[६८] ने नारद को उपदेश दिया ।[६९] इनको ऋषि नहीं। मुनि कहा गया है ।[७०] सनत्कुमार संहिता को आद्य[७१] और महासंहिता कहा गया है। इनके नाम से एक और संहिता की चर्चा भी की जाती है,[७२] जिसमें कृष्ण का गौरव स्तवन है। इससे यह सिद्ध होता है कि सनत्कुमार का मुनिमानस कृष्ण तत्त्व से आपूरित था। दक्षिण के आचार्य सनत्कुमार संहिता से बहुत अधिक प्रभावित थे ।[७३]

पांचरात्र कर्ताओं में पाँच ऋषियों का नाम आता है: शांडिल्य, औपगायन, मौंजायन, कौशिक, तथा भरद्वाज ।[७४] एक सूची यह है: वशिष्ठ, नारद, कपिल, गौतम और सनत्कुमार ।[७५] वैसे इस ज्ञान के मूल वक्ता नारायण माने गये ।[७६] तोताद्रि पर उपर्युक्त प्रथम सूची के ऋषियों को यह ज्ञान साधना के फलस्वरूप मिला ।[७७] फिर यह ज्ञान जन सामान्य तक आया। नारद और शांडिल्य ने आगे चलकर भक्ति सूत्रों की रचना की और कपिल ने भी भक्ति शास्त्र लिखा।

नारद का व्यक्तित्व भी कर्ताओं में महत्वपूर्ण बतलाया जाता है ।[७८] उसकी स्थिति बादल पर भी दिखलाई गई है।[७९] इनका उल्लेख गन्धर्वों के साथ भी होता हैं। कृष्ण—विष्णु से इनका घनिष्ट सम्बन्ध है ।[८०] ये नारद के पूज्य हैं और नारायण के रूप हैं ।[८१] नारद इन्हें सर्वोच्च देव घोषित करते हैं ।[८२]

सनत्कुमार संहिता के चार भाग हैं: ब्रह्मरात्र, शिवरात्र, इन्द्ररात्र और ऋषिरात्र। पहले में रूढ़ प्रथाओं (समयों) का उल्लेख है और पांचरात्र जन के भौतिक जीवन-क्रम का विस्तार है। विग्रह, मन्दिर निर्माण तथा पूजा-अर्चा सम्बन्धी विस्तृतियाँ भी इसमें मिलती हैं। शिवरात्र में मास के सुनिश्चित दिनों पर होने वाली इष्टदेव की

पूजा-विधि का विधान है। विभिन्न मन्त्रों पर भी विचार किया गया है।[८३] ऋषिरात्र में मन्त्र तत्त्व का अधिक विस्तार है। आयुधों का परिचय अस्त्र-शस्त्र के रूप में दिया गया है।[८४] इन्द्ररात्र में विग्रह के आंतरिक भागों के भरने की विधि और अवतार चर्चा है। शिष्यों की दीक्षा सम्बन्धी अधिनियम और चतुर्व्यूह कल्पना भी इसमें है।

पांचरात्र शाखा का अपना एक वेद और उपनिषद् भी था।[८५] हो सकता है पांचरात्र श्रुति, पांचरात्र उपनिषद् और पांचरात्र संहिताओं को जोड़ कर एक ज्ञान-व्यवस्था बनी हो। आज केवल संहिताएँ प्राप्त हैं।

पांचरात्र साहित्य में 'एकायन वेद' की चर्चा मिलती है। एक अनुश्रुति के अनुसार एकायन वेद का रहस्य स्वयं नारायण ने पाँच ऋषियों को तोताद्रि पर बतलाया। दूसरी अनुश्रुति के अनुसार यह ज्ञान संकर्षण ने शांडिल्य को दिया। परम्परा यह बनी : संकर्षण, शांडिल्य, सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, औपगायन, मौंजायन।[८६] यह मोक्ष का श्रेष्ठ उपाय है।[८७] पांचरात्र के ऋषि-मुनि शुक्ल चतुर्वेद की काव्य शाखा से संबद्ध माने जाते हैं।

ख. पांचरात्र संरचना

१. वैदिक तत्त्व

जैसा कि अन्यत्र देखा जा चुका है, वैखानस निगमीय प्रकृति के वैष्णव तपस्वी थे।[८८] वैखानस और पांचरात्र दोनों के ही आनुष्ठानिक क्रिया व्यापार में वैदिक तत्त्व संलग्न मिलते हैं। वैष्णवाचार में वैदिक देवताओं से संबद्ध मन्त्रों का उच्चारण होता रहा।[८९] इसी प्रकार समृद्धि प्राप्ति के लिए जो विष्णुयज्ञ किये जाते थे उनमें भी घृत की आहुतियाँ वैदिक मंत्रों के साथ दी जाती थीं।[९०] ऋतुपरक अनुष्ठानों में भी वैदिक मंत्रों के उच्चारण का विधान था।[९१] इतना अवश्य है कि वैखानस में जितने वैदिक तत्त्व अनुस्यूत थे, उतने पांचरात्र पद्धति में नहीं रहे।[९२]

पांचरात्र में वैदिक तत्वों का प्रतिस्थापन होने लगा। वैदिक गायत्री, जो सूर्यपरक थी, के स्थान पर विष्णु गायत्री की प्रतिष्ठा बढ़ी। वैदिक देवमयी संध्या का भी वैष्णवीकरण हुआ : संध्या का देव विष्णु है : प्रातः विष्णु, मध्याह्न में महाविष्णु और सायंकालीन संध्या में सदा विष्णु के जप का विधान है। प्रातः विष्णु गायत्री, मध्याह्न में द्वादशाक्षर तथा सायंकाल में अष्टाक्षर मंत्र का जाप करना चाहिए। प्रणव के भी तीन प्रकार बतलाए गये हैं।[९३] वैदिक विष्णुसूक्त[९४] का प्रयोग तो वैष्णवों में स्वाभाविक रूप से मान्य रहा।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जहाँ वैदिक मत्र इस परंपरा को स्वीकृत थे, वहाँ

वैष्णव मंत्रों का भी प्रचलन होता जा रहा था। वैदिक यज्ञों का स्थान वैष्णव यज्ञ लेने लगे थे।

२. पांचरात्र : योग > भक्ति

दैनिक जीवन के पंचविध विभाजन[९५] में योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। योगी के भोजन, योगासन, योगस्थान, आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है।[९६] योग का संबंध विष्णु पूजा से जोड़ा गया है : योग साधन से विष्णु-पूजा करके साधक कर्मयोगी बनता है।[९७] इसके पश्चात् महाविष्णु ज्ञानयोग प्रदान करते हैं।[९८] इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार मोक्ष के तीन साधनों,[९९] में योग प्रमुख एवं अंतिम सोपान है। योगी को आध्यात्मिक अनुभव स्वप्न में अपने शरीर में, अपने अहं में, मन में, तथा ज्ञानेन्द्रियों के धरातल पर हो सकता है।[१००] योग से ही विष्णु पद की प्राप्ति होती है। योग-साधक को विष्णु-सायुज्य मिलता है।[१०१] अंत में योग और 'भक्ति' लगभग समानार्थक हो गये। यहाँ योग का वैष्णवीकरण है। योग में भक्तिपरक ध्यान ही मान्य हुआ।

वैष्णवागम साहित्य के चार विषयों[१०२] में जो 'क्रिया' विभाग है, उसमें मंदिर निर्माण, प्रतिमा-निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा और विग्रह सेवा आती है। पुष्प-पूजा का विस्तार से विवेचन किया गया है।[१०३] वास्तव में मंत्र योग आदि का उपयोग भी विष्णु पूजा में ही होता था।

नारद पांचरात्र जैसी परवर्ती संहिताओं में भक्ति तत्त्व प्रमुख हो गया। नारद संहिता तो जैसे वैष्णव भक्ति शास्त्र का ही ग्रन्थ है।[१०४] इसमें चतुर्व्यूह के साथ-साथ दशावतार कल्पना भी पल्लवित हुई है। पांचरात्रोक्त ब्रह्म परिवार में भक्ति शास्त्र के तीन आचार्यों को परिगणित किया गया है : कपिल, भृगु, और नारद।[१०५] नारद और गरुड़ का व्यक्तित्व पांचरात्र साहित्य में बहुत उभरा है। भक्ति का आचार्य मानस योग मिश्रित भक्ति को लेकर ही आरम्भ में चला।

दाक्षिणात्य आचार्यों की प्रथम कड़ी के रूप में नाथमुनि (=रंगनाथ मुनि) की मान्यता है। ये योगी भी थे और भक्त भी। इन्होंने 'योग रहस्य' नामक एक पुस्तक भी लिखी। इसमें योग-ध्यान के तत्त्वों को वैष्णव पद्धति से स्पष्ट किया गया है। नाथ-मुनि ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों को समाधि-साधना में व्यतीत किया।[१०६] इस साधना में 'ध्यान' का प्रमुख स्थान था। इनके शिष्य कुरुकैक्कावलप्पन की उपासना भी योगपरक थी। ये भी अपना अधिकांश समय 'ध्यान' में ही व्यतीत करते थे। पेयाल्वार भी योगी थे।

यामुनाचार्य जी का संबंध भी योग से रहा। इन्होंने कुरुकैक्कावलप्पन से 'योग रहस्य' का अध्ययन किया था। अंत में ये भी सन्यासी हो गये थे। यामुनाचार्य जी ने गीता में प्रयुक्त 'योग' शब्द को 'भक्तियोग' के अर्थ में ही स्पष्ट किया।

इस प्रकार दाक्षिणात्य आचार्य मानस आरंभ में 'योग' के तत्वों से प्रभावित रहा। ध्यान का महत्त्व वैखानस और पांचरात्र दोनों ही आगमों में दिखलाई पड़ता है। योग फिर भक्ति के विधान में लीन होता गया।

योग की इस दाक्षिणात्य भक्ति विमिश्रित परम्परा को श्री राघवानंद जी उत्तर में लाये।[१०७] उनके सम्बन्ध में जो किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं, उनसे यह पता चलता है कि वे वैष्णव भक्त-आचार्य होने के साथ-साथ योगविद्या में भी निष्णात थे। यह मिलाजुला सूत्र रामानन्द मानस में होता हुआ, हिन्दी के निर्गुण भक्तों की साधना में पल्लवित हुआ। यह सम्मिलित संप्रदाय पर्याप्त लोकप्रिय हुआ।

अन्य सगुण भक्त आचार्यों का मानस योग के सूत्रों की भक्तिपरक परिणति को लेकर ही चला। वह 'ध्यान' 'विग्रह' या 'लीला' से संबद्ध हो गया। वल्लभाचार्य जी ने योगदर्शन के एक पारिभाषिक शब्द 'निरोध' को लिया। योग सूत्र के अनुसार चित्त की चंचल वृत्तियों का निरोध ही योग है। वल्लभाचार्य जी ने कहा कि भक्त को अपना मन कृष्ण में निरुद्ध करना चाहिए। इससे भक्त लोक मुक्त हो जाता है।[१०८] निरोध की परिभाषा है—बाह्य प्रपंचों की विस्मृति और भगवान में आसक्ति। उन्होंने निरोध का लक्षण भी गोपी और ब्रजवासी के सन्दर्भ में दिया।[१०९] यह एक सुख-दशा है। यह सुख इन्द्रिय निग्रह से प्राप्त होता है।[११०] निरोध में ही भाव की निष्पन्नावस्था घटित होती है। इन्द्रिय निग्रह के लिए 'मानसमखों' का संकेत किया गया है।[१११] इन्द्रियों को लौकिक विषयों से रोक कर अलौकिक विषयों की ओर दिशांतरित करना ही निरोध है।[११२] इसी के लिए मन को भगवत्कार्य अथवा 'सेवा' में लगाया जाता है। एक और उपाय सतत भागवत पारायण भी कहा गया है।

आगे के आचार्यों का मानस योग की पारिभाषिकता से क्रमशः मुक्त होता चला गया। नामजप, ध्यान, समाधि जैसे तत्त्व तो मान्य रहे, पर सभी सेवा और भावना की प्रगाढ़ प्रक्रियाओं के अंतर्गत समाविष्ट हो गये।

आचार्य विष्णु स्वामी की भक्ति भी योग-मिश्रित प्रतीत होती है। इनके संप्रदाय को 'रुद्र' से संबद्ध माना गया है। इनकी भक्ति 'तामसी' मानी गई है।[११३] इसी रुद्र संप्रदाय में ज्ञानेश्वर (११७१-११९२) नामदेव (१२७०-१३५०) तथा त्रिलोचन आते हैं।[११४] ज्ञानदेव का सम्बन्ध नाथ संप्रदाय से भी माना गया है।[११५] गोरखनाथ

के संप्रदायों में एक कपिलानी शाखा है। यह भी वैष्णव-योग की पुरानी परम्परा में आती है।[११६] कपिल विष्णु के अवतार थे, जिन्होंने अपनी माँ को योग मिश्रित भक्ति का उपदेश दिया था। कपिलानी शाखा इन्हीं से सम्बन्धित है। राजस्थान में कृष्णदास पयहारी ने योग मिश्रित भक्ति का पक्ष लेकर, हठयोग का प्रत्याख्यान किया था।[११७] उड़ीसा के महिमाधर्म में 'अलेख', 'निरंजन', 'निर्गुण' ब्रह्म की उपासना प्रचलित थी। इसके प्रवर्तक महिमा गोसाईं बुद्ध के अवतार माने जाते थे।[११८] गुजरात में नरसी मेहता (१५ वीं शती) ने ज्ञानभक्ति के समन्वित रूप का प्रचार किया। गुजरात का 'स्वामी नारायण संप्रदाय'[११९] भी इसी प्रकार का समन्वित संप्रदाय है।[१२०] महाराष्ट्र का महानुभाव पंथ भी इसी प्रकृति का है।[१२१] इस प्रकार समस्त भारत का भक्त मानस ज्ञान-योग मिश्रित भक्ति से एक समय आपूरित हो गया। पीछे योग भक्ति भाव में रासायनिक रूप से लीन हो गया।

वैष्णव अनुष्ठानों में पूजा और ध्यान के पश्चात् 'आह्वान' का विधान मिलता है। वैखानस पद्धति में आह्वान मंत्र यह है—'ओ३म् भूः'। विष्णु के आह्वान के लिए इन नामों का प्रयोग होता है : पुरुष, नारायण, सत्य,[१२२] अच्युत, तथा अनिरुद्ध।[१२३]

लक्ष्मी के आह्वान में इन नामों का प्रयोग हो सकता है : पद्महस्ता, कमला, वासुदेवी, हरिप्रिया, पद्मभवा, महोदध्यात्मजा आदि।[१२४]

जैसा कि पहले देखा जा चुका है, वैखानस पद्धति में 'ध्यान' महत्वपूर्ण हो गया था। ध्यान के केन्द्र में वैष्णव प्रतीकों की प्रतिष्ठा एक प्रकार से योग परक ध्यान का वैष्णवीकरण है। वैष्णव अनुष्ठानों में ध्यान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यान केन्द्र की योजना सौन्दर्य तात्त्विक हो उठी है। विष्णु के ध्यान का एक रूप यह है : स्वर्ण वर्ण, रक्तिम मुख, अरुण नेत्र, लाल हाथ-पैर, श्री वत्सांकित, पीतपट विभूषित, शंख-चक्रधारी।[१२५]

श्री का ध्यान इस प्रकार है : अत्यन्त सुन्दरी, पद्म प्रभा, जलजाक्षी, माला विभूषिता, हाथ में पद्म धारण किये हुए, कान्त वस्त्रालंकृता, सर्वाभरण भूषिता, तथा कनक कुम्भस्तनी।[१२६]

'नाम जप' भी आचार्य मानस का एक सर्व स्वीकृत तत्त्व है। भारतीय दर्शन में 'अक्षर' ब्रह्म है और 'शब्द' भी। शब्द की प्राप्ति और ब्रह्म की प्राप्ति में कोई भेद नहीं है। विंदु-नाद कल्पना में विंदु शिव है और नाद शक्ति। नाद जिन विविध ध्वनियों में प्रकट होता है, उनको मातृकाएँ कहा जाता है। मातृकाओं के माध्यम से 'नाद' सर्वत्र व्याप्त है। शक्ति रूप 'नाद' की प्राप्ति शब्द से ही हो सकती है। सृष्टि का

विकास ही नाद या प्रणव से हुआ है। यह दार्शनिक ऊहा-पोह आदिम मानव की ही एक वृत्ति पर आधारित है। शब्द की शक्ति को आदिम मानस समझता था। 'शब्द' की ध्वनि उसे आकर्षित करती थी। ध्वनि अपने विविध प्रकारों, अपनी गहराई, ऊँचाई, अथवा मंदता से आदिम मानव को प्रभावित करती थी। इस प्रकार आदिमानस के लिए ध्वनि की शक्तिवान सत्ता थी। ध्वनियों से अन्य प्राणी भी आकर्षित होते हैं। उसका यह विश्वास था कि प्रकृति की कोई रहस्यपूर्ण शक्ति शब्द रूप में प्रकट होकर उसे प्रभावित करती है और अन्य प्राणियों और पदार्थों को भी प्रभावित करती है। नामोच्चारण का फल अप्रतिकार्य (इर्रेजिस्टिविल) माना गया। 'नाम' की इस शक्ति की मान्यता जादू और धर्म दोनों क्षेत्रों में धीरे-धीरे प्रतिष्ठित हो गई। नामोच्चारण से व्यक्तित्व का आकर्षण होता है।[१२७] यही आगम पद्धति का 'आह्वान' है। नाम की ये संधारणाएँ आगमीय साहित्य से होकर भक्ति के आचार्य मानस तक चली आई।

'सहस्रनाम' की परम्परा का संबंध नाम-जप से ही है। विष्णु सहस्र नाम की मान्यता अधिकांश भक्ति संप्रदायों में हुई। 'गोपाल' सहस्र नाम' का भी प्रचलन हुआ। श्री रामानुजाचार्य जी ने 'कुरुत्ताल्वान' के द्वारा विष्णु सहस्रनाम का भाष्य 'भगवद्गुण-दर्पण' नाम से कराया था।

यह भी योग के एक सूत्र का ही वैष्णवीकरण है।

ब्रह्म नाम रूप मय होकर ही सगुण होता है। मध्यकालीन धर्म साधना में नामरूप की एकान्त प्रतिष्ठा मिलती है: 'जप की महिमा का बखान इस देश में नया नहीं है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने 'यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि' कह कर जप की महिमा बताई है। पर, साधारणतः जप मंत्र विशेष का हुआ करता है। भगवान के नाम को ही सबसे बड़ा मंत्र मानना और उसी के जप को समस्त सिद्धियों का मूल मानना उस युग की बहुत बड़ी विशेषता है और इस विशेषता ने ही भगवान के भाव-गृहीत रूप को इतना महत्व दिया है।"[१२८]

योग के क्षेत्र में मंत्रयोग नामरूपात्मक साधना है। सृष्टि ही नाम रूपात्मक है। इन्हीं नाम-रूप के अवलंबन से साधक मुक्त भी हो सकता है।[१२९] नाममय शब्द और भावमय रूप के आधार पर जो साधना की जाती है, वही मंत्रयोग है।[१३०] राग, बन्धन और मोक्ष दोनों का ही कारण है।

नाम एक भाषिक प्रतीक है।[१३१] उपनिषद् ने अन्न, प्राण, मन, ज्ञान और आनन्द रूप में ब्रह्म को प्रतीकायित किया।[१३२] विष्णु सहस्रनाम[१३३] में प्राण, प्रापद, प्राणामृत, जीवन जैसे प्रतीकात्मक नामों का प्रयोग मिलता है।

हरिदासी या सखी संप्रदाय में 'नाम-नामी' तत्त्व की उपेक्षा मिलती है। नाम से युगल तत्व का पूर्ण परिचय नहीं मिलता। उसका परिचय तो नित्य विहार से ही मिलता है। इसलिए नाम-जप की गौणता और नित्य बिहार की प्रमुखता इस संप्रदाय में हुई।

नामजप केवल इष्टदेव का ही नहीं, आचार्य और भक्तों का भी किया जाता था। नादमुनि के एक शिष्य उय्यग कोन्दार ने आंडाल रचित तिरुप्पावइ के पूर्व जो प्रशस्ति पद्य जोड़े हैं, उनमें से प्रथम में कहा गया है कि आंडाल का नामजप करना चाहिए। नंबि तिरुमंगैयाल्वार के नामजप को श्रेयस्कर मानते थे। वेदांत देशिकाचार्य जी ने 'पादुकासहस्र' में विष्णु की पादुकाओं को शठारी कहा है और नम्माल्वार भी 'शठकोप' (शठारी) हैं। अतः उनका नाम विष्णु की पादुकाओं का वाचक है। इस रूप में नम्माल्वार के नाम जप की अव्यक्त संस्तुति की गई है।

३. मन्त्र : तन्त्र और पांचरात्र—

सनत्कुमार संहिता में मंत्र का पर्याप्त विस्तार है। कुछ वैदिक मंत्रों का भी पांचरात्र पूजा में स्थान है।[१३५] किन्तु मंत्र-विचार स्वतन्त्र और आगम प्रकृति का ही अधिक है। मंत्र तीन प्रकार के होते हैं : सौम्य, आग्नेय और सौम्याग्नेय।[१३६] तीन मन्त्रों की महिमा विशेष है : अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर, और विष्णु गायत्री।[१३७] मंत्रों के साथ उनके छन्दों का भी विवरण है।[१३८] स्रोत की दृष्टि से मंत्रों के वैदिक तांत्रिक तथा वैदिक तांत्रिक, ये तीन प्रकार हो सकते हैं।[१३९] पांचरात्र विधान में तांत्रिक मंत्रों का प्राधान्य है। प्रत्येक कार्य के लिए मंत्र होते हैं।[१४०]

जहाँ पांचरात्र पूजा विधान मंत्र-तंत्रपरक होता है, वहाँ मुद्रा, न्यास और मंडल भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। तांत्रिक पूजा इनसे मिलकर ही पूर्ण होती है। मुद्रा[१४१] प्रतीकात्मक हस्त मुद्राएँ ही हैं। इनके प्रयोग से भगवान प्रसन्न होते हैं।[१४२] न्यास= रखना : मंत्र के अक्षरों को उँगली के निश्चित भागों, हाथों, या शरीर के भागों में कल्पित किया जाता है। इस प्रकार साधक का अंग मंत्र-गृह ही बन जाता है।[१४३] न्यास दो प्रकार का होता है : करन्यास और अंगन्यास। देवसंदर्भीय न्यास भी होता है।[१४४] विश्वास यह किया जाता है कि पूजक ने न्यास के द्वारा जिस शक्ति का अर्जन किया है, उस शक्ति को वह प्रतिमा में स्थानांतरित करता है। इन सबके लिए मंत्र हैं।

'मंडल' भी पूजा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। मंडल वृत्त, वर्ग, पुष्पाकृति आदि में घटित ज्यामितिक आकृतियाँ हैं।[१४५] ये आकृतियाँ प्रतिमाओं के सम्मुख रचित

होती हैं। पूजा सामग्री इन आकृतियों में ही रखी जाती है। इसके पश्चात् ही पूजा का आनुष्ठानिक कार्यक्रम आरम्भ होता है।

नारद संहिता में चार तंत्रों का उल्लेख किया गया है :[१४६] वैखानस, शैव, पाशुपत और पांचरात्र। इस प्रकार वैष्णव संप्रदायों की सञ्ज्ञा तंत्र ही हो गई। मंत्र विश्व-कल्याण कामना के भी हो सकते हैं और देवपरक भी।

तंत्र एक धार्मिक साहित्य है। इसमें मुख्यतः शक्ति की उपासना है। इसका विषय विभाजन मुख्यतः इस प्रकार है : रहस्यवाद, औषधि, भौतिक विज्ञान, धर्म, मंत्र, चक्र, प्रतीक, मंत्र विनियोग आदि। शंकर ने तंत्रों का उल्लेख किया है।[१४७] वैदिक साहित्य के समकक्ष तन्त्र को रखने के लिए श्रुति की ही दो शाखाएँ बतलाई गई— वैदिकी और तांत्रिकी।

वैष्णव आगमीय अनुष्ठानों में जहाँ कुछ वैदिक मंत्रों का संयोग रहा, वहाँ धीरे धीरे आगमीय प्रकृति के मंत्र उनका स्थान लेते गये। शुद्ध तांत्रिक बीजाक्षर मंत्र (ह्रीं, क्लीं आदि) नामपरक मंत्रों में परिवर्तित होने लगे। मंत्रों की प्रकृति धार्मिक से अधिक जादुई होती है।[१४८] यह अनुष्ठान और टोने का एक आवश्यक अंग था। जब यज्ञानुष्ठान मानसिक होने लगा, तो मंत्र की स्थिति भी अनुष्ठान से स्वतन्त्र होने लगी। मंत्र में अर्थ पक्ष गौण होता है। मन्त्र का सम्बन्ध योग और सिद्धि है।

मन्त्र का आंतरिक सिद्धांत यह है कि विश्व-प्रपंच कुछ निर्वैयक्तिक शक्तियों से संचालित है। उन शक्तियों को अपने पक्ष में करने के लिए 'मन्त्र' और 'स्तोत्र' का प्रयोग होता है। जहाँ 'स्तोत्र' वह धार्मिक विधान है, जिससे श्लाघापूर्वक देवताओं को प्रसन्न करके उनकी कृपा प्राप्त की जाती है, वहाँ 'मन्त्र' अपनी शक्ति से दिव्य शक्तियों को अभीष्ट पूर्ण करने के लिए विवश कर देता है। एक और अंतर है : एक विश्वास के अनुसार विश्व का नियमन चेतन और वैयक्तिक शक्तियों के द्वारा होता है और इन शक्तियों को 'स्तुति' से अनुकूल बनाया जा सकता है। दूसरा विचार यह है कि प्रपंच का नियमन करने वाली शक्तियाँ अचेतन और निर्वैयक्तिक हैं। इनको मंत्रों के द्वारा 'विवश' किया जाता है। इसी को रूढ़ अर्थ में 'सिद्धि' कहते हैं।[१५०] यह किंवदन्ती बहुमान्य है कि देवता मंत्र के वश में हैं, मन्त्र ब्राह्मणों के वश में हैं, अतः ब्राह्मण ही देवता हैं। मन्त्र जादुई व्यवस्था के साथ भी संबद्ध रहा और धार्मिक अनुष्ठानों के साथ भी : पहली व्यवस्था तन्त्र में विकसित हुई और दूसरी वेद में। ह्रीं, क्लीं आदि एकाक्षरी अर्थ शून्य शब्द मन्त्र जहाँ तांत्रिक प्रकृति के हैं, वहाँ 'नाम' परक मन्त्र व्यक्ति परक हैं, जिनका सम्बन्ध धर्म भावना से है। ये दूसरे प्रकार के मन्त्र किसी दिव्य

शक्ति या सिद्ध पुरुष द्वारा कहे जाते हैं और सिद्ध मानस इनको ग्रहण करता है। आगे 'दीक्षा' के द्वारा इनकी परम्परा चलनी है। भक्ति सम्बन्धी आचार्य मानस इसी प्रकार के मंत्रों और उनकी धार्मिक प्रकृति से संबद्ध है। वैष्णवागम में न तो तांत्रिक, एकाक्षरात्मक और अर्थ निरपेक्ष मंत्र ही रहे, और न वैदिक मंत्र ही। मंत्र 'नाम' परक हो गये। मंत्र का प्रयोग भक्ति की आचार्य-परम्परा में आद्यंत मिलता है।

श्री संप्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्री वेदांतदेशिक की विचारणा में मंत्र तत्त्व अन्यन्त मुखर है। उनकी स्तोत्र रचना की पृष्ठभूमि में भी मंत्र-भावना व्याप्त है। उन्होंने अपने मंत्र-तंत्र ज्ञान को 'सुदर्शन शतक' और 'गरुड़ पंचशन' में प्रकट किया है। 'गरुड़ दंडक' भी गरुड़ विषयक रचना ही है। देशिकाचार्य जी विष्णु मन्दिरों में गरुड़ मंत्र का पाठ करते थे। यह भी किंबदंती है कि स्वयं गरुड़ ने देशिकाचार्य जी को हयग्रीव मंत्र में दीक्षित किया था। हयग्रीव की कृपा से ही वे ज्ञान और प्रतिभा में सर्वजयी हो सके।

हयग्रीव मंत्रयान के प्रसिद्ध देवता हैं। यह आगमीय देवता भी है। इनका मंत्रयानी रूप यह बना : कभी सर्प धारण किये हुए और कभी मुण्डमाल भी, तिब्बत में-एक सिर दो भुजाएँ, सीधे हाथ में दण्डकरण मुद्रायुक्त, बाँया हाथ छाती पर, पाश लिए हुए, शरीर रक्त वर्ण, बालों में से हरे घोड़े का सिर निकला हुआ, व्याघ्रचर्म धारण किये हुए, एक हरा साँप लिपटा हुआ और पैरों तले कुचली हुई दुष्टात्माएँ। जापान में—धर्म ग्रन्थ के आरम्भ में हयग्रीव की स्तुति, मार द्वारा किये हुए विघ्नों का नाशक, सूर्य के रूप में परिणत होकर समस्त विश्व को ही नहीं, वरन योगाभ्यासी को भी प्रकाश प्रदान कर सिद्धि प्राप्ति के योग्य बनाने वाला।[१५१]

मंत्र के द्वारा देवता वश में हो जाता है, इसकी भक्तिभावमय परिणति यह हुई—'भगवान भगत के वश में।'

ङ-क्रिया : अर्चा विग्रह : संमूर्तन > कलात्मक सौन्दर्य बोध।

ज्ञान,[१५२] योग, क्रिया और चर्या का विवेचन पांचरात्र साहित्य में मिलता है, किन्तु अधिक बल क्रिया और चर्या पर है। क्रिया में सेवा, मन्दिर निर्माण, प्रतिमा निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा आदि का विचार आता है। क्रिया और चर्या दोनों का ही प्रेरणा स्रोत भक्ति में है। प्रतिमा और मन्दिर निर्माण सम्बन्धी प्रविधियों का सौन्दर्यमूलक विस्तार पांचरात्र साहित्य में मिलता है।

वैदिक कर्म-कांड में मूर्ति पूजा थी या नहीं, यह विवादास्पद विषय है।[१५३] चाहे प्राकृतिक शक्तियों पर केन्द्रित यज्ञ परक धर्म के जटिल और अभिजात स्तरों पर मूर्ति पूजा न रही हो, पर निम्नतर स्तरों पर मूर्ति पूजा अज्ञात नहीं थी।[१५४] रुद्र,[१५५] वरुण,[१५६] तथा मरुत[१५७] जैसे देवों की प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है। प्रतिमा निर्माण विधि के प्रश्न भी मिलते हैं।[१५८] अग्नि-चयन के समय मानवाकार स्वर्ण प्रतिमा की चर्चा मिलती है।[१५९] परवर्ती साहित्य में तो प्रतिमाओं और मन्दिरों के साक्ष्य भरे पड़े हैं।[१६०] महाभारत का साक्ष्य भी महत्वपूर्ण है।[१६१] पुराणों में भी प्रतिमा पूजा के प्रभूत प्रमाण मिलते हैं।[१६२]

वैदिक युग के पश्चात् 'अमूर्तन' और 'संमूर्तन' की प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप से चलने लगीं। जहाँ वैदिक संहिताओं की एक बौद्धिक संभावना औपनिषादिक सूक्ष्म ब्रह्म में प्रतिफलित हुई,वहाँ एक और संभावना विष्णु को लेकर,आगमीय तत्वों से पुष्ट होती हुई अग्रसर हुई। पहली प्रवृत्ति अमूर्तन और दूसरी प्रवृत्ति संमूर्तन की प्रविधियों की कार्यान्विति में संलग्न हुईं। वैदिक देव या महद्देव की ब्रह्म परक, ज्ञानकांडीय परिणति से चाहे उच्च मनीषिता संतुष्ट हुई हो, लोक धर्म-दर्शन की भूमि इतनी अधिक बौद्धिक नहीं हो सकती। उसमें भाव,श्रद्धा और विश्वास के तत्त्व सघनता से संग्रथित रहते हैं। इसी लोक मानस से प्रेरणा लेकर, एक व्यक्तिगत देवता (विष्णु) सत्य की अपेक्षा शिव, और शिव की अपेक्षा सुन्दर होने लगा। इस देव की सौन्दर्य-कल्पना तथा उसके संघठक तत्वों में संमूर्तन की अदम्य प्रेरणा अन्तर्निहित रही। इसी प्रेरणा ने भावी युग में विष्णु के बहुविध संमूर्तन में परिणति पाई। औपनिषदिक ब्रह्म यदि अमूर्तन की क्रिया से संबद्ध है, तो विष्णु रचनात्मक संमूर्तन की प्रक्रिया से।[१६३] 'हरि' और विष्णु की पूजा मूर्ति के रूप में होने लगी।[१६४] विष्णु की ही नहीं, विष्णु के आयुधों की भी पूजा होने लगी।[१६५] 'भागवत' का संबंध प्रतिमा-विधान से हो गया।[१६६] 'भागवत' पुजारी होने के साथ-साथ मन्दिर का निर्माता, मूर्ति-निर्माता तथा मन्दिरों की मरम्मत करने वाला भी होता था।[१६७] इसीलिए भागवत संप्रदायों में मूर्ति और आलय के निर्माण की विधियों का विस्तृत निरूपण किया गया हैं। मूर्ति और मन्दिर के निर्माण को देव-पूजा के ही समकक्ष रखा गया है।[१६८] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जहाँ औपनिषदिक् अमूर्तन की क्रिया चल रही थी, वहाँ देव-संमूर्तन और मूर्ति-पूजा की क्रियाएँ भी चल रही थीं।

इस प्रकार एक धार्मिक कलाकार ने जन्म लिया। व्यक्ति की सृजनात्मक ऐषणा को धर्म की उदात्त भूमि प्राप्त हुई। धर्म और सौन्दर्यबोध की सम्मिलित साधना चलने लगी, 'अनुष्ठान' और 'मूर्ति निर्माण' दोनों ही सृजनात्मक क्रिया से संबद्ध हैं।[१६९] इस प्रकार सामान्य मूर्ति निर्माता की अपेक्षा, धार्मिक मूर्ति निर्माता की स्थिति विशिष्ट हो जाती है।

मूर्ति पूजा और कला में वैष्णव धर्म का सर्वातिशय वैशिष्ट्य हो गया। जहाँ इसने धार्मिक और रहस्यात्मक अभिप्रायों को प्रतीकायित किया, वहाँ कला साधना भी इससे प्रेरित, उत्तेजित और अनुप्राणित हुई। एक ओर मनुष्य को सन्तोष हुआ कि अज्ञेय-अलक्ष्य तत्त्व उसकी पहुँच के बाहर नहीं रहा—उसे एक ऐसा राग-केन्द्र मिल गया जिसके प्रति उसकी पूजा-सामग्री और स्तुतियाँ समर्पित हो सकती थीं, दूसरी ओर उसकी सौन्दर्यवृत्ति का उदात्तीकरण भी हुआ। यद्यपि धार्मिक दृष्टि से नियोजित प्रतिमा-विधान में सौन्दर्य दृष्टि प्रायः उपेक्षित हो जाती है,[१७०] किन्तु आगम और तन्त्र साहित्य में प्रतिमा को अधिक से अधिक सुन्दर बनाने की प्रेरणा और विधि मिलती है।[१७१] प्रतिमा का रूप सौन्दर्य आत्म सौन्दर्य का ही वाचक हो जाता है।[१७२] बाह्य प्रतिमा में जो मानसिक बिंब झलकता है, वही आध्यात्मिक साधना का आधार बन जाता है।[१७३] इसीलिए शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों ने भी प्रतिमा-विधान को स्वीकार किया है।[१७४] धार्मिक मूर्तिकला में जहाँ जातीय परम्पराएँ स्थान पाती हैं, वहाँ व्यक्तिगत आस्था और अनुभूति भी। जब कला का विषय धार्मिक या रहस्यात्मक हो, तो अमूर्त को मूर्ति में ढालना एक बड़ी समस्या हो जाती है।[१७५] रुचि, संमूर्तन रूढ़ि और आवश्यकता के अनुसार मूर्ति भेद भी हो सकता है। मूर्ति में भगवान के नैज गुणों की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। गरुड़, शंख, चक्र आदि गुणों के ही प्रतीक हैं। अवतार भी उसके रूप का ही वैविध्य है। रुचि और आवश्यकता के अनुसार आयुधों और मुद्राओं में अन्तर होता रहा।

भारत में शुद्ध कलात्मक साधना बहुत कम हुई। धार्मिक कला का उत्कर्ष बहुत अधिक हुआ। मूर्ति-पूजा पूरी जाति का प्राण बन गयी।[१७६] प्रतिमा मूर्तियों को सजीव मान कर उनकी अर्चा का विधान हुआ।

भक्ति के कुछ संप्रदायों पर पांचरात्रोक्त 'वस्तु' का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। ब्रज में स्थित कृष्ण भक्ति संप्रदायों में से बल्लभ संप्रदाय और निंबार्क संप्रदाय की मान्यताओं और उनके साहित्य पर कुछ अधिक प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। अर्चा-विग्रहों की मान्यता का पर्याप्त प्रभाव इन संप्रदायों के इष्ट विग्रहों के रूप मे देखा जा सकता है।

अर्चा विग्रह की मान्यता ब्रह्म की एकदेशीय अभिव्यक्ति[१७७] मान लेने के बाद स्वाभाविक हो जाती है।[१७८] प्रतीक पूजा का आरम्भ भी उपनिषदों में प्रयुक्त विभिन्न नामों के आधार पर हुआ है।[१७९] उपनिषद् ने ब्रह्म के अनेक उपादानों को उसका शरीर कहा है।[१८०] वैदिक साहित्य में 'अर्चा' का प्रयोग मिलता है।[१८१] गीता ने कहा—[१८२] 'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।' इसमें अर्चा विग्रह

और उसकी पूजा का संकेत है। संभवत: वैदिक यज्ञों में कुछ देवताओं के प्रतिनिधि पशु माने गये थे।[१८३] यज्ञ स्वयं एक प्रतीक था। आर्य यदि होम में विश्वास करते तो द्राविड़ जाति में पूजा-पद्धति प्रचलित थी। कालांतर में वैदिक कर्मकांड अर्चा, सेवा और पूजा की विधियों में संक्रमित हुआ। यह पद्धति द्रविड़ों ने आर्यों को प्रदान की।[१८४] आर्य देवता विष्णु में द्रविड़ देवतत्वों का समावेश हुआ।[१८५]

पांचरात्र साहित्य ने अर्चा-विग्रहों और उनकी पूजा पर बल दिया। यह स्पष्ट घोषणा की गई कि निराकार में अर्चना, ध्यान और स्रोत किसी का उपयोग नहीं है और साकार रूप में ही अर्चा संभव है।[१८६] नराकार मूर्ति-निर्माण और उसकी पूजा की सभी विधियों का विस्तार किया गया। सम्भवत: पांचरात्र आगमों का योग कालान्तर में कृष्ण की अर्चा से हो गया था।[१८७]

नारायण के पाँच प्रादुर्भाव माने गये : पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा।[१८८] पेरुन्देवार के पाँच पदों में इन्हीं का कथन माना जाता है।[१८९] रामानुज पूर्व युग में ही भाव, भाषा, भक्ति, भक्त, और भगवान की पंचाभिव्यक्तियाँ स्वीकृत थीं। इनके मूल प्रेरक दक्षिण के विग्रह माने गये।[१९०] आल्वार साहित्य के द्रविड़ प्रबन्धम् में विष्णु और उनके अनेक रूपों की पूजा का उल्लेख है।[१९१] उत्तर भारत में दक्षिण से आगत आचार्यों ने अर्चा-विग्रहों की स्थापना की। अर्चा-सेवा के साथ संकीर्तन के व्याज से प्रचुर पद-साहित्य निर्मित हुआ।

भगवत् रसिक ने इस युग के संप्रदायों के अर्चा विग्रहों की चर्चा की है : गोविंद, मदन मोहन, गोपीनाथ, राधारमन, राधावल्लभ (हित वंश जी), जुगल किशोर तथा विहारी जी (हरिदास जी) वृन्दाबन के प्रमुख विग्रह हैं।[१९२] इनमें से प्रथम तीन का सम्बन्ध बंगाली वैष्णव संप्रदाय से हैं। सनातन गोस्वामी और गोपाल भट्ट ने इन विग्रहों की स्थापना की थी। वल्लभ संप्रदाय का श्रीनाथजी का विग्रह गिरि गोवर्धन पर बिराजमान था। वार्ता के अनुसार ये गिरिराज की कंदरा में विराजमान हैं।[१९३] इनमें परब्रह्मत्व, विभूति और व्यूह की स्थिति है।[१९४] इस संप्रदाय के अन्य सात स्वरूप ये हैं : मथुरेश जी, बिट्ठलनाथ जी, द्वारिकेश जी, गोकुल नाथ जी, गोकुलचन्द्रमा जी, बालकृष्ण जी, मदन मोहन जी। बिट्ठलनाथ जी के सेव्य नवनीतप्रिय जी हैं। इनमें श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा सबसे अधिक रही। अष्टछाप कवियों का सम्बन्ध भी श्रीनाथ जी से रहा। इन्द्र दमन, देवदमन और नाग दमन इनके तीन नाम हैं।[१९६] श्रीनाथ जी के चतुर्व्यूह प्राकट्य का भी विधान है।[१९७] इस प्रकार अर्चावतार की भावना श्रीनाथ जी के साथ पूर्ण रूप से संलग्न है। अर्चावतार श्रीनाथजी के स्वरूप की लीलाओं का संबंध आचार्य और उनके प्रेमी भक्तों से है। इसमें श्रीकृष्ण का आवेश है।

आवेश का कारण है—पुष्टिमार्गी वैष्णवों की सेवा ग्रहण करना।[१९८] वार्ता साहित्य में श्रीनाथ जी के भक्त के निमित्त विभिन्न कार्य करने के संकेत स्पष्ट रूप से दिये गये हैं।[१९९] सांप्रदायिक भावना के अनुसार ठाकुर जी के दक्षिण चरण से मर्यादा और वामचरण से पुष्टि मार्ग की स्थापना होती है। श्रीनाथ जी को साक्षात् कृष्ण माना गया है। विट्ठलेश जी को प्रकट प्रमाण कहा जाता है। वल्लभ मत में गोसाईं जी और श्रीनाथ जी एक स्वरूप समझे जाते हैं।[२००] इसी प्रकार नवनीतप्रिय जी के संबंध में अनुश्रुतियाँ हैं।[२०१] मनुष्य की तरह इनकी भी इच्छाएँ हैं।[२०२]

अन्य प्रसिद्ध विग्रह ये हैं :—

रूप गोस्वामी के	गोविंद जी
सनातन गो० के	मदन मोहन जी
माधोदास के	गोपीनाथ जी
गोपाल भट्ट के	राधारमन जी
श्रीहित हरवंश के	राधावल्लभ जी
श्री हरिव्यास के	जुगलकिशोर
हरिदास जी के	कुञ्जबिहारी

भक्तमाल में भक्तों के परिचय के साथ कुछ अर्चा विग्रहों की गणना की गई है : गदाधर भट्ट के लाल बिहारी, नारायणदास के लाल जी, भगवान दास के खोजी जी, गोपाली जी के मोहनलाला जी, रामदास के बिहारी जी, भगवत भक्त के कुञ्ज बिहारी जी, आदि।

ब्रज से बाहर कृष्ण के प्रसिद्ध अर्चा विग्रह पुरी के जगन्नाथ जी तथा पंढरपुर के विट्ठोबाजी हैं। भक्तों के हित इन अर्चा विग्रहों की क्रियात्मकता की कथाएँ भी मिलती हैं।

राज दरबारों की भाँति इन ठाकुरों के भी दरबार हैं। इनके दरबार में भक्त-कवि, कलाकार संगीतज्ञ, चित्रकार आदि सभी रहते हैं। अपनी अनुभूतियों और आश्रयदाता ठाकुर के रूप-माधुर्य का गान भक्त कवि करता रहा। कलाओं को इन अर्चा विग्रहों और उनके दरबारों से प्रोत्साहन मिला। गोकुलनाथ जी ने श्रीनाथजी के दरबार की योजना की। अलौकिकता यह है कि श्रीनाथ जी के साथ ही अष्ट सखाओं का प्राकट्य माना गया है।[२०३] श्री रंगम के रसिक सेवित दरबार की चर्चा श्री वैष्णव आचार्यों ने की है।

सौन्दर्यबोध का भी विकास होता गया। सत्ययुग के विग्रहों के साथ जटा, बल्कल, मृगचर्म आदि का विधान किया गया है।[२०४] कलियुग के अर्चा विग्रह मणिमय आभूषणों और चक्र आदि आयुधों से सुसज्जित रहते ।[२०५]

अर्चा विग्रहों के साथ शुद्ध भावात्मक 'सेवा' का विधान भी किया गया। अर्चा विग्रह की मान्यता के द्वारा इष्ट मनुष्य के पास आ जाता है। मनुष्य के साथ इष्ट के भावात्मक तादात्म्य की ही यह प्रतीकात्मक पद्धति है। अर्चा विग्रह के साथ अर्चक की भावनाएँ भावात्मक रूप से घटित होती हैं। भगवान भक्त के सेवा कार्यों और उसकी सेवा सामग्री के उपभोक्ता बन जाते हैं। अर्चा विग्रह 'दैव' (=देव के द्वारा स्थापित), सैद्ध (=सिद्ध पुरुषों के द्वारा स्थापित) और मानुष (=मनुष्य द्वारा स्थापित) हो सकते हैं।[२०६] इन अर्चा विग्रहों में भावनाएँ साकार हो उठती हैं।

च–वैष्णव अनुष्ठान

वैदिक अनुष्ठान की भाँति पांचरात्र पद्धति में भी अग्नि-प्रज्ज्वलन की विधियों का वर्णन है।[२०७] ये अग्नियाँ आठ प्रकार की कही गई हैं। वैदिक अनुष्ठानों की भाँति वैष्णव अनुष्ठान भी मन्त्रों से भरे रहते हैं। प्रत्येक स्थल, सामग्री और अनुष्ठान सम्बन्धी क्रिया को अभिमन्त्रित किया जाता था।[२०८] देवाभिषेक, उत्सवारभ तथा मण्डल निर्माण आदि पर भी विस्तृत विचार किया गया है।[२०९] देव पूजा विधि में सात 'योगों' का भी उल्लेख किया गया है।[२१०] न्यास, मुद्रा, और मण्डल का भी वैष्णव अनुष्ठान में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पूजा की निश्चित सामग्री का भी कथन मिलता है। उदाहरण के लिए सौभाग्यकामी मनुष्य को शुक्र के दिन फूलमाला, सुगन्ध और तुलसी आदि से लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए।[२११] विष्णु की पूजा की सामग्री इस प्रकार की हो सकती है: जल से पूर्ण घट, कुश, धान, स्वर्ण खंड, तथा रत्न।[२१२] सामग्री मनोकामना और ॠतुओं के अनुसार बदल भी सकती है।

भक्ति के आचार्य मानस ने आनुष्ठानिक औपचारिकताओं को स्वीकार तो किया, किन्तु बल का स्थानांतरण हुआ। बल आनुष्ठानिक भावना पर अधिक होता गया। आगे चलकर अनुष्ठान का भाव पक्ष ही प्रमुख हो गया। अनुष्ठानों में 'ध्यान' का भाग भी था। इस पर 'योग' तत्त्व के साथ विचार हो चुका है। वैष्णव ध्यान केन्द्र भी सुन्दर से सुन्दरतर होता गया। रसिक संप्रदायों में मंत्र-तंत्र वाला भाग कम होता गया।

अनुष्ठानों में अन्य दिव्य शक्तियों की पूजा का विधान भी मिलता है चाहे पांचरात्र पद्धति में विष्णु की केन्द्रीय और महनीय स्थिति हो, किन्तु अन्य काम्यदेवों की स्थिति भी मिलती है। उदाहरण के लिए सनत्कुमार संहिता के शिवरात्र विभाग में इन देवताओं की पूजा का विधान मिलता है : षण्मुख, वह्नि, गणपति, रुद्र, यम, शक्र,[२१३] तथा काम।[२१४] इसी प्रकार नारद संहिता में यह देव मण्डल मिलता है : अग्नि, ब्रह्मा, धनद, गजास्य, श्री, स्कन्द, सूर्य, रुद्र, दुर्गा, यम, इन्द्र, काम, अश्विनी और चन्द्र।[२१५] दशावतार तथा उनके पूजा के फलों का तो विस्तार से वर्णन किया ही गया है।[२१६] अन्य देवियाँ इस प्रकार हैं : शान्ति, श्री, सरस्वती, और रति।[२१७] आज भी वैष्णव मन्दिरों में कुछ देवताओं से संबंधित पर्व-उत्सव मनाए जाते हैं। विशेष रूप से दशावतार सम्बन्धी पर्वोत्सवों पर बल दिया जाता है।

उर्वरता सम्बन्धी अनुष्ठान भी वैष्णवों में प्रचलित रहे। इनकी बीज-स्थिति, चाहे वैदिक साहित्य में मिलती हो, प्रकृतितः इनमें लोक तत्वों का समावेश हैं। गोकुलाष्टमी के अवसर पर भक्तगण एक दूसरे पर दूध, दही, मक्खन आदि छिड़कते हैं। नारियल तथा दूसरे फल लुटाये जाते हैं। विष्णु से सम्बन्धित उत्सवों पर पौष्टिक और स्वादिष्ट भोजन बनाना और खाना भी अनुष्ठान का भाग है। यह भी स्वास्थ्य, समृद्धि और उर्वरता से संबद्ध अनुष्ठानों के लक्षण हैं। चैत्र में उर्वरा सम्बन्धी कई उत्सव होते हैं। इसी समय अन्न परिपक्व होता है।[२१८]

अनुष्ठानों से संबंधित यात्राएँ भी हैं। उदाहरण के लिए दोलायात्रा (=डोल) भी एक वैष्णव पर्व है। इसका विशेष संबंध कृष्ण से हो गया। इसमें लाल-गुलाल, लगाने और उड़ाने का विधान है। विग्रह को झुलाया भी जाता है। अन्य प्रकार के खेल भी इस अवसर पर चलते हैं। रंग छिड़कना इस अनुष्ठान का प्रधान भाग है। होली के अवसर पर आज भी ब्रज में 'फूलडोल' की योजना होती है।

पर्वों और उत्सवों पर यक्ष, किन्नर, विद्याधर और गन्धर्वों की उपस्थिति भी ध्यान आकर्षित करती है। ये सब मंगलकर और आनंदी जीव हैं।[२१९] ये अपनी प्रियाओं के साथ क्रीड़ाशील रहते हैं। ये प्रेम और समृद्धि के भी प्रतीक हैं।[२२०] विद्याधर वायव्य शक्तियाँ हैं। यक्षों का सम्बन्ध उर्वरता और वनस्पति जगत् से है।

वैष्णव मन्दिरों में सम्पन्न होने वाले अनुष्ठानों में नर्तन-गायन बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। देवदासियों आदि का नर्तन गायन अनुष्ठान का भाग ही था।

श्री नादमुनि ने प्रबन्धम्-गायन को श्रीरंगम की पूजा-अर्चा का एक अनिवार्य भाग बना दिया। एक उत्सव शुद्ध प्रबन्धम् गायन के लिए ही निश्चित किया गया।

आलवंतार जी बड़े भारी गायक थे। तिरुवइमौलि के प्रबन्धमों के भावों का प्रदर्शन इन्होंने स्वरों और मुद्राओं के द्वारा किया।[२२१] जब रामानुजाचार्य जी रंगनाथ के दर्शनों को जाते थे तो पेरियाल्वार के पद्यों का पाठ करते थे। जब श्री रामानुजाचार्य जी ने मन्दिरों की पूजा विधि को पांचरात्र संरचना में ढाला, तो पूजा विधान में आल्वारों के प्रबन्धों के गायन को उसमें प्रमुख स्थान दिया गया। स्वयं आल्वार अर्चा विग्रहों के सम्मुख भावावेश में विभोर होकर गुण-लीला-गान करते थे। वेदांतदेशिकाचार्य जी ने अर्चा विग्रहों के सम्मुख गाने के लिए कई रचनाएँ प्रस्तुत कीं।[२२२]

नाथमुनि ने आल्वार प्रबन्धम् साहित्य को छन्द और संगीत के अनुसार ही वर्गीकृत किया। इसका तात्पर्य है भगवदर्चा में गेयता का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

अन्य संप्रदायों के मन्दिर में भी नर्तन-गायन चलता है। नर्तन का तत्त्व तो कुछ शिथिल होता गया। गायन-कीर्तन की परम्परा से संबोधित प्रचुर पद-साहित्य की रचना हुई। प्रत्येक संप्रदाय के साहित्य में आनुष्ठानिक संकीर्तनों के संग्रह मिलते हैं।

छ–उत्सव—

पांचरात्र साहित्य में विविध उत्सवों और अनुष्ठानों एवं उनकी विधियों का विस्तार से वर्णन किया है। ब्रजभाषा साहित्य से सम्बद्ध कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में भी उत्सवों का विधान है, चाहे उनकी रूप, रचना और भावना भिन्न हो। ये उत्सव इष्ट के जन्मोत्सवों, ऋतूत्सवों और सांस्कृतिक उत्सवों के रूप में मनाए जाते हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में एक परम्परा दस उत्सवों की है।[२२३] इनमें फागु, डोल, तीज, (हिंडोले) सरद, पाटोत्सव, दीपमालिका, खिचरी, बसन्त आदि प्रमुख हैं। एक परम्परा के अनुसार उत्सवों की संख्या सोलह है।[२२४] राधावल्लभ संप्रदाय में व्रतोत्सवों का विधान नहीं है। उपर्युक्त सभी उत्सवों से सम्बन्धित पद-साहित्य की रचना ब्रजभाषा में हुई है।

इसी प्रकार अन्य भक्ति सम्प्रदायों में भी वर्षोत्सवों का विधान मिलता है। वर्षोत्सवों से सम्बन्धित 'संकीर्तन-पदों' के संग्रह भी संप्रदायों में मिलते हैं।[२२५]

ज–भागवत पूजा—

दैनक जीवन के विभागों में एक 'इज्या' भी है। इज्या का तात्पर्य है—भक्तों, दीक्षित पुरुषों अथवा पार्षदों की पूजा।[२२६] इसका विकास वैष्णवों की 'भागवत' धारणा में हुआ। भागवतों की पूजा का विधान भी कुछ वैष्णव मन्दिरों में पाया जाता

है। भागवतों या भक्तों के चरित्र गायन की परम्परा भी मन्दिरों में चलती रही। इसके लिए भक्त चरित्र सम्बन्धी साहित्य भी लिखा गया। इस प्रकार के ग्रन्थों की रचना संस्कृत में भी हुई और लोक भाषाओं में भी। भक्त की पूजा भगवान की पूजा के समान ही है।[२२७]

निंबार्क संप्रदाय के श्री नारायणदेवाचार्य जी ने 'आचार्य चरित्र' ग्रन्थ संस्कृत में लिखा, जिसमें इस संप्रदाय के आचार्यों का वर्णन मिलता है। 'भक्तमाल' इसी प्रकार का भाषा ग्रन्थ है।

भागवत पूजा वैदिक ऋषि पूजा का ही वैष्णवीकृत रूप है। वैदिक परम्परा में ऋषियों[२२८] को, ब्राह्मणों[२२९] को देव कहा गया है।

उपनिषद् ने 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति,[२३०] कहकर जैसे ब्रह्मवादियों का उत्कर्ष ज्ञापित किया हो! ब्रह्मसूत्र के अनुसार सृष्टि रचना के अतिरिक्त मुक्त आत्माओं और भगवान में कोई भेद नहीं है।[२३१] भक्ति के क्षेत्र में भी भक्त और भगवान की एकता के कथन किये गये। नारद ने यही बात कही।[२३२] तुलसी ने भी भक्त और भगवान के बीच एकता मानी।[२३३] इसी सिद्धान्त को मध्यकाल में अवतारवादी रूप दे दिया गया। भक्तमाल और इसी शैली की अन्य रचनाओं में भक्तों के अवतार के रूप में देखा गया है।

अवतार भावना कभी पौराणिक आधार पर प्रतिफलित हुई है और कभी उपमा और रूपक के आधार पर। वाल्मीकि और व्यास के अवतार की परम्परा मध्यकाल के कवियों तक चली आई।[२३४] जयदेव की एक अवतार परम्परा बनी : पहले वणिक जन्म में 'शृङ्गार समुद्र', द्वितीय जन्म में 'कृष्ण कर्णामृता' और तृतीय जन्म में 'गीत गोविंद' की रचना की।[२३५] यह अवतार-कल्पना कार्य साम्य को लेकर चली। नाम साम्य के आधार पर नाभादास जी ने दिवाकर भक्त को दिवाकर का,[२३६] नारायण भक्त को नारायण का[२३७] और श्रीधर भक्त को श्रीधर का[२३८] अवतार कहा।

राधाभाव, गोपीभाव प्रधान होने के कारण सखाओं और सखियों के अवतार के रूप में भी भक्तों को देखा जाने लगा। अष्टछाप के कवियों को सखा-सखी रूप में कल्पित किया गया।[२३९] इसी प्रकार की भावना चैतन्य मत के भक्तों के सम्बन्ध में रही।[२४०] चौरासी वैष्णवन की वार्ता में भक्तों के भौतिक और आधिदैविक व्यक्तित्व के दो स्तरों को माना गया है। घनानंद को भी बहुगुनी सखी कहा जाता है।[२४१] मीरा को गोपी का अवतार माना गया। (भक्तमाल, छप्पय, ११५)

सखी भाव के अतिरिक्त वात्सल्य से सम्बन्धित भक्तों को अवतार कहा गया। गोपाली जी यशोदा की अवतार थीं।[२४२] पर वात्सल्य परक अवतार भावना सखी परक अवतार भावना से कम लोकप्रिय रहीं।

भगवान के समान भक्त को भी उपास्य के रूप में देखा गया। भक्तमाल के रचयिता भक्तों का यशगान ही करना चाहते हैं।[२४३] अग्रदास जी के अनुसार भक्तों का यशगान करने के अतिरिक्त उद्धार का और कोई उपाय नहीं है।[२४४] भक्त कवि व्यास जी भक्त को ही इष्ट मानते हैं।[२४५] इस प्रकार भगवान के ही नहीं, संत के गुण-गान की परम्परा भी साहित्य में चली।

मध्यकालीन भक्ति के आचार्यो ने विभव की अपेक्षा 'आवेश' तत्व को अधिक व्यापकता प्रदान की। पांचरात्र, पुराण और उपनिषद् की परम्परा में यह सूत्र मिलता है।[२४६] इस तत्त्व का स्रोत वैष्णव तंत्र ही है। भक्तमाल जैसे ग्रंथों में भगवान से आविष्ट भक्तों का चरित्र गायन है। पुराण प्रसिद्ध कूर्मादि आवेशावतारों का ही यह विस्तार है। ब्रजभाषा के भक्त चरित्र सम्बन्धी साहित्य में यह विस्तार दृष्टव्य है। वल्लभ संप्रदाय के हरिदास-मोहनदास में ठाकुरजी का आवेश माना जाता था।[२४७] दामोदरदास के सम्बन्ध में यह कहा गया है : "तथा दामोदरदास की देह मात्र दीसत है, परन्तु श्री आचार्य जी को आवेश अष्ट प्रहर रहत है।"[२४८] सखियों के आवेश की भी चर्चा मिलती है। भक्तमाल[२४९] में कुलशेखर की आवेश वार्ता मिलती है। चैतन्य में लीलावेश रहता था।[२५०] इस प्रकार आवेशावतार की सांप्रदायिक विस्तृति ब्रजभाषा में मिलती है। इसका सम्बन्ध कृष्ण से चाहे न हो, पर ब्रजभाषा साहित्य में यह वर्णित है।

दक्षिण में बहुत पहले ही आल्वारों को अवतार के रूप में देखा जा चुका था। गुरु परम्परा के अनुसार कुछ प्रमुख सूत्र इस प्रकार हैं : पोइकैयार, बूतत्तार तथा पेयार क्रमशः शंख, गदा तथा नंदक (तलवार) के अवतार थे। तिरुमलसहपिरान चक्र के अवतार थे। विश्वकसेन का अवतरित्त रूप नम्माल्वार हैं। कुलशेखर पेरुमाल कौस्तुभ के अवतार हैं।[२५१] परियाल्वार गरुड़ के, तोंडरडि पोडियाल्वार वनमाला के, तथा तिरुमंगैयाल्वार नीलदेवी के अवतार माने गये। इस प्रकार आल्वार विष्णु के आयुधों, वाहनों अथवा उनके अनुयायियों के अवतार के रूप में परिकल्पित हुए। व्यावहारिक रूप से आल्वारों की प्रतिमाओं की पूजा वैष्णव मंदिरों में प्रचलित हुई।

दक्षिण के आचार्य मानस ने आल्वार भक्तों की भक्ति का भी कथन किया है। श्रीनाद मुनि ने श्रीरंगम के मंदिर में आल्वार-मूर्तियों की पूजा का विधान किया।

उनकी जन्म तिथियाँ भी मनाई जाती थीं। श्री यामुनाचार्य जी ने नम्माल्वार के संबंध में जो पद्य लिखा है, उसमें वे आल्वार के प्रति नतमस्तक हुए हैं। उनके चरणों को उन्होंने अपना सर्वस्व माना है। विष्णु के गुण-गायक के रूप में रामानुजाचार्य जी ने आल्वारों को नमन किया है। उनके विशेष प्रणम्य नम्माल्वार ही है। रामानुज आंडाल के प्रति भी विनत हैं।

लोकाचार्य जी ने अपने 'सारसंग्रह' में तीन प्रकार की सेवा स्वीकार की है। इसमें से एक भगवद्भक्त सेवा भी है।[२५२] भक्त से भक्ति की याचना की जाती है। नाथमुनि के शिष्य उय्यगकोन्दार ने आंडाल से श्री वेंकटेश्वर के कैंकर्य की याचना की है। आल्वारों का प्रशस्ति गायन भी हुआ।

नादमुनि ने प्रबंधम् संग्रह में चार प्रशस्ति पदों को प्रास्ताविक रूप में दिया है। इनमें आल्वारों की महिमा का गायन है। इनमें प्रथम प्रशस्ति पेरियाल्वार से सम्बन्धित है। नादमुनि के शिष्य उय्यग कोन्दार ने आंडाल रचित तिरुप्पावइ के पूर्व कुछ प्रशस्ति-पद्य जोड़े। इनके एक और शिष्य तिरुक्कण्ण मंगैयांटान ने आंडाल के संबंध में दो पद्य लिखे। 'स्तोत्ररत्नम्' में यामुनाचार्य जी ने नम्माल्वार की प्रशस्ति में पद्य लिखा। मालाधर के शिष्य इलैआपेरुमाल ने आल्वार-प्रशति में एक पद्य लिखा था। इसका गायन 'तिरुप्पाल्लि एलुच्चि' से पूर्व होता था। रामानुजाचार्य जी ने 'तनियान' लिखे जो आल्वार पद्यों से पूर्व गाये जाते थे। श्री वेदांत देशिकाचार्य जी ने 'गोदास्तुति' की रचना की।

झ गुरु-भक्ति

उपनिषद् ने परमात्मा की भक्ति को गुरु भक्ति के समान बतलाया। गुरुभक्ति से ही ज्ञान का प्रकाश होता है।[२५३]

ज्ञान या संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों को विष्णु के अवतार के रूप में माना जाता रहा है।[२५४] इसी परंपरा में मध्य युग की वे संधारणाएँ आती हैं, जिनके अनुसार भक्ति संप्रदाय के प्रवर्त्तकों और भक्तों को विष्णु के या उनके उपकरणों के अवतारों के रूप में ग्रहण किया गया। ये भी संदर्भ बन गये, जिन पर ब्रजभाषा के कवियों ने काव्य रचा। यहाँ केवल उन आचार्य-परम्पराओं को देख लेना अलम् होगा, जिनसे ब्रज भाषा साहित्य का संबंध है।

श्रीवल्लभाचार्य जी अग्नि और कृष्ण के अवतार माने जाते हैं।[२५५] इसके साथ ही इनको विविध देवताओं और ऋषियों का अवतार भी कहा गया है।[२५६]

वल्लभ संप्रदाय के कवियों ने उन्हें अवतार एवं उपास्य कहा है। कुम्भनदास ने इन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम का अवतार कहा है।[२५७] ये सकल विश्व के आधार हैं। भक्तों के मोक्ष-दाता हैं; श्रीकृष्ण के अवतार हैं।[२५८] नन्ददास पूर्ण ब्रह्म का ही प्राकट्य इनके रूप में मानते हैं।[२५९] हरिदास कवि ने मायावाद का खंडन करने वाले अवतार वल्लभ का यश गाया है।[२६०] वार्ता साहित्य में इनको ठाकुर जी का स्वरूप कहा गया है।

वल्लभाचार्य जी के पश्चात् सांप्रदायिक आचार्यावतार की धारणा और विस्तृत हुई। बिट्ठलनाथ जी के संबंध में अधिक स्तुति परक पदों की रचना हुई। वल्लभाचार्य जी के पुत्रों और पौत्रों को भी कृष्णावतार कहा गया। वार्ता के अनुसार बिट्ठलनाथ जी और गोपीनाथ जी कृष्ण और बलराम के अवतार हैं।[२६१] छीत स्वामी के अनुसार बिट्ठलनाथ और श्री कृष्ण अभिन्न हैं।[२६२] नन्ददास के भी ये उपास्य हैं।[२६३] बिट्ठल और गिरिधर में इन्होंने भी अभेद माना है।[२६४] कान्हरथ ने इनको दुःख निवारणार्थ लीलावतार कहा है।[२६५] जिनका वेद भी पार नहीं पाते वे ही बिट्ठल अक्का जू के उदर से उत्पन्न हुए।[२६६] छीत स्वामी ने बिट्ठल अवतार के प्रति विशेष श्रद्धा प्रकट की है।

बिट्ठलनाथ जी के सात पुत्र थे। नाभादास जी ने इन सातों को कृष्ण रूप कहा है।[२६७] छीत स्वामी ने उपास्य आचार्य के रूप में इन सातों की वन्दना की है।[२६८] इन सातों में से गोकुलनाथ जी के प्रति स्वतन्त्र पद भी निवेदित किये गये।[२६९]

इसी प्रकार चैतन्य संप्रदाय में स्वयं चैतन्य कृष्ण के अवतार कहे गये।[२७०] माधुरीदास ने कृष्ण रूप में चैतन्य की वन्दना की है।[२७१] नाभादास जी ने चैतन्य और नित्यानन्द दोनों को ही कृष्ण-बलराम का अवतार माना है।[२७२] चैतन्यचरितामृत की आदि लीला में भी चैतन्य का अवतारत्व भावित है।[२७३] चैतन्य की सामूहिक अवतार योजना भी मिलती है।[२७४] इनके अवतार का प्रयोजन सेवा और भजन की अपेक्षा प्रेम, भक्ति और कीर्तन को प्रधानता देना है। प्रेमाभक्ति के दो अङ्ग हैं, लीला और रस। ये ही इस अवतार के प्रमुख प्रयोजन हैं।[२७५] इस संप्रदाय के हिन्दी कवियों की दृष्टि में उनका रसात्मक रूप प्रमुख रहा। इनके द्वारा मायावाद के खंडन की भी बात कही गई है।[२७६]

श्री हित हरिवंश जी को संप्रदाय में वंशी का अवतार माना गया है।[२७७] भक्तकवि व्यास जी ने भी कुछ ऐसी सूचना दी है।[२७८] रासरस की मूल प्रेरणा भागवतकार ने वंशी में ही मानी है।[२७९] वंशी की यही मान्यता संप्रदाय में है। वही कार्य हित हरिवंश जी ने किया: उन्होंने भक्तों को रसोन्मुख बनाया। प्रेमदास जी ने इसी प्रकार की

भावना प्रकट की है।[२८०] उन्होंने उनको जगत्पति नाम से संबोधित किया है।[२८१] संप्रदाय में ब्रज लीलाओं की उपेक्षा है और मान्यता वृन्दाबन लीला की है जिसका प्रतीक वंशी है। सेवक जी ने स्पष्ट लिखा है—

गोकुलनाथ महा ब्रज वैभव लीला अनेक न चित्त खटाई।
एकहि रीति प्रतीति बँध्यो, मन मोहि सबै हरिवंस बजाई।[२८२]

हरिवंश जी का अवतार वृन्दावन रस की अभिव्यक्ति के लिए हुआ।[२८३] म्लेच्छ, अधर्म, कलियुग नाम देकर हरिवंश जी के अवतार का सम्बन्ध युग-संदर्भ से भी जोड़ा गया है।[२८४] इसमें धर्मोद्धार का प्रयोजन स्पष्ट है।

(ञ) जीवन-चर्या

पांचरात्र में दीक्षित जन के लिए शुक्ल यजुर्वेद से संलग्न कात्यायन गृह्य सूत्र तथा अन्य धर्म शास्त्रों में प्रतिपादित जीवन-पद्धति बतलाई गई है।[२८५] पांचरात्रों का कोई अपना गृह्य सूत्र नहीं है। वैखानस शाखा का अपना गृह्यसूत्र अवश्य था। सनत्कुमार संहिता एक प्रकार से पांचरात्र गृह्यसूत्र ही है। इसीलिए इसका स्थान पांच-रात्र संप्रदाय में प्रमुख माना गया।[२८६]

उपनिषद् साहित्य में 'चरण' (आचरण) को जन्मान्तर कोटि का कारण माना गया है।[२८७] ब्रह्मसूत्र में भी इसकी मान्यता है।[२८८] आचार्य वादरि का भी यही मत है।[२८९] शुभाचरण से ब्रह्म लोकगमन होता है।[२९०]

आचार के कई भेद हैं: वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, शाक्ताचार, वामाचार कौलाचार आदि। तंत्र के अनुसार सर्वोच्च स्थान कौलाचार का है। वैष्णवाचार बहुत सौम्य हैं। शैवाचार भी वेदाचार से बहुत दूर नहीं है। शाक्ताचार में पशु-हत्या बहुत है और वामाचार में पंचमकार की साधना है। ये साधनाएँ वेदाचार से बहुत दूर हैं। वैष्णवाचार का लक्षण यह बतलाया गया है: वेदाचार बिधि से पहले शारीरिक धर्म से निवृत्त होना चाहिए। वैष्णव मैथुन, शृङ्गारादि कथालापों से दिन में विरत रहे। उसे हिंसा, निंदा एवं कौटिल्य से बचना चाहिए। मांस भक्षण नहीं करना चाहिए। रात्रि में माला या यन्त्र की पूजा न करें।[२९१]

भक्ति के आचार्यों में भी चर्या सम्बन्धी ग्रन्थ लिखने की परंपरा मिलती है। श्री रामानुजाचार्य का 'नित्य' ग्रन्थ भी आचार परक है, इसमें दैनिक जीवन के व्यावहा-रिक सदाचार परक आदर्शों पर प्रकाश डाला गया है।

२.१२. आचार्य मानस और पुराण

पांचरात्र साहित्य ने आचार्य मानस को एक व्यावहारिक दिशा प्रदान की। पौराणिक साहित्य ने भाव के प्रगाढ़ आलोड़न को वस्तुगत संदर्भीकरण के लिए भूमिका प्रस्तुत की। पुराण की इतिवृत्तात्मक प्रकृति का अविकल रागात्मक संस्कार श्रीमद्-भागवत में ही मिलता है। दूसरी ओर इसमें अर्चा-आचार परक वैष्णव पद्धति को राग से अनुप्राणित भी किया गया है।

श्रीमद्भागवत को सात्त्वत संहिता भी कहा गया है। ऐसा अनुमान लगाना संगत प्रतीत होता है कि सात्त्वत धर्म कालान्तर में भागवत के साथ एकार्थक हो गया था। संभवत: सात्त्वत संहिता का नामांतर और रूपान्तर ही भागवत है। भागवत का लक्षण है—अहैतुकी भक्ति।[२६२] नारायण ने जिस सात्त्वत धर्म को ब्रह्मा को दिया, उसके बहुत से अनुयायी हो गये।[२६३] एक और मान्यता के अनुसार संकर्षण ने सात्त्वत धर्म का कथन किया। उस सात्त्वत धर्म के रागात्मक उन्नयन और विशदीकरण का चरम श्रीमद्भागवत में मिलता है।

भागवत शब्द से प्राय: सभी वैष्णव संप्रदाय द्योतित होने लगे।[२६४] इस शब्द की व्युत्पत्ति 'भगवत' से हुई है, जो विष्णुवाची शब्द है।[२६५] 'भागवत' शब्द विष्णुपरक संप्रदाय,[२६६] उस संप्रदाय के अनुयायियों[२६७] तथा इस संप्रदाय से संबंधित ग्रन्थों का वाचक[२६८] हो गया।

अनुश्रुति के अनुसार भागवत एकान्त विद्या है[२६९] जिसका मूल सामवेद में है। किन्तु भागवत संप्रदाय की दीक्षा और पूजा पद्धति का साम्य वैदिक दीक्षा पद्धति से नहीं है। बल्कि, वैदिक दीक्षा को विष्णु पूजा के लिए अपर्याप्त कहा गया है।[३००] भागवत को वेदेतर सिद्ध करने के लिए कई अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं : शांडिल्य को जब चतुर्वेदाध्ययन से परम पुरुषार्थ की उपलब्धि नहीं हुई तो एक नये वेद की सृष्टि की गई।[३०१] गीता में भी वेद भिन्न स्वर मिलता है।[३०२] जो केवल वेदवाद-रत हैं, वे अज्ञानी हैं।[३०३] भागवत को निगम कल्पतरु का स्वयं गलित फल भी कहा गया।[३०४]

इस प्रकार भागवत की राग पद्धति का स्रोत जहाँ वेद-परम्परा में स्थापित किया गया वहाँ उसकी भावात्मक साधना को वेदेतर भी सिद्ध किया गया। उसकी तुलना में वेदसम्मत मार्ग को अपर्याप्त भी कहा गया।

दक्षिणांचल के प्राय: सभी आल्वार सामान्य रूप से और विशेष रूप से नम्मा-ल्वार तथा आंडाल भागवत की प्रेम पद्धति से बहुत अधिक प्रभावित हुए।[३०५] विरहिणी

के रूप में नम्माल्वार अपनी तुलना गोकुल की सुन्दरियों से करते हैं।[306] फिर भी जहाँ तक श्री संप्रदाय से संबंधित आचार्य मानस का संबंध है, यह विष्णु पुराण को अधिक ग्रहण करता रहा। संभवतः भागवत की कुछ स्तुतियों में इसने अद्वैतवाद की गन्ध पाई है और इसी कारण भागवत की पूर्ण रूप से स्वीकृति विशिष्टाद्वैत में नहीं हो सकी। डा० रामस्वार्थ चौधरी ने भागवत के सिद्धान्त पक्ष का निरूपण करते हुए लिखा है : "सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्ण अद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हुए व्यावहारिक दृष्टि से भक्ति मार्ग महत्त्व का निर्धारण इसकी (भागवत की) प्रमुख विशेषता है।.... भागवत पुराण में अद्वैत ज्ञान के साथ मधुर भक्ति का अपूर्व सामंजस्य किया गया है।" (मधुररस, भाग-२, पृ० ५०) यही कारण हो सकता है जिससे श्री संप्रदाय में विष्णु पुराण को अधिक महत्त्व दिया गया। यामुनाचार्य जी की तीन इच्छाओं में से एक यह भी थी कि विष्णुपुराण की व्याख्या की जाय। यह कार्य रामानुजाचार्य जी की प्रेरणा से पीछे सम्पन्न हुआ। वैसे कोई संप्रदाय भागवत के प्रभाव से अछूता नहीं कहा जा सकता है।[307]

जिस प्रकार वैष्णव संप्रदायों में ब्रह्मसूत्र के भाष्यों की परंपरा चली, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत की टीकाएँ भी लिखी गई[308], इन टीकाओं में सांप्रदायिक दृष्टि प्रधान रूप से मिलती है।

भागवत पर श्री निंबार्काचार्य जी ने कुछ नहीं लिखा। इस संप्रदाय के श्री केशव काश्मीरी जी ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में आये हुए वेदस्तुति प्रकरण की टीका लिखी। वल्लभ संप्रदाय में भागवत की प्रतिष्ठा प्रमाणचतुष्टय के रूप में हुई।

भागवत और संप्रदाय के इष्ट श्रीनाथ जी में अभेद माना गया है।[309] 'द्वादशोवै पुरुष' के अनुसार भागवत पुरुषाकार है। भागवत श्रीनाथ जी का शब्दमय रूप है। यह निरोध का अमोघ और सरलतम मार्ग है :[310] यही एक मात्र साधन है।[311] इसको सात्त्वत श्रुति भी माना गया है।[312] यह प्रमाणचतुष्टय की अन्तिम कड़ी है।[313] वल्लाचार्य जी ने द्वादश स्कन्धीय भागवत में से दशम स्कन्ध का चुनाव किया।[314] सामान्य रूप से भागवत पर ही समस्त वल्लभ-दर्शन आधारित है।[315] यह 'समाधि भाषा' है।

वल्लभ संप्रदाय के समान ही चैतन्य संप्रदाय में भागवत की एकान्त प्रतिष्ठा हुई। चैतन्य मत से सम्बन्धित वैष्णव तो भागवत पुराण को ही प्रस्थानत्रयी के भाष्य के रूप में पूज्य मानते थे। अतः किसी स्वतन्त्र भाष्य की आवश्यकता नहीं समझी गई।[316] सनातन गोस्वामी ने भागवत की एक महत्त्वपूर्ण टीका 'वैष्णव तोषिणा' नाम से लिखी। जीव गोस्वामी कृत 'क्रम संदर्भ', विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'सारार्थ दर्शिनी' तथा श्रीहरिकृत 'हरिभक्त रसायन' का भी संप्रदाय में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भागवत की परम्परा राधावल्लभ संप्रदाय में शिथिल हो गई। कुछ छिटपुट रचनाएँ अवश्य मिलती हैं : श्री सुखलाल जी कृत, 'टीका श्रीमद्‌भागवत', तथा रास-पंचाध्यायी, श्री दामोदर स्वामी रचित 'रासपंचाध्यायी' श्री रामकृष्ण जी कालिंजर निवासी कृत 'रासपंचाध्यायी', प्रियादास जी कृत 'भागवत प्रकाश', जैसी कुछ ही कृतियाँ इस परम्परा में आती हैं। हरिदासी सम्प्रदाय में यह परम्परा और भी शिथिल हो गई।

अन्त में पं० परशुराम चतुर्वेदी के स्वरों में केवल यही कहा जा सकता है कि 'श्रीमद्‌भागवत पुराण' मध्यकालीन युग के लिए कदाचित् सबसे महत्त्वपूर्ण भक्ति-ग्रन्थ सिद्ध हुआ।[३१७] इससे केवल सगुण संप्रदाय और उनका साहित्य ही प्रभावित नहीं हुआ, अपितु निर्गुण मार्ग की विचारधारा भी बहुत दूरी तक प्रभावित हुई।[३१८]

विष्णु पुराण और भागवत के अतिरिक्त तीन पुराणों की चर्चा और की जाती है : ब्रह्मवैवर्त पुराण, हरिवंश पुराण और पद्म पुराण।

ब्रह्मवैवर्त पुराण राधाभाव प्रधान पुराण है। इससे प्रायः सभी भक्ति संप्रदाय न्यूनाधिक रूप से प्रभावित हुए। अनुमान है कि इसकी रचना सोलहवीं शती में कहीं बंगाल में हुई।[३१९]

लगभग इसी शैली का पद्मपुराण भी है। इसमें वृन्दाबन की नित्यलीला, राधा और गोपियों के नाम आदि की विस्तृत चर्चा है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इसकी रचना भी कहीं बंगाल में हुई।[३२०] इसकी गणना परवर्ती पुराणों में की जाती है।

हरिवंश पुराण में कृष्ण चरित्र के अन्य पक्षों के साथ हल्लीसक क्रीड़ाओं का विवरण विस्तार से दिया गया है। इसका पूर्ण विकास भागवत में हुआ।

२.१३. लोक भाषा साहित्य और आचार्य मानस

२.१३.१ दक्षिणांचल

गुप्त साम्राज्य का ह्रास (लगभग ६ वीं शती) हुआ और भागवत धर्म का राज्याश्रय उत्तर में शिथिल हो गया, तथा भागवत धर्म दक्षिण में केन्द्रित होने लगा।[३२१] वैष्णव भक्ति का मधुर रूप आलवारों के लोक भाषा साहित्य में परिणति पाने लगा। कुछ विद्वानों के अनुसार तो वैष्णव मधुर भक्ति का आरम्भ ही इस साहित्य में माना जा सकता है, जिसने कालांतर में उत्तर भारतीय भक्त-मानस को अत्यधिक प्रभावित किया।[३२२] आलवार साहित्य का रचना काल विक्रम की दूसरी शती से दसवीं शती तक माना जाता है। आठ सौ–नौ सौ वर्षों की इस अवधि में एक ही प्रकार की आध्यात्मिक मानसिकता इन 'प्रबन्धों' (गीतों) में अभिव्यक्ति पाती रही।

इनका संग्रह 'नालायिर प्रबन्धम्' नाम से मिलता है, जिसको 'तमिल वेद' कहा जाता है। इस प्रकार लोक भाषा साहित्य का उत्कर्ष भक्ति का संस्पर्श पाकर, चरमस्पर्शी होने लगा। भक्ति का आचार्य मानस जो प्रस्थानत्रयी के वृहदाकाश में विचरण कर रहा था, लोकभाषा के इस मधुर साहित्य के संस्पर्श से पुलकित होने लगा। शास्त्रीय विद्वत्ता और अभिजात दर्शन जब इस भावानुभूतिपरक साहित्य में प्रविष्ट हुआ, तो उससे नवीन जीवन्त अर्थ 'भाष्य' के रूप निःसृत होने लगे। नादमुनि से लेकर श्री वेदांत-देशिकाचार्य तक का आचार्य मानस आल्वार साहित्य की व्याख्या और आल्वार दृष्टि से प्रस्थानत्रयी की पुनर्व्याख्या करता रहा।

यही नहीं, 'नालाइयर दिव्य प्रबन्धम्' की अनुभूतियों को आचार्य मानस ने वेद, उपनिषद् और गीता के समकक्ष रखा। इसीलिए दाक्षिणात्य आचार्य 'उभय वेदांती' नाम से भी ख्यात हुए। नादमुनि ने आल्वारों के प्रबन्धों को मन्दिरों के संकीर्तन-गायन में तो स्थान दिया ही, आल्वारों की पूजा का विधान भी वैष्णव मन्दिरों में किया गया। विष्णु के आयुधों, उनके वाहनों, या उनके अनुयायियों के रूप में आल्वारों को कल्पित किया गया। आल्वार गीतों का संकलन आचार्य परम्परा के प्रथम विद्व नाथमुनि (=रंगनाथ मुनि) ने ही आरम्भ किया। इन्होंने पहले नम्मालवार ग्यारह पद्य[३२३] दो भक्तों के मुख से वीरनारायणपुरम् में सुने थे।[३२४] नम्मालवार से चार हजार प्रबन्धम् प्राप्त करके उन्होंने इनको छन्द-संगीत के आधार पर वर्गीकृत और संपादित किया। प्रबन्धों के चारों भागों को चार वेदों के समकक्ष रखा गया। आल्वारों की प्रशस्ति का गायन प्रास्ताविक पद्यों में किया गया।[३२५] नादमुनि ने इन प्रबन्धमों में वेदार्थ को साकार देखा। उन्होंने घोषित किया कि यद्यपि पेरियाल्वार ने वेदाध्ययन नहीं किया था, फिर भी अनेक विष्णुपरक वेदमन्त्र उन्होंने अपने प्रबन्धों में उद्धृत किये हैं। मदुर कवि आल्वार प्रबन्धों में उपनिषद् का गायन ही देखा गया।[३२६] इस प्रकार आचार्य मानस ने आल्वार साहित्य को एक व्यापक दार्शनिक स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया। एक ओर तो श्रौत प्रमाण को साहित्यिक स्तर पर रख कर व्याख्यायित किया गया और दूसरी ओर पांचरात्र सिद्धान्तों को भी इसके आधार पर सिद्ध और पुष्ट किया गया। श्रीरंगम तथा अन्य मन्दिरों की पूजा-अर्चा का अनिवार्य अंग आल्वार साहित्य हो गया।[३२७] इस प्रकार इस लोकभाषा साहित्य ने मन्दिर के आनुष्ठानिक कार्यक्रम में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया।

नादमुनि के पश्चात् श्री यामुनाचार्य जी ने भी आल्वार साहित्य को महत्त्व प्रदान किया। यामुनाचार्य जी की तीन महत्त्वपूर्ण अपूर्व इच्छाओं में से एक थी—नम्मालवार के साहित्य को लोक और आचार्य मानस मे पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करना।[३२८] नम्मालवार की प्रशस्ति में यामुन ने एक पद्य भी लिखा है।[३२९] यामुन के पुत्र ने

रामानुजाचार्य जी को दिव्य प्रबन्धम् का भेद बतलाया। रामानुजाचार्य जी यामुन की अपूर्ण इच्छा को पूर्ण करने के लिए कृत संकल्प हुए। यामुन के एक और शिष्य 'पेरिय नंपि' ने गुरु रूप से रामानुजाचार्य जी को समग्र वैष्णव तत्त्व का बोध कराया। इस प्रकार यामुन तथा उनके शिष्यों ने आल्वार साहित्य की महत्ता को बनाए रखा और अन्त में यह श्री रामानुजाचार्य जी के हाथ में आ गया।

रामानुजाचार्य जी ने प्रस्थानत्रयी और आल्वार साहित्य के सूत्रों से संग्रथित विशिष्टाद्वैत दर्शन की स्थापना की जिसका पूर्व रूप श्री आलवंतार की विचारधारा में रूपायित हो चुका था। रामानुजाचार्य जी ने अपने शिष्यों को नम्माल्वार कृत 'तिरुवइमौलि' की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या सहित शिक्षा दी। वैष्णवों के नित्य पाठ के क्रम में इसको स्थान दिया गया। इनके ममेरे भाई 'तिरुक्कुरु कैंप' ने तिरुवई-मौलि पर विस्तृत व्याख्या लिखी। स्वयं रामानुजाचार्य जी ने आल्वार साहित्य की मौलिक व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। आल्वार उनके प्रणम्य हैं। पाराशर पत्तार ने जहाँ नम्माल्वार को 'मा' कहा जिसने सहस्र पदों को जन्म दिया वहाँ रामानुज को धाय कहा, जिन्होंने उनको दूध पिलाया। वेदांत देशिक ने यह कहकर आल्वार साहित्य को महत्त्व दिया कि जो वेद मंत्र समझने में कठिन हैं, वे भी आल्वार साहित्य के माध्यम से समझे जा सकते हैं (गुरुपरम्परासार)।

२.१३२. पूर्वांचल : आधारभूत साहित्य

भारत का पूर्वांचल शैव, शाक्त और तांत्रिक विचारधारा से आप्लावित था। इनसे सम्बन्धित मधुर भावाश्रित साहित्य भी संस्कृत-प्राकृत में उपलब्ध होगा। गौड़ीय संप्रदाय के आविर्भाव से पूर्व बंगाल के वैष्णव कवियों की पदावली में मधुर रसात्सक अनुभूतियाँ प्रवाहित थीं। राधाभाव प्रधान 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' की रचना संभवतः पश्चिमी बंगाल में कहीं हुई।[३३१] इसी प्रकार नित्यलीलापरक पद्मपुराण की रचना भी कहीं इसी क्षेत्र में हुई।[३३२] जयदेव ने ब्रह्मवैवर्त पुराण की भाव-सरणि का अनुसरण करते हुए गीत गोविंद की रचना की। इस कृति के माधुर्य-संप्लव को देखकर प्रतीत होता है कि कृष्णलीला की अतिमानवीयता को विदा दी जा चुकी थी। कृष्ण का रूप 'गोपी पीन पयोधर मर्दन चंचल कर युगशाली,'[३३३] के रूप में स्मृत रह गया था। कृष्ण 'गोप कदम्ब नितम्बवती'[३३४] के मधु चुम्बन का लोभी हो गया। इस रस-योजना में कृष्ण और राधा दोनों ही विरह-विकल हैं।

अभिनव जयदेव मैथिल-कोकिल विद्यापति की पदावली में भी युगल माधुर्य का विलास है। जयदेव की विलास-शैली मैथिली में जैसे पूर्ण यौवन के साथ उतर

आई है। लौकिक शृङ्गार की भूमि पर आध्यात्मिक प्रतीकों का केलि-विलास वैचित्र्य से भर उठा है।

इनके अतिरिक्त सहजिया वैष्णवों का अशास्त्रीय और भावाविष्ट प्रकृति का प्रचुर साहित्य चैतन्य को उपलब्ध था। बाउलों के गीतों का उन्माद पूर्वांचल को सजल कर रहा था। चंडीदास के साहित्य का भी गौड़ीय भक्ति भावना पर प्रभाव पड़ा। सहजिया कवियों ने लोक काव्य के प्रेम शृङ्गार को लेकर, इसको निश्छल सौन्दर्य बोध को आध्यात्मिक अनुभूतियों का वाहक बना दिया। संगीत की लहरियों ने इस सौन्दर्य-बोध को अंतर्बाह्य प्रवाहित किया। चंडीदास प्रभृति कवियों ने युगलपरक प्रेम भावना को लोक संवेद्य बनाया। इस प्रकार सारा पूर्वी भारत वैष्णव भाववाद से स्नात हो उठा। चैतन्य महाप्रभु, जयदेव, चंडीदास, विद्यापति जैसे वैष्णव कवियों की रचनाओं के श्रवण से भाव विभोर होकर आत्म-विस्मृति की अवस्था में प्रविष्ट हो जाते थे।[३३५] इसी साहित्य की सूची में कृष्ण कर्णामृत (लीलाशुक), श्रीकृष्ण लीलामृत (ईश्वरपुरी) को और जोड़ा जा सकता है। गीतगोविंद और कृष्णकर्णामृत को तो संप्रदाय में उसी प्रकार वेद जैसी प्रतिष्ठा दी गई जिस प्रकार दाक्षिणात्य आचार्यों ने आल्वार साहित्य को तमिल वेद कहा। शंकरदेव जैसे भक्त कवियों के गीतों में भी भक्ति भावना ओत-प्रोत है।

पूर्वांचल में भक्ति के दार्शनिक पोषण के लिए ब्रह्म सूत्रों पर भाष्य नहीं लिखा गया। इस दिशा में कुछ परवर्ती प्रयत्न अवश्य हुए।[३३६] दार्शनिक दृष्टि से, गौड़ीय संप्रदाय से विशेष संबद्ध कोई ग्रन्थ है तो वह है—श्री ब्रह्मसंहिता।[३३७]

ऊपर आचार्य मानस के रचना-तन्त्र को देखा गया है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि ब्रजभाषा-साहित्य से संबद्ध आचार्य मानस की संरचना एक ही प्रकार की थी। रामानुजाचार्य की मानस-रचना में पांचरात्र, विष्णु पुराण, लोक भाषा साहित्य, प्रस्थान-त्रयी तथा स्वानुभव सभी का योगदान है। इन्होंने बल लोकभाषा-साहित्य (आल्वार प्रबन्धम्) पर दिया। दाक्षिणात्य निंबार्क और वल्लभ यद्यपि इन सभी तत्त्वों के प्रति जागरूक हैं, तथापि पांचरात्र और प्रस्थानत्रयी के तत्त्व इतने प्रबल नहीं रहे। वल्लभ ने समस्त बल भागवत पर केन्द्रित किया। चैतन्य मानस शुद्ध भावात्मक संरचना में प्रविष्ट होकर भागवत, संस्कृत गीति साहित्य और भावाविष्ट लोकभाषा साहित्य का संबल लेकर चला। ब्रजभूमि में उद्भूत श्री हरिदास ने स्वानुभव को ही आधार बनाया। अंततः आचार्य मानस सभी दार्शनिक और व्यावहारिक औपचारिकताओं को चीरता हुआ शुद्ध राग और सौन्दर्य बोध के धरातल पर ठहरा जहाँ दर्शन का चिंतन काव्य की भावभूमि में प्रविष्ट होकर उसके साथ अविभाज्य रूप से एकाकार हो जाता है।

आचार्य मानस इतना भाव प्रवीण होता गया कि स्वयं सृजन-प्रक्रिया में प्रवेश करना एक सीमा तक अनिवार्य हो गया।

२·२ दार्शनिक वस्तु का भावात्मक बोध
प्रस्थानत्रयी भाष्य
ब्रह्मसूत्र : एक गतिशील समन्वय सूत्र

वैष्णवागम में 'क्रिया' 'आचार' और सगुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा है। ब्रह्मसूत्र के कर्ता वादरि ने 'आचार' को महत्त्व दिया।[३३८] छान्दोग्य ने देवयान पंथियों के लिए जिस ब्रह्म की प्राप्ति की चर्चा की है, वह सगुण है।[३३९] इस प्रकार वादरि के मत का झुकाव आचार और सगुण ब्रह्म की ओर है। वेद के दो विभागों में से जहाँ कर्मकांड का जैमिनि ने पूर्व मीमांसा सूत्रों में विवेचन किया, वहाँ वादरायण ने ज्ञानकाण्ड का विश्लेषण उत्तर मीमांसा सूत्रों में किया।[३४०] ब्रह्मसूत्र में उपनिषद् सिद्धान्त का निरूपण है। गीता में भी इन सूत्रों का उल्लेख है।[३४१] वादरायण ने अनेक पूर्वाचार्यों[३४२] के मतों का इनमें समन्वय किया है। इन सूत्रों की लोकप्रियता का प्रमाण इनके भाष्यों की दीर्घ परम्परा है। शैव, वैष्णव, ज्ञानवादी—सभी प्रकार के आचार्यों ने ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या अपनी-अपनी दृष्टि से की। जहाँ शंकर ने ज्ञानकांडीय दृष्टि से इनका भाष्य करके निर्गुण अद्वैतवाद की स्थापना की, वहाँ भक्ति के आचार्यों ने इनके भाष्य के द्वारा भक्ति-परक सगुणवाद को उच्च दार्शनिक पीठिका प्रदान की। इन भाष्यों की परंपरा इस प्रकार है :

आचाय	काल	भाष्य	सप्रदाय
१. शंकर	७८८-८२०	शारीरिक भाष्य	निर्विशेषाद्वैत
२. भास्कर	१०००	भास्कर भाष्य	भेदाभेद औपाधिक
३. यादव प्रकाश	१०००	भेदाभेद	स्वाभाविक भेदाभेद
४. रामानुज	११४०	श्रीभाष्य	विशिष्टाद्वैत
५. मध्व	१२३८	पूर्णप्रज्ञ भाष्य	द्वैत
६. निम्बार्क	१२५०	वेदान्त परिजात	द्वैताद्वैत
७. श्रीकंठ	१२७०	शैव भाष्य	शैव विशिष्टाद्वैत
८. रामानंद	१३६०-१४५०	—	रामाद्वैत
९. श्रीपति	१४००	श्रीकर भाष्य	वीर विशिष्टाद्वैत

१०. वल्लभ	१४७९-१५४४	अणुभाष्य	शुद्धाद्वैत
११. शुक	१५५०	,,	भेदवाद
१२. विज्ञान भिक्षु	१६००	विज्ञानामृत	अविभागाद्वैत या आत्म ब्रह्म-ऐक्य भेदवाद
१३. बलदेव	१७२२	गोविन्द भाष्य	अचिंत्य भेदाभेद।

इस सूची से स्पष्ट होता है कि ब्रह्मसूत्र के आधार पर द्वैत-अद्वैत, भेद-अभेद सभी पर विचार किया गया जिस भागवत भक्ति संप्रदाय में 'क्रिया' और चर्या का प्रधान्य हो गया था और जिसका दार्शनिक पक्ष पांचरात्र वेद-उपनिषद् के लोप से शिथिल हो गया, उसको एक सुदृढ़ दार्शनिक भूमिका भक्ति के आचार्यों ने ब्रह्मसूत्रों के भाष्य के आधार पर प्रदान की।

श्री रामानुजाचार्य जी का श्री भाष्य बौद्धिक की अपेक्षा भावात्मक अधिक है। यह भक्ति साहित्य की परंपरा में महत्त्वपूर्व स्थान रखता है। व्रजभाषा साहित्य से संबंधित दो आचार्यों ने भाष्य लिखा—श्री निंबार्काचार्य जी तथा श्री वल्लभाचार्य जी।

स्वयं निम्बार्काचार्य जी ने 'वेदान्त पारिजात सौरभ' नाम से ब्रह्म सूत्र भाष्य लिखा। आचार्य मानस की मृदुता इससे व्यक्त है कि इसमें आक्षेप, खंडन-मंडन आदि को स्थान नहीं दिया गया। विशेष रूप से 'चतु:सूत्री' के चतुर्थ सूत्र का विस्तृत भाष्य इसमें है। 'गीतावाक्यार्थ' की सूचना भी मिलती है।[३४३] वेदान्त पारिजात सौरभ की टीका श्रीनिवासाचार्य जी ने 'वेदान्त कौस्तुभ' नाम से लिखी। इन्होंने संभवतः 'कठोपानिषद्' भाष्य की भी रचना की।[३४४] देवाचार्य जी ने ब्रह्मसूत्रवृत्ति 'सिद्धान्त जाह्नवी' नाम से लिखी इसमें अद्वैतवाद की कड़ी आलोचना है।[३४५] इसकी टीका 'सेतुका'[३४६] नाम से सुन्दरभट्टाचार्य जी ने की। श्री केशव काश्मीरी जी ने ब्रह्मसूत्र की व्याख्या 'कौस्तुभ प्रभा', मुण्डकोपनिषद् भाष्य और 'गीतातत्त्व प्रकाशिका' लिखीं। इस प्रकार प्रस्थानत्रयी के भाष्य की परम्परा चलती रही।

वल्लभ संप्रदाय में प्रस्थानत्रयी के भाष्यों की परम्परा और भी शिथिल हो गई। वल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मसूत्रों का भाष्य 'अणुभाष्य' नाम से प्रस्तुत किया। आगे के आचार्यों में यह परम्परा दृढ़ और लोकप्रिय नहीं हुई। साथ ही भागवत परबल अधिक दिया गया।

चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कोई भाष्य प्रस्थानत्रयी पर नहीं लिखा। उनके

मतानुसार श्रीमद्भागवत स्वयं ही वेदान्त का भाष्य है। एक परवर्ती आचार्य श्री बल्देव विद्याभूषण ने 'गोविन्द भाष्य' की रचना अवश्य की।[३४७] फिर भी संप्रदाय में भागवत और साहित्यिक परम्परा के आधार पर दार्शनिक 'वस्तु' का भावन होता रहा।

राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश जी ने ब्रह्मसूत्रों पर कोई भाष्य नहीं लिखा। इस दिशा में कुछ परवर्ती प्रयत्न अवश्य हुए : "श्री शंकराचार्य की शैली से 'राधावल्लभीय भाष्य' लिखे गये। वेदान्त सूत्रों पर टीका तैयार हुई और दार्शनिक नामकरण करते हुए राधावल्लभ संप्रदाय के दर्शन को 'सिद्धाद्वैत' नाम दिया गया। ....ब्रह्म संप्रदाय के अन्तर्गत इस संप्रदाय का परिगणन किया गया और सर्वतोभावेन इसे अन्य वैष्णव संप्रदायों की भाँति चतु: संप्रदाय की परम्परा में ही स्थिर करने का निष्फल प्रयत्न हुआ।"[३४८] सिद्धाद्वैत शब्द का प्रयोग अर्वाचीन विचारधारा में मिलता है।[३४९] राधावल्लभीय भाष्यों की परम्परा भी पीछे बनी।[३५०] इसके संबंध में यही कहा जा सकता है कि यह परंपरा अत्यन्त अर्वाचीन है। साथ ही इसकी कड़ियों का अस्तित्व अथवा प्रामाणिकता संदिग्ध है। डा० स्नातक ने स्पष्ट अभिमत दिया है : "हमारी यह निश्चित धारणा है कि भाष्य लिख कर वैष्णव बनने का मोह हित हरिवंश जी के बहुत बाद उत्पन्न हुआ और तभी भाष्य लेखन व्यापार चक्कर में कुछ परम्परा प्रेमी महानुभाव पड़े।[३५१]

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भक्ति के आचार्य की मानसीय संरचना का महत्त्वपूर्ण सूत्र प्रस्थानत्रयी की दार्शनिक विचारधारा है। इस आधार पर आचार्यों की तीन कोटियाँ निश्चित होती हैं : १. उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र तीनों पर भाष्य करने वाले आचार्य (रामानुजाचार्य); २. केवल ब्रह्मसूत्र का भाष्य रचने वाले (निंबार्काचार्य); तथा ३. भागवत को जोड़ कर प्रस्थान चतुष्टय मानने वाले तथा भागवत को महत्व देने वाले आचार्य (वल्लभाचार्य) चौथी कोटि उन आचार्यों की है जिन्होंने भागवत को ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य मानकर अलग से भाष्य को अनावश्यक माना (चैतन्य महाप्रभु) और पीछे जिनके संप्रदाय के किसी विद्वान ने भाष्य रचना करके चार वैष्णव संप्रदायों में से किसी एक के साथ अपना संबंध जोड़ा। राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश, सखी संप्रदाय के प्रवर्तक श्री स्वामी हरिदास और ललित संप्रदाय के प्रवर्तक श्री वंशी अलि ने आचार्यत्व के इस आभिजात्य को छोड़कर स्वानुभव और सरस साहित्य के आधार पर ही निकुञ्ज-रस का प्रतिपादन किया।

२.३. आचार्य मानस : सृजन की शक्तियाँ

जैसा कि ऊपर देखा गया है, भक्ति आचार्य का मानस आगम, पुराण और

साहित्य का संबल लेकर, भावन की अखंड प्रक्रिया में निरत होता चला गया। इसी प्रक्रिया में साहित्य सृजन की प्रेरणा का भी उद्रेक होता है। साहित्य सृजन की प्रेरणा का प्रथम प्रतिफलन बिंदु 'स्तोत्र' है।

२.३१ स्तोत्र : रक्षाभावना, विनय और संबंध भावना—

स्तोत्र साहित्य की दीर्घ परम्परा[३५२] यह सिद्ध करती है कि स्तवन रक्षा के उद्देश्य से इष्ट शक्ति के उद्‌बोधन और उद्दीपन के उद्‌देश्य से लिखा हुआ गेय साहित्य रूप है। आचार्य मानस की इष्टपरक दार्शनिकता और भावना पहले इसी रूप में ढलती है। निर्विशेष अद्वैतवाद के प्रति प्रतिबद्ध शांकर मानस में भी स्तोत्र उगे, ऐसी मान्यता है।[३५३] भक्ति के आचार्यों ने भगवान और उनके परिकर के सम्बन्ध में स्तोत्र गायन किया।

श्री यामुनाचार्य जी ने 'स्तोत्र रत्नम्' में विनयपरक स्तोत्र लिखे। इन सत्तर गीत स्तोत्रों में श्री और नारायण की भक्ति चू पड़ी है।[३५४] एक और रचना है— 'चतुःश्लोकी' इसके चार श्लोकों में 'श्री' (=लक्ष्मी) की ही स्तुति है। यह लक्ष्मी के संबंध में प्रथम स्तोत्र ग्रन्थ है। इनकी एक और कृति 'महापुरुष विनिर्णय' विष्णु की महानता की ज्ञापिका है। यह पुरुष सूक्त की शैली में रचित स्तोत्र है।

श्री रामानुजाचार्य ने 'शरणागति गद्य' के प्रथम श्लोक में 'लक्ष्मी' के सामने आत्मसमर्पण किया है। उन्होंने उसे ही अशरण-शरण कहा है। वैकुण्ठ गद्य में वैकुण्ठ के सौन्दर्य का प्रवाह है।

वेदान्तदेशिक बड़े पंडित और कवि थे। इन्होंने संस्कृत और तमिल दोनों में काव्य लिखा। 'भगवद्‌ध्यान सोपान' नामक ग्रन्थ में इन्होंने रंगनाथ का नखशिख सौन्दर्य-चित्रित किया है। अर्चाविग्रहों के सम्मुख गायन करने के लिए इन्होंने कई रचनाएँ की : 'देवनायक पंचशत' 'अच्युत शतक' (प्राकृत), 'वरदराज पंचशत', 'परमार्थ स्तुति' आदि। गरुड़ के संबंध में 'गरुड़ पंचशत' की रचना इन्होंने की। 'गरुड़ दंडक' भी गरुड़ संबंधी रचना है। इस स्तोत्र साहित्य के पीछे श्री वेदांतदेशिक का मंत्र ज्ञान व्याप्त था।

स्तोत्रों के अतिरिक्त इन्होंने साहित्यिक ग्रन्थ भी लिखे। इनमें से एक है— 'पादुका सहस्र'। इसमें श्री रंगनाथ की पादुकाओं का ऊँची काव्य प्रतिभा के साथ वर्णन किया गया है। स्त्री मानस को भी वेदान्तदेशिका ने ग्रहण किया है। अपनी 'मुम्मनिक्कोवइ' में इन्होंने अपने को देवनाथ की पत्नी कहा है।

निंबार्काचार्य जी ने कुछ भगवत्स्तोत्र लिखे—श्रीकृष्ण प्रातः स्मरण आदि।

इन स्तोत्रों में से कुछ प्राप्त हैं और कुछ अप्राप्य। निंबार्काचार्य जी के शिष्य श्री निवासाचार्य जी ने अपने गुरु के प्रभाव को ज्ञापित करने के लिए 'लघुस्तवराज स्तोत्र' की रचना की।[३५४] औदुंबराचार्य जी ने 'निंबार्क स्तोत्र' लिखा। गौरमुखाचार्य जी ने 'निंबार्क 'सहस्रनाम' की रचना की।

केशव काश्मीरी जी ने 'यमुना स्तोत्र' की रचना की है। इसमें उनके हृदय की मधुरा वृत्ति अभिव्यक्त हुई है। "इससे प्रतीत होता है कि सिद्धान्त रूप में आप आंतरिक मधुर रसोपासना के पक्षपाती थे।"[३५५] डा० रमाबोस के अनुसार इन्होंने श्री गोविंद शरणागति-स्तोत्र की भी रचना की थी। नारायण देवाचार्यकृत कुछ संस्कृत स्तोत्र भी मिलते हैं।

स्तोत्र ग्रन्थों की रचना वल्लभ संप्रदाय में भी होती रही। 'स्वामिनी स्तोत्र', 'परिवृढाष्टक', 'स्वामिल्यष्टक'[३५६], 'यमुनाष्टक'[३५७] जैसी संस्कृत रचनाओं को उदाहरण रूप में लिया जा सकता है।

श्री हित हरिवंश जी की 'राधा सुधानिधि' कृति भी संस्कृत का स्तोत्र-काव्य ही है। इसमें राधा की वन्दना, उपासना, प्रशस्ति, पूजा, सामीप्य, सौन्दर्य आदि से सम्बन्धित २७० स्तोत्र श्लोक हैं। उन्हीं का रचित यमुनाष्टक' भी स्तोत्र ग्रन्थ है। राधावल्लभ संप्रदाय के रसिकों ने श्री हित हरिवंश जी के सम्बन्ध में भी स्तोत्र ग्रन्थ लिखे : श्री वनचन्द्र जी कृत 'श्री हरिवंशाष्टक' (संस्कृत), श्री चतुरशिरोमणि लाल जी कृत 'हिताष्टक' (ब्रजभाषा), श्री कृष्णदास जी भावुक कृत 'हरिवंशाष्टक' (ब्रज भाषा), श्री सर्वसुखदास जी कृत 'हितशतनाम' जैसी रचनाओं को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

राधावल्लभ संप्रदाय में राधासुधानिधि की परम्परा में आने वाले राधा सम्बन्धी स्तोत्रों की शृंखला भी मिलती है : प्रियानामावलि (संस्कृत : श्री वनचन्द्र जी गोस्वामी), राधानुनयविनोद (श्रीकृष्णचन्द्र जी : संस्कृत) राधा उपसुधानिधि (श्रीकृष्ण चन्द्र जी : संस्कृत) लाड़िली वर्णन (श्री गुलाब लाल जी : ब्रज०) राधास्तोत्र (श्री हित रूपलाल जी, ब्रज०) राधिकाष्टक (श्री चतुर शिरोमणि, ब्र०) राधानाम प्रताप वेली (श्री उत्तमदास जी, ब्रज०) राधाष्टक (श्री परमानन्द जी, ब्रज०) श्री राधासुधाशतक (श्री हरि ब्रज०) राधा सहस्रनाम (श्री ब्रजगोपाल जी, ब्रज) जैसी कृतियाँ इसी शृंखला में आती हैं।

ऊपर के कतिपय उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आचार्य मानस शुद्ध मन्त्र परक या मन्त्र का स्थानापन्न बनने वाले स्तोत्रों की ही रचना में प्रविष्ट नहीं

हुआ, उसने 'रक्षा भावना', 'विनय' और 'सम्बन्ध भावना' के समावेश से स्तोत्र को भावमय बनाकर अपनी विशेष सृजनात्मक प्रक्रिया का परिचय दिया। श्री संप्रदाय में लक्ष्मी की स्तुतियां अधिक भावाविष्ट होती गईं। इन स्तोत्रों में काव्य प्रतिभा का योग भी है।

२.३२. गेय साहित्य की रचना—

स्तोत्रों के अतिरिक्त परवर्ती आचार्य मानस गेय साहित्य की रचना में भी प्रवृत्त हुआ। स्तोत्रों के समान ही भगवदर्चा में गेय साहित्य का भी अनिवार्य स्थान था। आचार्यों ने सिद्धान्त, भाव और उत्सवों से सम्बन्धित गेय पदों की रचना की। श्री हित हरिवंश जी की 'हित चौरासी' उनके माधुर्यमय चौरासी पदों का संग्रह है। साथ ही इनकी 'स्फुट वाणी' में सिद्धान्त-प्रतिपादक पद संगृहीत हैं। इसमें पदों के अतिरिक्त अन्य छन्दों का भी प्रयोग है।[३५८] इसी प्रकार स्वामी हरिदास जी ने शुद्ध भावात्मक गेय पदों में 'केलिमाल' की रचना की जिसमें एक सौ ग्यारह पद हैं। साथ ही उनके अट्ठारह सिद्धान्त के पद भी मिलते हैं। इसी प्रकार ललित संप्रदाय के प्रवर्तक श्री वंशी अलि जी ने गेय पदों की रचना की। उनकी वाणी में सिद्धान्त के (४१ पद) वात्सल्य के (४९ पद), माधुर्य के (१२४ पद) तथा उत्सवों के कुछ पद संगृहीत हैं।

इस प्रकार आचार्य-मानस की सृजन-प्रक्रिया के आधार पर आचार्यों के रूप निश्चित किये जा सकते हैं।[३५९]

आचार्य कोटि	स्तोत्र	विनय	संबंध भावना	साध्य का माधुर्य	सिद्धान्त
प्रथम कोटि	V	×	×	×	×
द्वितीय कोटि	V	V	×	×	×
तृतीय कोटि	V	V	V	×	×
चतुर्थ कोटि	×	×	×	V	V

×=नहीं, V=है। इनमें से अन्तिम कोटि ब्रज में उद्भूत भक्त्याचार्यों की है

संदर्भ संकेत

१—यह स्वभावोक्ति व्यापार है, जो भामह (काव्यालंकार २.९३) तथा कुंतक (व० जीवितम्, १.११-१५) की दृष्टि में अलंकार्य है और दंडी (काव्यादर्श, २.८) रुद्रट (काव्यालंकार, अध्याय—७), भोज (सरस्वती कंठाभरण ३.४-५) एवं महिमभट्ट (व्यक्ति विवेक) ने अलंकार रूप तथा वाङ्मय के एक प्रकार के रूप में दृढ़ता से स्वीकार किया है।

२—कुंतक (व० जी० ३.२ वृत्ति), आनंदवर्धन (ध्वन्या० ४.४; ४.६) वामन (हिन्दी का० सू०, भूमिका, पृ० १२) तथा राजशेखर (काव्यमीमांसा, अध्या० ९) ने आहरण को कवि का वस्तु संदर्भीय महत्वपूर्ण कर्तृत्व माना है।

३—आनन्द० ध्वन्या० (काशी संस्कृत सिरीज़ १३५, पृ० २३५), भट्ट नायक (अलंकार सर्वस्व, निर्णय सागर संस्करण, पृ० १०) जयदेव (चन्द्रालोक) तथा पण्डितराज (रसगंगाधर) जैसे आचार्यों ने इस पर विचार किया है।

४—डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, शैली विज्ञान और आलोचना की नई भूमिका, प्रथम व्याख्यान, पृष्ठ १३।

५—वक्रोक्ति जीवितम् ३.१०

६—काव्यमीमांसा, अध्या० ८ में किसी पूर्वाचार्य का उद्धृत मत।

७—हिन्दी व० जी० भूमिका, पृ० ८६।

८—राजशेखर ने भारतीय सांस्कृतिक स्रोतों का परिगणन किया है (काव्यमीमांसा, अ० ८) : वेद, इतिहास, पुराण, प्रमाण विद्या (मीमांसा और छः प्रकार का तर्कशास्त्र) राज सिद्धान्तत्रयी (अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, तथा कामशास्त्र) लोक व्यवहार, विरचना (अन्यों की रचनाएँ) और

प्रकीर्णक (चोंसठ कलायें, आयुर्वेद, ज्योतिष, वृक्ष शास्त्र, अश्व-गज-लक्षण आदि)।

९—कुलार्णव तंत्र, डी० सत्यनारायण द्वारा, सप्तगिरि (सितम्बर, १९७०) पृष्ठ २ पर उद्धृत।

१०—महानिर्वाण तंत्र। वही।

११—विष्णुपुराण ६·२·१७; ६·२·४०

१२—डा० सुनीति कुमार चटर्जी, कृष्ण द्वैपायन व्यास एण्ड कृष्ण वासुदेव, (JRAS B., (Letters) Vot. VI, No. 1. (1950)

१३—ऐतरेय ब्रा० ८·३·१४

१४—तिलक, गीतारहस्य, पृष्ठ ५४६-४७

१५—रामस्वार्थ चौधरी, मधुररस, पृष्ठ ५७

१६—वैष्णव धर्म का विकास और विस्तार. कृष्णदत्त भारद्वाज कल्याण (वर्ष १६, अंक ४)

१७—डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुररस, पृष्ठ ५७

१८—वही, पृष्ठ ५७-५८

१९—वायुपुराण, ३२·२१

२०—वही ७८·३६

२१—महाभारत, ३·१८९·९

२२—द्रष्टव्य, नारदीय संहिता, सं० राघव प्रसाद चौधरी (तिरुपति, १९७१) अनुबंध—१

२३—गोपीनाथ राव, एलिमेंट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, (जिल्द-१, भाग-१) भूमिका, पृष्ठ ४६।

२४—ऋ० १०·१३६·२

२५—इनके सम्मुख ऋ० ९·६६ दृश्य हुआ।

२६ – मज्झिम निकाय, २·४०

२७—चरणव्यूह, पृष्ठ २८

२८—वृहद्देवता २·२६; बोधायन ध० सू० २·६·१६; महा० आदि० २११·५, वायु० पु० ५६·२४, ब्रह्माण्ड पु० १.२.२७, मनु० ६·२१, शंकराचार्य, छा० उप० ५·१०·१ पर भाष्य।

२९—पी० वी० काने हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्र, जिल्द-२, भाग २, कूर्मपुराण, अध्याय २७। अभिधान चिंतामणि ३·४७३

३०—तांड्य ब्राह्मण, १४·४·७

३१—सत्यनारायण शास्त्री, टी० टी० डी० जर्नल (नवंबर, १९६६) २६

३२—वाल्मीकि रा० किष्किधा० ४०·६०; ४३·३३

३३—भागवत ४·२३·३ तथा श्रीधर का भाष्य। वायु पु० ५९·२४; ब्रह्मांड० १·२·२७; मत्स्य पु० ६१·४१

३४—मत्स्य पुराण १४४·२१-२२

३५—महा० वन० ११४·१५-१७

३६—महा० अरण्य० ८९·१६ पर नीलकंठ भाष्य

३७—भागवत ३·१२·४३

३८—बोधायन ध० सू० ३·३·१-२; ३·३·९; मनु० ६·२१

३९—विष्णु पुराण ३·१०·१५; ४·२·१३०, मत्स्य पु० ६१·४१

४०—मनु० ६·२२-३२; विष्णु पु० ३·९·१९-२३

४१—महा० उद्योग० १११·२; अरण्य० ८९·१६; मत्स्य० ६१·४१

४२—महा० आदि० २११·५, कालिदास [शाकुंतल, १·२६, अग्निवेष्य गृहस्य सूत्र २·६·५।

४३—ब्रह्मांड पु० ४·८·४४

४४—मरीचि वैखानसागम, पटल १०

४५—भागवत ११·२७·१ पर श्रीधराचार्य भाष्य।

४६—भागवत ११·२७·१-४९।

४७—महा नारायण उप० ११·३

४८—वैदिक देवताओं से संबद्ध मंत्रों का उच्चारण वैष्णवाचार में भी होता रहा। यजमान, ऋत्विज, होता, अध्वर्यु जैसे पारिभाषिक भी शब्द मिलते हैं।

४९—तांत्रिक तत्वों का भी इसमें समावेश है। भागवत ११·२७·१, ४-९।

५०—वैखानसं सौम्यम् आग्नेयं पांचरात्रम् [कश्यप संहिता]

५१—पांचरात्र रक्षा, पृ० २३

५२—अनंत भट्ट, विधान पारिजात, पृष्ठ ५१९

५३—वही

५४—पाद्म तंत्र, ४·२·८८

५५—हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ ९·१९१

५६—महाभारत, नारायणीयोपाख्यान, मोक्ष धर्म पर्व में ये सभी एकत्र हो जाते हैं।

५७—एस० के० कृष्ण स्वामी आयंगर, साउथ इण्डियन हिस्ट्री एंड कल्चर, पृष्ठ ३३।

५८—वही, पृष्ठ ३८-३९

५९—वही, पृष्ठ ४६

६०—मरीचिकृत विमानार्चन कल्प, (वेंकटेश्वर प्रेस मद्रास, १९२६) संस्कृत प्रस्तावना, पृ० १-७

६१—कुमारिल भट्ट (लगभग, ८०० ई०) तन्त्रवार्तिक (बनारस संस्कृत सिरीज, १९०३) पृ० ११४-११५

६२—ब्रह्म सूत्र, २.२.४२-४५ पर शांकर भाष्य।

६३—आनन्द संहिता (१३.१-४) में पांचरात्र का खंडन मिलता है।

६४—उनका 'आगम प्रामाण्य' इसका ही प्रयत्न है।

६५—पांचरात्र रक्षा (कांची, १९४१) पृ० १०१

६६—शरणागति दीपिका, श्लोक ३२

६७—पारमेश्वर संहिता के अनुसार श्रीरंगम, पाद्म के आधार पर कांचीपुरम, तथा ईश्वर संहिता के आधार पर मेलकोटे की पूजा पद्धति निर्धारित हुई।

६८—भागवत ३.१२.४

६९—छान्दोग्य उप० ७.१.१; ७.२६.१

७०—पद्म पुराण ६.१६०.४; परम संहिता ३१.१८

७१—कपिंजल संहिता, १.१४

७२—K. K. A. Venkatachari, Panchratra Nul Vilakkam, (Madras, 1967) P. 84

७३—यामुनाचार्य जी ने 'आगम प्रामाण्य' में इस संहिता के छः अवतरण दिये हैं। वेदांत देशिकाचार्य जी ने भी 'सच्चरित्र रक्षा' और 'रहस्यत्रय' में भी इस संहिता के उद्धरण दिये हैं।

७४—ईश्वर संहिता, २१

७५—ब्रह्मवैवर्त पु० श्रीकृष्ण जन्म खंड, अध्याय १३२.

७६—महा०, शान्ति० अध्या० ३३६

७७—तोताद्रि की स्थिति दक्षिण भारत में है।

७८—महाभारत, ६।५४।१७

७९—रामायण ७।२१।३

८०—महा० ५।८३।२७

८१—वही ६।३४।१२; १२।२०७।४७

८२—सन० सं० २।१, २

८३—महा० ७।८३।१६

८४—सनत्कुमार संहिता, ऋषिरात्र, अध्याय ६

८५—उत्पलाचार्य (काश्मीर, १० वीं शती) स्पन्दकारिका (प्रदीपिका) पृ० २,४०

८६—परमेश्वर संहिता, १

८७—वही १.४३

८८—ब्रह्मांड पु० ३.१. ५६–५७

८९—इन मन्त्रों में प्रमुख ये हैं : अज्ञेयदेव से संबंधित जो पीछे हिरण्यगर्भ बना (मन्त्र, ऋ० १०. १२१. १–८) पुरुष > नारायण > विष्णु से सम्बन्धित (ऋ० १०.९० पुरुष सूक्त) सवितृ से सम्बन्धित (ऋ० ५.८१) त्रिविक्रम से सम्बन्धित (ऋ० १.२२.१६-२२) प्रथम जन्मा ब्रह्मा जिसमें अस्तित्व और अनस्तित्व दोनों हैं (तैत्तिरीय० १.२.१३.२; ४.२.८.२) आदि मन्त्रों को लिया जा सकता है।

९०—ऋ० १.२२. १६, १७ का प्रयोग इस अवसर पर किया जाता था।

९१—विशेप रूप से तैत्तिरीय सं० ५.७.२ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। ऋ० १.२२. १६-२१ का पाठ भी ऋतूत्सवों पर होता था।

९२—फिर भी 'पुरुपसूक्त' जैसे कुछ भागों का प्रचलन रहा। (९०.९०.१); रथन्तराख्यसाम (सामवेद-३.१.१.)।

९३—सनत्कुमार० ब्राह्म० ४.४५।

९४—ऋ० १.१५४। विष्णु गायत्री (तै० उप० प्रश्न ४.२६) बहुत मान्य थी।

९५—अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय, तथा योग।

९६—सनत्कुमार संहिता, ऋपिरात्र, अध्याय, ३.

९७—लक्ष्मीतंत्र, अध्या ३४।

९८—सनत्कुमार० ऋपि०, ३.५६।

९९—कर्म, ज्ञान, योग।

१००—सनत्कुमार० (ऋषि०) ३.९८-११७.

१०१—वही, ३.९७.

१०२—ज्ञान, क्रिया, चर्चा तथा योग।

१०३—सनत्कुमार० (ऋषि०) अध्याय ५।

१०४—ना० सं० १.१.।

१०५—नारद सं० २८.२६-२७.

१०६—गुरु परम्परा, ७६।

१०७—बल्देव उपराध्याय, भागवत संप्रदाय, पृ० २४५; राघवानन्द की 'सिद्धांत पचमात्रा' में यही मिलाजुला रूप मिलता है।

१०८—कृष्ण निरुद्ध करणात् भक्ता मुक्ता भवंति। [निबन्ध]

१०९—गोकुले गोपिकानां तुसर्वेषां ब्रजवासिनाम्। यत् सुखं समभूत तन्मे भगवान किं विधास्यति। [निरोधलक्षण, २]

११०—सर्व० नि० प्र० २३८।

१११—वही, १९४।

११२—बिहारी के एक दोहे में इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

'मनमोहनसों मोह करि तू घनश्याम निहारि।
कुंजबिहारी सों बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥

११३—श्री वल्लभाचार्य, भागवत ३.३२.३ पर सुबोधिनी। भक्तमाल में भी विष्णु-स्वामी के संप्रदाय को शिव संप्रदाय कहा गया है।

११४—भक्तमाल, छप्पय–४३।

११५—लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, श्री ज्ञानेश्वर चरित्र।

११६—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ संप्रदाय (१९५०, इलाहाबाद) पृ० १७६।

११७—डा० भगवती प्रसाद सिंह, श्री कृष्णदास पयहरी, भारतीय साहित्य, (५ : १–२) पृ० ४३।

११८—प्रो० कपिलेश्वर प्रसाद, महिमाधर्म और भक्त कवि भीम भोई, (वही)।

११९—इसे उद्धवमत भी कहते हैं। इस मत के संस्थापक रामानन्द (प्रसिद्ध रामानन्द से भिन्न) उद्धव के अवतार माने जाते हैं।

१२०—डा० विनयमोहन शर्मा, गुजरात का स्वामी नारायण संप्रदाय, भारतीय साहित्य (५.१-२) पृ० १०२।

१२१—रामकृष्ण गणेश हर्षे, महानुभाव पंथ और साहित्य, (वही)।

१२२—यह नाम कृष्ण का भी है (महा० ५.७०·१३) तथा विष्णु का भी (वही १३.१४९·२५)।

१२३—स्मार्त सूत्र, ४.१०-१२।

१२४—नारद सं० २८.३९।

१२५—स्मार्त सूत्र ४.१०-१२।

१२६—काठक संहिता, अ० ३८।

१२७—विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्सद प्रोनाउसियेशन आफ नेम्स।'

१२८—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० १४।

१२९—इसका अप्रस्तुत, यह है कि जिस भूमि पर मनुष्य गिरता है, उसी का सहारा लेकर वह खड़ा भी होता है।

१३०—सुन्दर दर्शन, पृ० १३४।

१३१—हिरण्यगर्भ, ओंकार. स्वयंभू, विश्वकर्मा, सच्चिदानन्द, राम, हरि, आदि सभी प्रतीकवत् प्रयुक्त नाम हैं।

१३२—तैत्तिरीय उप० ब्रह्मानन्द वल्ली २·७; बृहदारण्यक उप० २.१; में एक अन्य प्रकार से प्रतीकाख्यान किया गया है।

१३३—महाभारत १३.१५६।

१३४—नाम न कछु बिहार बिन, ठाली नाम निवारि।
नामी नाम सुहावनौ, जब देख्यौ करत बिहार॥
कहा नाम नामी कहा, सखी सुख पूछौं तोहि।
तन-मन-मगन बिहार में, तहाँ ढूँढ़ि लै मोहि॥
[बिहारिनिदास, साखी, १३२, १३३]

१३५—विष्णु की पूजा 'पुरुषसूक्त' से होनी चाहिए और श्री की पूजा श्री सूक्त से।

१३६—सनत्कुमार० शिवरात्र, २.१।

१३७—वही २·२।

१३८—वही, ऋषिरात्र, अध्याय ७ तथा ८।

१३९—सनत्कुमार० ऋषि० ४५.३७-४०।

१४०—भोजन बनाने वाले पात्र की शुद्धि के लिए विष्णु गायत्री, चावलों को स्पर्श करने के लिए, द्वादशाक्षर मन्त्रों का प्रयोग होता है।

१४१—व्युत्पत्ति मुद्–'प्रसन्न होना' से है। मुद्रा=अन्यायी पुरुषों के आनन्द को नष्ट करने वाला (परमसंहिता १४.१) मुद्रा=अर्चक के बाह्यांतर दोषों को नष्ट करने वाली (ईश्वर संहिता, २४.२)।

१४२—शब्द कल्पद्रुम, जिल्द-२, पृ० ७५५।

१४३—सनत्कुमार० शिवरात्र, १.१६।

१४४—वही, १.१६।

१४५—विश्वामित्र संहिता में मुद्रा-चित्र भी हैं।

१४६—नारद० सं० २५. ३३८।

१४७—आनन्द लहरी, ३१ में ६४ तन्त्रों की चर्चा है।

१४८—मनु० २.१. पर कुल्लूक की टीका।

१४९—Blavatsky, the Secret Doctrine, P. 94.

१५०—विवेचन के लिए द्रष्टव्य, गोल्डन वाउ, फ्रेजर, पृ० ५२–५५।

१५१—विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, डा० सत्येन्द्र, मंत्र, भारतीय साहित्य, (जनवरी, १९५६) पृ० ४४।

१५२— कश्यप संहिता में पांचरात्र ज्ञानवाद का कुछ विस्तार है।

१५३—पी० वी० काणे, हिस्ट्री आफ धर्म शास्त्र, खण्ड-२, पृ० ७०६।

१५४—ए० वार्थ, रिलीजन आफ इण्डिया (लन्दन, १८८२) पृ० ६०।

१५५—ऋगवेद २.३३.६।

१५६—वही १.२५.१३.

१५७—वही ५.३.१५.

१५८—'कासीत प्रभा प्रतिमा' ऋ० १०.१०.१३० (सायण भाष्य)।

१५९—तैत्तिरीय संहिता ५.२.७।

१६०—रामायण (३.१२.१७–२०) में ब्रह्मा, अग्नि, विष्णु, महेन्द्र आदि के पूजा स्थलों का वर्णन है। वहीं (२.४.३०) देवतागार शब्द आया है। मनुस्मृति (२.१७६) में देवताभ्यर्चन का उल्लेख है। यास्क निरुक्त, ७.६; पाणिनि ५.३.९९; ४.६.५४ पर महाभाष्य।

१६१—वनपर्व अ० ८२.८४। मैकडोनल, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २१०।

१६२—अग्नि० अध्याय ४२, १०४; गरुड़० अध्या० ४५, ४७; भविष्य (ब्राह्मपर्व) अध्या० १३०; मत्स्य० अध्या० २५२, २५३, २५७; वायु० भाग–१, अध्या० ३९।

१६३—अपराजित पृच्छा (२१५. २–९) तथा रूपमंडन (३. ३–८) में विष्णु मूर्ति का उल्लेख है।

१६४—नारद पांचरात्र, भारद्वाज संहिता, परिशिष्ट–३।

१६५—नाट्य शा० ३.७।

१६६—पुराण साहित्य में भागवतों के लक्षण भी दिये हैं। स्कंद पुराण, विष्णु धर्म पुराण (७९ वाँ अध्याय) आदि।

१६७—डा० सत्यनारायण, भागवत, सप्तगिरि (जुलाई, १९७०) पृ० ४।

१६८—विष्णुधर्मोत्तर, १.११।

१६९—'In fact contemplation, rite and image making become facets of the same process—the creative activity of the human Spirit.' Radha Kamal Mukerjee, The Culture and Art pf India, P. 244.

१७०—टी० ए० गोपीनाथ राव, एलिमेंट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, जिल्द-१, भाग-१, पृ० २८।

१७१—वही, पृ० २६।

१७२—श्री अरविंद, द नेशनल वैल्यू ऑफ आर्ट (अरविंद आश्रम, पांडिचेरी) पृ० ४६–५१।

१७३—स्वा० विवेकानन्द, शिकागो एड्रेसेज, पेपर ऑन हिन्दूइज्म (अद्वैत आश्रम कलकत्ता) पृ० २६–३०।

१७४— एच० डेनियल स्मिथ, वैष्णव आइकोनोग्राफी, प्रस्तावना, पृ० २४।

१७५—यह समस्या विष्णु धर्मोत्तर में उठाई गई है।

१७६— M. A. Sherring, The Sacred City of Hindus, (London, 1868), P. 41.

१७७—ब्रह्मसूत्र १.२.२६।

१७८—ब्र० सू० १.१.४ (न प्रतीके न हि सः) ४.१.५ (ब्रह्म दृष्टि सत्कर्षात्)।

१७९—तिलक, गीता रहस्य, पृ० ४१४-४१५।

१८०—बृहदारण्यक उप० ७.४.२३।

१८१—अर्चत्, प्रार्चत (ऋ० ८.६६.८), अथर्व० २०.६२.५; अर्चद् (ऋ० १.१७३.२) आदि।

१८२—गीता ७.२१।

१८३—कुमार स्वामी, हिस्ट्री आफ इंडियन ऐंड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ० ४१।

१८४—कुमार स्वामी, पूर्वोद्धृत, पृ० ५।

१८५—मजूमदार, दी वैदिक एज, (विद्याभवन, द्वितीय सं०, १६२)

१८६—परम संहिता (गायकवाड़ सिरीज) ३.५—७।

१८७—डा० राधा कृष्णन, दी कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, भाग-२, पृ० ६८-७०.

१८८—अहिर्बुध्न्य संहिता, ११.६४।

१८९—साउथ इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, (पूर्वोद्धृत) पृ० ८०६।

१९०—जे० एस० एम० हूपर, हिम्स आफ आल्वार्स, पृ० २३-२४।
श्रीरंगम के रंगनाथ, कांची के वरदराज स्वामी, तिरुपति के व्यंकटेश्वर आल्वार साहित्य के मुख्य प्रेरक रहे हैं। द्रष्टव्य हिस्ट्री आफ तिरुपति, भाग १, पृ० २०८।

१९१—एम० के० आयंगर, हिस्ट्री आफ तिरुपति, भाग १, पृ० ५२।

१९२—प्रथम दरस गोविंद रूप के प्रान पियारे।
दूजे मोहन मदन, सनातन सुचि उर धारे।
तीजे गोपीनाथ मधु हँसि कंठ लगाये।
चौथे राधारमन भट्ट गोपाल लड़ाये।
पाँचे हित हरिवंश किये वस वल्लभ राधा।
छटये युगल किसोर व्यास सुख दियौ अगाधा।
साते श्री हरिदास के कुंज विहारी है तहाँ।
भगवन रसिक अनन्य मिलि बास करइ वन जहँ।
[भक्त कवि व्यास जी, पृ० ५८ पर उद्धृत]

१९३—गोवर्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता, (हरिराय, सं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या) पृ० १।

१९५—डा० दीनदयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५१४।

१९६—अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ९।

१९७—गोवर्धननाथ जी की प्राकट्य वार्ता, पृ० ९।

१९८—संप्रदाय प्रदीप, पृ० ७७।

१९९—दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता में राजा लाखा, बंगाली देव ब्राह्मण, पाँचो गुजरी, रामदास, पूरणमल खत्री, उनके कपड़े धोने वाले धोबी, आदि के प्रसंग मिलते हैं।

२००—अष्टछाप (सं० कण्ठमणि शास्त्री,) पृ० ६०७। भक्तमाल में इस सिद्धान्त की ओर संकेत है—'भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु' चतुरनामवपु एक।' छीत-स्वामी के पद में यह भावना स्पष्ट है। (अष्टछाप, पृ० ६०६)।

२०१—चौरासी वार्ता में सेविका के पुत्र होना, माधवदास से पूछना, जैसे प्रसंग हैं।

२०२—वार्ता साहित्य में इस प्रकार के भी अनेक प्रसंग हैं।

२०३—'जब श्री गोवर्धन नाथ जी प्रकट भए, तब अष्ट सखाहू भूमि पे प्रगट भये।'
[गोवर्द्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता, पृ० २७]

२०४—भागवत १.५.२१।

२०५—वही, ११.५.३२।

२०६—वैष्णव मताब्ज भास्कर, (अनुवादक—भगवदाचार्य), पृ० ११८।

२०७—सनत्कुमार संहिता (शिवरात्र), १.२६३।

२०८—वही, शिवरात्र।

२०९—इसी संहिता के इन्द्ररात्र में उन अक्षरों का परिगणन है, जिनका प्रयोग मंत्र रचना में होता है।

२१०—याग, स्तोत्र, महायाग, अध्वर, सत्र, क्रतु, तथा हरिस्तोम।

२११—अत्रि संहिता ४७.५८।

२१२—स्मार्त सूत्र ४.१०–१२।

२१३—सनत्कुमार० (शिवरात्र) १.२६३।

२१४—वही, १.२७२।

२१५—ना० संहिता २८.८-१२।

२१६—काठक संहिता अध्याय–३८।

२१७—वही, २८.८-१२।

२१८—महा० १२.१००.१०।

२१९—रामायण ४.४३.५०।

२२०—हॉपकिंस, एपिक माइथॉलॉजी, पृ० १७५।

२२१—It u on 5.3:6.

२२२—'देवनायक पंचशत' की रचना 'देवनाथ' को, 'अच्युत शतक' की रचना भी इन्हीं को, वरदराज पंचशत, वरदराज को, समर्पित है।' 'परमार्थ स्तुति' में कांची के श्री दीपप्रकाश का स्तवन है।

२२३—श्री लाड़लीदास कृत, सुधर्म बोधिनी, पृ० ७२।

२२४—गो० कमल नयन, समय प्रबन्ध (उत्सव बीजक)।

२२५—वल्लभ सम्प्रदाय में 'व्रतोत्सव निर्णय' मिलता है। राधावल्लभीय वर्षोत्सव ग्रन्थ (गुलाब लाल जी का; हितरूपलाल जी का, व्रजलाल जी कृत, कमलनयन जी कृत, दामोदर स्वामीकृत, अलिवल्लभ जी कृत, सहचरी सुखजी कृत, प्रियादासजी कृत,) भी मिलते हैं।इसी क्रम में आने वाले 'समय प्रबंध' (जतनलाल जी कृत, हितरूपलाल जी कृत, श्री रतनदास जी कृत) नामक ग्रंथ भी रखे जा सकते हैं।

२२६—सनत्कुमार सं० (ऋषि०) १.९.११।

२२७—हरिजन कों पूजौ हरिजान [सू० सा० ४९१६]

२२८—शतपथ ३.७.३.१०; 'विद्वांसो हि देवाः' (ऋ० ४.२४.३)।

२२६—शतपथ २.२.२.६।

२३०—मुडक० उप० ३.२.६।

२३१—ब्र० सू० ४.४.१७।

२३२—ना० भ० सू० ४१, तथा ६७।

२३३—तुलसी ऐसे संतजन, रामरूप जग माँहि।

× × ×

तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान। तु० ग्रं० [खण्ड—२] वैराग्य संदीपनी, पृ० ११, दो० २३ और २७]।

२३४—वाल्मीकि तुलसी भयौ। भक्तमाल, छप्पय १२६। माधवदास को व्यास रूप कहा गया (भ० मा० छप्पय, ७०)।

२३५—राम रसिकावली, रघुराज सिंह भूदेव, पृ० ६५४।

२३६—भ० मा०, छप्पय ७६।

२३७—वही, १८७।

२३८—वही, ध्रुवदास जी का उद्धृत दोहा।

२३९—'अष्ट सखान की वार्ता' चौरासी वैष्णवों की वार्ता से संगृहीत। डा० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भा० २, पृ० ५०८ पर सूची दी है।

२४०—द्रष्टव्य, लेखक का 'चैतन्य मत में सखी और मंजरी' : ब्रजभारती।

२४१—घनानंद ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ७६।

२४२—भक्तमाल, छप्पय, ११५।

२४३—भक्तमाल, रूपकला दो० २, ३।

२४३—अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन को यश गाउ।
भवसागर के तरन कौ, नाहिन और उपाउ॥
रूपकला, भक्तमाल, दोहा, ४।

२४५—भक्तकवि व्यास जी, पृ० १९६, पद, २२—'मेरे भक्त हैं देई देऊ।'

२४६—अहिर्बुध्न्य संहिता, पद्मपुराण तथा महानारायणोपनिषद् में आवेशावतार का प्रतिपादन और विस्तार है।

२४७—दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (बंबई) पृ० १८२।

२४८ —चौरासी वैष्णवन की वार्ता ।

२४६ —भक्त० छप्पय ४६ ।

२५० —लघुभागवतामृत ४६; हरिभक्ति रसामृतसिंधु, पृ० ५८ (श्लो० ७२) ।

२५१ —द्रष्टव्य, रामानुज नूड्डनूताति, १६, २६ ।

२५२ —श्रीवचन पूषणम्, ४:४१२ ।

२५३ —श्वेताश्वतर ६.२३ ।

२५४ —सनत्कुमार का सात्वत धर्म से; नारद का पांचरात्र से; नरनारायण का तप से, कपिल का सांख्य से, दत्तात्रेय का योग से, यक्ष का यज्ञ से, ऋषभ का जैनधर्म से,पृथु का खनिज और कृषि से,धन्वन्तरि का आयुर्वेद से सम्बन्ध है ।

२५५— संप्रदाय प्रदीप, पृ० ५२, ५६, तथा ८१ ।

२५६—संप्रदाय प्रदीपालोक, पृ० ११०; संप्रदाय प्रदीप पृ० ८६ ।

२५७—श्री लछमन गृह आजु बधाई ।
प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम, श्री वल्लभ सुखदाई ।
[कुंभनदास पद संग्रह, पृ० ३१, ४४]

२५८-- बरनौं श्री वल्लभ अवतार ।
गोकुलपति प्रगटे श्री गोकुल, सकल विश्व आधार ।।
सेवा भजन बताइ निज जनकौं मेट्यौ जन ब्यौहार ।
कुंभनदास प्रभु गिरिधर आये, सबही उतारे पार ।।
वही, पृ० ३६, पद, ८३ ।

२५६—पूरन ब्रह्म प्रगटि पुरुषोत्तम, श्री वल्सभ सुखदाई । [नं० ग्रं० पृ० ३२६, पद ६] ।

२६०—जयति भट्ट लक्षण तनुज कृष्ण वदनानल श्री मदिल्लमुगारु, गर्भ रत्ने । प्रथित मायावाद वर्ति बदन ध्वंसि, विहित निजदास जन पक्षगाते ।
[राग कल्प द्रुम, पृ० १०१, पद. १४]

२६१—अष्ट छाप, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २७ ।

२६२—छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल तेइ एइ, एई तेई कछुन संदेह । वही, पृ० २७०, पद ३० ।

२६३—भजो श्री वल्लभ सुत के चरन ।
नन्द कुमार भजन सुखदायक पतितन पावन करन । नं० ग्रं० पृ० ३२६, पद ८ ।

२६४—श्री बिट्ठल गिरिधर अवतार, नन्ददास कीन्हों बलिहार। वही, पद ६।

२६५—सकल दुःख दारणं भवसिंधु तारणं जनहित लीलादेह धरणं।
[राग कल्प० पृ० ७८-७९, पद ११]

२६६—राग कल्प० पृ० ७६, पद १२ (छीत स्वामी)।

२६७—बिट्ठलेश सुत सुहृद श्री गोबरधन धर ध्याइये।
ए सात प्रगट विभु, भजन जगतारन तस जस गाइये। भक्तमाल, छं० ८०।

२६८—राग कल्पद्रुम, पृ० ७८, पद ६ (छीत स्वामी का पद)।

२६९—राग कल्प० पृ० १०१, पद १८ (माधोदास का पद)।

२७०—डा० रत्नकुमारी, १६ वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० १७२।

२७१—कृष्णरूप चैतन्य घन तन सत मकर प्रकास।
सदा सनातन एकरस, बिहरत विविध विलास॥
[मान माधुरी, ह० लि०, ना० प्र० स० २९०, पृ० ८]

२७२—भक्तमाल, छन्द ७२ : प्रियादास जी की टीका।

२७३—चै० च० ब्रजभाषा प्रतिध्वनि, आदि लीला, परि० २।

२७४—इस योजना में माधव, ईश्वरपुरी, शची, जगन्नाथ आदि सम्मिलित हैं।

२७५—चै० च (ब्रजभाषा प्रतिध्वनि) आदि लीला, चतुर्थ परिच्छेद।

२७६—वही, परि०, ७ पृ० ५०।

२७७—श्रीहित चरित्र, गोपालप्रसाद शर्मा, २७७; भगवत मुदित, रसिकमाल, हस्त लि०, ४७४, ३४९, ना० प्र० स०, पत्र—३।

२७८—रसिक अनन्य बेनु कुल मन्डन, लीला मानसरोवर हंस, [भक्त कवि व्यासजी, पृ० १९३, पद १०]।

२७९—भागवत १०.२९.३८४।

२८०—उग्यौ श्री हरिवंश शशि, खिली चाँदनी भक्ति।
रसिक कुमुद फूले अमी, श्रवत प्रेम आसक्ति। [हितचौरासी, प्रेमदास कृत टीका पृ० १ दोहा—२]।

२८१—कहँ तुम हित जू जगत पति, कहाँ अधम मैं जीव। वही दोहा, ५।

२८२—सेवक बानी, ह० लि० ना० प्र० स० ५४, ५९ स० ११।

२८३—ध्रुवदास ग्रंथावली, रहस्य मंजरी, ७५-८३ पृ०।

२८४—सेवक बानी, पूर्वोद्धृत, पृ० ४२ और ४३।

२८५—ईश्वर संहिता, २१. ५५४।

२८६—कपिंजल संहिता, २.१४।

२८७—छान्दोग्य, ५.१०.७।

२८८—ब्र० सू० ३.१.९; ३.१.१०।

२८९—वही, ३.१.११ में उद्धृत।

२९०—छान्दोग्य ५.१०.२।

२९१—डी० सत्यनारायण, सप्तगिरि, (सितम्बर, १९७०) पृ० ३।

२९२—भागवत, १.७.९–११।

२९३—हरि गीता, ५३, गीता में भी इसकी परपरा है, ४.१-३३।

२९४—पं० बलदेव उपाध्याय, 'भागवत संप्रदाय।' पाद्मतन्त्र (४.२.८८) में भागवत सात्वत और पांचरात्र को एक ही कहा गया है।

२९५—विष्णु पु० ६.५. ६९-७४; ११.२.५२। कुमारगुप्त के गढ़वाशिलालेख से भी यही व्यक्त होता है।

२९६—वराह मिहिर, बृहत्संहिता, ५१.२९।

२९७—चन्द्रगुप्त द्वितीय ने मथुरा शिलालेख में अपने को भागवत कहा है।

२९८—श्रीमद्भागवत ग्रंथ इसका प्रमाण है।

२९९—सांख्यशास्त्र की भी संज्ञा एकांत है। और यह भी कहा जाता है : सांख्यतुल्ये हि भूपाल धर्म एकान्त संहितः' (भोक्षधर्म पर्व)।

३००—वैष्णवागम साहित्य में दीक्षा प्रकरण का विस्तार बहुत अधिक है।

३०१—आगम प्रामाण्य, पृ० ५९।

३०२—गीता २.४५।

३०३—ईश्वर संहिता, १.२४.२६।

३०४—भागवत पुराण, १.१.२।

३०५—डा० एन सुब्बूरेड्डियार, टंकित प्रबन्ध, पृ० ५७१।

३०६—वही, ५९३; तिरुवाइमौलि, ६.२ : १०।

३०७—पं० बलदेव उपाध्याय, भागवत संप्रदाय, पृ० १४७; पं० परशुराम चतुर्वेदी, मध्यकालीन प्रेम साधना, पृ० १८।

३०८—श्रीधर स्वामी कृत 'भावार्थ दीपिका' (११ वीं शती), सुदर्शन सूरिकृत 'शुकपक्षीया' (१४ वीं शती) वीर राघवकृत 'भागवत चंद्रिका' (१४ वीं शती) विजयध्वजकृत 'पदरत्नावली' का नामोल्लेख प्रमाण स्वरूप किया जा सकता है।

३०६—इतीदं द्वादशस्कंध पुराणं हरिदेवस:। [भागवतार्थ प्रकरण, ६]।

३१०—तत्वदीप (स० नि० प्र०) २१।

३११—श्रीभागवत मेवात्र परं तस्य हि साधनम्।
संवाद: समभूतात चत्रैषा सात्वती श्रुति: [महा० २.४.७]।

३१२—सात्वत पति वासुदेव की भक्ति ही इसका लक्ष्य है (भागवत १.२.१४)।

३१३—वेदा: श्री कृष्ण वाक्यानि व्यासंत्रणि चैवहि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्च तुष्टम्। [तत्वदीप निबन्ध]

३१४—वल्लभाचार्यकृत दशमस्कंध अनुक्रमणिका, त्रिविध लीला नामावली एक प्रकार से दशमस्कंध के ही संक्षिप्त रूप हैं।

३१५—पुरोषोत्तम सहस्रनाम भागवत का ही संक्षिप्त संस्करण है। तत्वदीप निबन्ध का श्री भागवतार्थ प्रकरण भागवत की स्वरूप साधना और उसके बहिरंग परिचय को स्पष्ट करता है। श्री सुबोधिनी भागवत के अन्तरङ्ग रहस्य का उद्घाटन करती है।

३१६—S.K. De, Vaishnava faith and Movement in Bengal, P. 16-17

३१७—मध्यकालीन प्रेम साधना, पृ० १८।

३१८—वही।

३१६—डा० सुकुमार सेन, ए हिस्ट्री आफ व्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ४३५।

३२०—डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुररस (१) पृ० ४६।

३२१—राय चौधरी, प्रारंभिक वैष्णव मत का विकास, पृ० १०६।

३२२—डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुररस (२) पृ० ६०; प्रो० रामपूजन तिवारी, व्रजबुलि साहित्य, पृ० ५६; श्री राजगोपालाचार्य, दि वैष्णवाइत रिफोर्मर्स आफ इण्डिया, पृ० १३८।

३२३—तिरुवाइ मौलि, ५.८।

३२४—आज यह काट्टु मन्नार कौमिल (दक्षिण अरकाट जिला) के नाम से जाना जाता है।

३२५-- प्रशस्ति गीत तीन संस्कृत में हैं और एक तमिल में है। प्रथम प्रशस्ति पेरियाल्वार के सम्बन्ध में हैं। दूसरी प्रशस्ति 'मदुर कवियाल्वार' से सम्बन्धित है। सुना जाता है कि इन्हीं के एक पद्यांश का १२,००० बार पाठ करके नादमुनि को नम्मालवार का साक्षात्कार हुआ था।

३२६—नादमुनि के अनुसार, मदुर कवि याल्वार, नम्मालवार के पदों को उपनिषदों के समान ही मानते थे। श्री वेदांत देशिक ने 'पादुकासहस्र' में नम्मालवार के द्वारा वेद की एक अतिरिक्त संहिता की चर्चा की है।

३२७-- दक्षिण के शिव मन्दिरों में यह प्रथा पहले से चली आ रही थीं। 'तेवार में' पद्यों का गायन शैव मन्दिरों में होता था।

३२८— गुरुपरम्परा, पृ० १०२।

३२९—यह पद्य 'स्तोत्र रत्नम्' में मिलता है।

३३०—डा० सुकुमार सेन, ए हिस्ट्री ऑफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ४३५।

३३१—डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुर रस (२) पृ० ४७१।

३३२—गी० गो० ५.२।

३३३—वही १.२.।

३३४—चण्डीदास विद्यापति रायेर नाटक गीति कर्णामृत श्री गीत गोविंद।
स्वरूप रामानन्द सने महाप्रभु रात्रिदिने गाय शुने परम आनन्द॥
[चै० चरितामृत, २; ६६ तथा १० : ११५]

३३५—बल्देव विद्याभूषण ने १८ वीं शती (१७२५) में ब्रह्मसूत्रों पर गोविंद भाष्य नाम से भाष्य लिखा और अचिंत्य भेदाभेद दर्शन प्रत्यक्ष किया।

३३६ - अनुश्रुति के अनुसार इसे चैतन्य महाप्रभु दक्षिण लाये थे। इसमें कृष्ण के नाम, रूप, धाम आदि का विस्तार हैं।

३३७—ब्र० सू० ३. १. ११ में उद्धृत।

३३८—छान्दोग्य० ४. १५. ६, कार्यं वादरिस्य गत्युपपत्ते (ब्र० सू० ४. ३. ७)

३३९—इन दोनों का विस्तार क्रमशः ब्राह्मण संहिताओं और उपनिषद में हुआ है।

३४०—गी० १३.४

३४१—जैमिनी, बादरि, वादरायण, ओड्डलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, आदि के मत उद्धृत हैं।

३४२—केशवकाश्मीरी की गीता व्याख्या के अंतिम श्लोक में इसकी चर्चा है।

३४३—मानदास की उपनिषद् प्रकीर्णियों में निर्दिष्ट।

३४४—ब्रह्मजिज्ञासा, प्रकरण १, १, १।

३४५—यह द्वैताद्वैत सिद्धान्त सेतु के नाम से प्रसिद्ध है।

३४६—यद्यपि सनातन गोस्वामी ने 'वैष्णव तोषिणी' भागवत की टीका में कहीं-कहीं माध्वमत का उल्लेख किया है और जीव गोस्वामी ने भी माध्व भाष्य की ओर संकेत किया है, तथापि बल्देव विद्याभूषण से पूर्व किसी ने चैतन्य दर्शन और माध्व दर्शन में सम्बन्ध नहीं माना। अतः माध्व भाष्यों की मान्यता इस संप्रदाय में बहुत परवर्ती होगी।

३४७—डा० विजयेन्द्र स्नातक, राधावल्लभ संप्रदाय, पृ० १२६

३४८—गो० मुकुन्दवल्लभाचार्य, श्री व्यासवाणी (पूर्वार्द्ध) भूमिका पृ० ८, गो० हितरूपलाल जी, श्री हितसुधासागर' भूमिका, पृष्ठ-ग, गो० युगवल्लभ 'सिद्धान्त सार स्मृति' (वृन्दावन), पृ० १२।

३४९—गो० श्रीकृष्णचन्द्र का एक भाष्य बतलाया जाता है (श्री सुदर्शन पत्रिका माघ सं० १९९३, प्रकाश-३, किरण-1) रींवा नरेश विश्वनाथसिंहजू का राधावल्लभीय भाष्य प्राप्त है, रींवा के प्रियदासजी कृत राधावल्लभ भाष्य (ब्रह्मसूत्र) भी बताया जाता है। साहित्यरत्नावली, पृ० ७१, भोलानाथजी लिखित एक भाष्य बतलाया जाता है।

३५०—राधावल्लभ संप्रदाय० पृ० १३१

३५१—इस पर वाक्यरूप वाले अध्याय में विशेष रूप से विचार किया गया है।

३५२—स्त्रग्धरा स्तोत्र, लक्ष्मीनृसिंह स्तोत्र, आदि शंकर रचित माने जाते हैं।

३५३—इसका प्रकाशन चौखम्भा सिरीज में हुआ है।

३५४—डा० नारायणदत्त शर्मा, निबार्क संप्रदाय ० पृ० ३५

३५५—एक स्तोत्र ग्रंथ राधा प्रार्थना चतुःश्लोकी' के नाम से भी मिलता है।

३५६—श्री यमुना विज्ञप्तिः यमुनाष्टक (तेली वाला) आदि भी यमुना से सम्बन्धित स्तोत्र ग्रंथ ही हैं। श्री यमुनाजी के १०८ पद भी स्तोत्र ही हैं।

३५७—४ सवैया + २ छप्पय + २ कुण्डलियां + १५ रागबद्ध पद + ४ दोहे = २७

३५८—क = उपस्थिति : क = अनुपस्थिति।

३ / वस्तु स्थानांतरण आचार्य मानस से कवि मानस

आचार्य मानस का सम्बन्ध एक लोकोन्मुख आन्दोलन से भी है। इस लोकोन्मुख आन्दोलन में ही संस्कृत साहित्य के लोकभाषा साहित्य के द्वारा प्रतिस्थापन का प्रेरणा बीज भी अंतर्निहित हैं। दाक्षिणात्य आचार्य मानस स्वयं तो संस्कृत साहित्य की रचना में प्रवृत्त रहा, पर आल्वार साहित्य के माध्यम से यह लोक मानस की राह पा सका। वेदांतदेशिकाचार्य जी ने प्राकृत और तमिल में भी कुछ सृजन किया। निबर्काचार्यजी और बल्लभाचार्यजी स्वयं लोकभाषा साहित्य के सृजन में प्रवृत्त नहीं हो सके। इनको दीक्षित कवियों के ब्रजभाषा साहित्य के माध्यम से लोकमानस के लिए मार्ग निर्माण करना पड़ा। चैतन्य महाप्रभु ने लोक भाषा साहित्य का मार्ग भी ग्रहण किया और कवियों को प्रेरणा भी दी। ब्रज में आविर्भूत आचार्यों ने स्वयं लोक-भाषा साहित्य का सृजन भी किया और अन्य सांप्रदायिक कवियों को सांप्रदायिक काव्यवस्तु में दीक्षित भी किया वैसे प्रवर्तक आचार्यों के समकालीन और परवर्ती सांप्रदायिक कवियों को 'दीक्षित कवि मानस' की संज्ञा दी जा सकती है।

भक्ति संप्रदायों की संरचना यह है :

आचार्य —	मंत्रप्राप्ति	—	मंत्रदान (दीक्षा)	दीक्षित कवि मानस
	दर्शन	—	वस्तुबोध	
	भावन	—	चर्या	
	प्रतीकन	—	सेवाभाव	

यदि इन सभी सूत्रों की पुनर्रचना करके भक्त सृजनात्मक प्रक्रिया से उसे जोड़ कर अभिव्यक्ति की ओर चलता है, तो उसकी संज्ञा भक्त कवि हो जाती है। आचार्य मानस से सांप्रदायिक वस्तु के रूप में जो भाव बोध उद्‍भूत होता है वही कवि

मानस से संयुक्त होकर काव्यवस्तु में परिणत हो जाता है। काव्यवस्तु की प्राप्ति ही 'प्रेषण' का आरंभिक बिंदु है। आचार्य मानस प्राप्त मंत्र का दार्शनिक बोध, उसका भावन, और प्रतीकन करके वस्तु और उसके उत्तेजना केन्द्र की रचना करता है। इसका अविकल प्रेषण दीक्षित कविमानस का कर्तव्य है।

काव्य वस्तु कविमानस की प्रतिकृति है। कवि मानस की एक प्रकृत संरचना होती है और दूसरी विविध संदर्भों में विकसित संरचना। सामान्य संदर्भ भी अचेतन रूप से व्यक्ति की मानसिकता को विकसित करते हैं और कुछ विशेष संदर्भ भी होते हैं जिनमें व्यक्ति सचेतन रूप से संक्रमित होता है और उन संदर्भों में मानस का सचेष्ट विकास होता है। ये विशिष्ट संदर्भ कभी तो पूर्वकालीन मानसिकता को स्वीकार करके चलते हैं और कभी ये इतने बल के साथ अध्यारोपित होते हैं कि मानस के विविध चेतना केन्द्रों पर संगृहीत संस्कारिता पूर्ण रूप से ध्वलित हो जाती है और अभूतपूर्व संस्कारिता के अंकुर जम जाते हैं। यह नवीन सांस्कारिता जीवन की 'चर्या' को भी नवीन क्रम में बद्ध करती है और यदि रचना-प्रक्रिया जागृत हुई तो उसका दिशा निर्देश भी करती है। रचना प्रक्रिया में 'चुनाव' 'बलनिक्षेप' 'परिसीमन' 'प्रयोग' 'संस्करण' 'अलंकरण' 'प्रतीकन' 'चित्रण' आदि क्रियाएँ समन्वित होती हैं।

ब्रजभाषा के भक्त कवि की मानसिकता को एक सबल संदर्भ मिलता है। इसको 'संप्रदाय', 'दीक्षा' 'समर्पण' 'ब्रह्म संबंध' जैसे नामों से पुकारा जा सकता है। इसके द्वारा पुराने संबंधों के स्थान पर नवीन संबंध उगते हैं। नवीन संबंध सांप्रदायिक संरचना, गुरू, आचार्य, अर्चा प्रतीक, मन्त्र और आध्यात्मिक सत्ता के साथ स्थापित होते हैं। प्रेरणा और उत्तेजना के पुराने वास्तव केन्द्र विचलित और स्तब्ध हो जाते हैं और नवीन वस्तु केन्द्रों से नवीन उत्तेजनाएं मिलने लगती हैं। सांप्रदायिक वस्तु के प्रति 'चुनाव' की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है : 'सर्वस्वीकृति' में चेतना परिसीमित हो जाती है। यह स्वीकृति इतनी रागात्मक होती है कि वस्तु-चुनाव की स्वतंत्रता अपहृत होजाने पर भी मन:स्थिति खिन्न-विषण्ण नहीं होती।

दीक्षा : कवि मानस का परिष्कार :

'दीक्षा' एक नवीन संबंध का नाम है। यह द्विदिक है : आचार्य और शिष्य का संबंध तथा शिष्य और ब्रह्म का संबंध।

भक्त ← आचार्य → ब्रह्म

इसलिए वल्लभ संप्रदाय में दीक्षा का समानार्थी शब्द ब्रह्म संबंध माना गया है। इस संबन्ध का आधार है—सम्पूर्ण समर्पण। समर्पण का अर्थ है—समस्त कर्त्तव्य का वास्तविक कर्त्ता में विनियोग। (१) एक प्रकार से अहंता की पूर्ण

विस्मृति ही समर्पण है। ममता का यह दिशांतर है। सदोष-अदोष, अणुमहान् अंश-अंशी का मिलन ही ब्रह्म संबंध या दीक्षा की चरम परिणति है। इस मिलन की भूमिका में 'अणु' का 'महान्' से विरह (=व्युच्चरण) है। इसलिए 'समर्पण' के साथ-साथ विरहानुभूति जन्य 'ताप' की याचना भी दीक्षा के क्षण में सम्मिलित है। भक्त की इस मानसिकता में मंत्र बीज का बपन किया जाता है। मंत्र दो हैं: नाम मंत्र (अष्टाक्षर मंत्र) तथा शरणमंत्र। मंत्रदान के पश्चात् 'आसक्ति के लिए भाव-वस्तु प्रदान की जाती है। वल्लभ संप्रदाय में यह भाव-वस्तु 'भगवल्लीला' है।

इसी दीक्षाक्रम में सूर प्रविष्ट हुए। पहले नाम मंत्र–श्री कृष्ण:शरणं मम"—सुना! समर्पण दीक्षा भी संपन्न हुई। फिर दशमस्कंध की अनुक्रमणिका, 'सुबोधिनी' (=भागवत की टीका) और भागवत सार समुच्चय 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' के रूप में भाव-वस्तु का प्रसाद दिया। 'हौं हरि सब पतितन कौ नायक' और 'प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ' के स्वरों में व्याप्त हीनताजन्य विनय भाव का आचार्य जी ने निषेध करके कवि मानस का परिष्कार किया और आदेश दिया—'कछु भगवल्लीला वरनन कर।' और वार्ता के अनुसार, 'आचार्य जी ने तब पुरुषोत्तम सहस्र नाम सुनायौ। तब सूर कौं सम्पूर्ण भागवत की स्फुरना भई।' फिर स्थलीय प्रतीक का सान्निध्य हुआ। "अब जो श्री आचार्य जी महाप्रभु ब्रज कौं पाँव धारे सो प्रथम श्री गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य महाप्रभून के साथ सूरदास जी हू आये। तब श्री महाप्रभूजी अपने मुख सौं कह्यौ जो सूरदास जी श्री गोकुल कौ दरसन करौ, सो सूरदास जी ने श्री गोकुल कौं दंडवत करी।.... श्री गोकुल की बाललीला सूरदास जी के हृदय में फुरी। तब सूरदास जी ने बिचार कियौं मन में, जो श्रीं गोकुल की बाललीला कौ वर्णन करिकै श्री श्री आचार्य जी महाप्रभून के आगें सुनाइये।" और 'नवनीत प्रिया' (अर्चा विग्रह) के सामने यह पद उग पड़ा:

सोभित कर नवनीत लिये।

घुटुरन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।

\+ \+

धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख, का सत कल्प जिएँ।

तत्पश्चात् एक दूसरा अर्चा प्रतीक—श्री नाथजी : "श्री नाथजी द्वार । तब सूरदासजी सौं कह्यौ जो सूरदास....स्नान करिके श्री नाथ जी कौ दर्शन करि । तब सूरदासजी पर्वत ऊपर जाय के श्रीनाथ जी कौ दर्शन कियौ । तब आपनें कह्यौ जो सूरदासजी कछु श्रीनाथ जी को सुनावो ।" इस प्रकार 'दीक्षा' कवि मानस के परिष्कार का क्षण हैं । अवांछित वस्तु को धोकर, वांछित वस्तु की स्थापना ही मानसीय परिष्कार है ।

लगभग दीक्षा के द्वारा मानस परिष्कार का यही क्षण परमानंददासजी के साथ घटित हुआ ।[६] किन्तु ध्वलित (washed) वस्तु 'विनय' नहीं विरह थी । "महाप्रभु ने उन्हें भगवत लीलागान करने का आदेश दिया जिस पर परमानन्द दास ने कुछ विरह-परक पद गाये। महाप्रभू ने उन्हें बाललीला गान का आदेश दिया... ....तभी से परमानन्ददास जी ने बाललीला परक पद रचना प्रारंभ की ।[७]

इसी प्रकार का क्रम अन्य संप्रदायों के दीक्षा क्षण का भी समझना चाहिए : मंत्र→समर्पण→संकल्प→भाववस्तु→तदनुसार मानस परिष्कार→आदेश→प्रतीक सान्निध्य→साहित्य रचना । वल्लभ संप्रदाय के आचार्य ने 'भगवल्लीला' काव्य वस्तु के रूप में दीक्षित कवि मानस को प्रदान की ।

वस्तु संवेदन का तात्पर्य है—सर्जक का वस्तु से प्रथम ऐन्द्रिय सन्निकर्ष या चेतन संबंध । सर्जक का व्यक्तित्व जितना ही संस्कृत, परिष्कृत और सशक्त होगा, संवेदना उतनी ही विशिष्ट, विशद और नवीन अर्थवत्ता की संभावनाओं से पूर्ण होगी । जितनी तीव्रता के साथ वस्तु का संवेदन होगा, संवेद्य वस्तु, नवीन, मौलिक और सशक्त अर्थसंहतियाँ ग्रहण करती हुई, उतनी ही शक्ति के साथ संप्रेष्य बनेगी ।

३·२ : वस्तु का स्थानान्तरण

इस शीर्षक के अंतर्गत आचार्य मानस से कवि मानस में काव्य वस्तु के स्थानांतरण पर विचार किया गया है । इसी में वस्तु की प्रकृति भी समाविष्ट हो जाती है । यही स्थिति वस्तु की मानसीय अभिव्यंजना से भी संबंधित है ।

३.२१ वस्तु बीज : मंत्र—

सांप्रदायिक जीवन में 'मंत्र' की सत्ता केन्द्रीय है। आचार्य मानस और दीक्षित कविमानस का उत्तेजना केन्द्र मंत्र होता है। इस मंत्र की प्राप्ति अव्याख्येय चेतन परामानस, या अन्य किसी अतिमानवीय स्रोत से आचार्य मानस को होती है। आचार्य इस मंत्र का दार्शनिकीकरण, (भाष्य पर आधारित) भावन, (पुराण या साहित्य के आधार पर) और प्रतीकन (अर्चा विग्रह के सौन्दर्य-बोध के आधार पर) करता है। अर्चा विग्रह के चतुर्दिक 'अर्चा', 'पूजा' या 'सेवा' की भावात्मक संरचना घटित होती है, जो समग्र मानसीय वस्तु को व्यवहार्य बनाती है। सेवा भाव के संदर्भीकरण के लिए जो वस्तु संरचना परिकल्पित होती है, वही कविमानस में काव्यवस्तु के रूप में स्थानांतरित होती है।[८] 'दीक्षा' वस्तु के स्थानांतरण की पद्धति है। यदि भारतीय शब्दावली का प्रयोग करें तो मंत्र की मूल स्थिति परा, उसकी मानसिक स्थिति पश्यंती तथा उसका वास्तवी संदर्भीकरण वैखरी की स्थितियों की सूचना देते हैं।

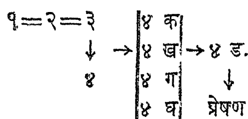
३.२२ मंत्र का भावात्मक संदर्भीकरण—

श्री लोकाचार्य जी ने 'सार संग्रह' में 'द्वय मंत्र' का स्पष्टीकरण किया है। मंत्र में दस सूत्र हैं, जिनमें से तीन विशेष रूप से ध्यातव्य हैं—ईश्वर लक्ष्मीपति और नारायण हैं, जीव को भगवान की कृपा की याचना करनी चाहिए, तथा लक्ष्मी के चरणों की पूजा, उपासना का प्रधान भाग है।

निंबार्काचार्य जी ने 'मंत्ररहस्य षोडशी' नामक ग्रंथ में 'गोपाल मंत्र' की व्याख्या की है। इस ग्रंथ की टीका सुंद भट्टाचार्य जी ने 'मंत्रार्थ रहस्य' नाम से की। इस मंत्र का बीज शब्द 'गोपाल' प्रतीत होता है। इसका गोपालकृष्ण की ब्रजलीला के रूप में संदर्भीकरण काव्यवस्तु है। उदाहरण के लिए निंबार्क संप्रदाय के वृन्दावनदेव-जी की 'गीतामृत गंगा' को लिया जा सकता है। इसका विषय विभाजन चौदह घाटों में किया गया है।

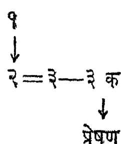
इस ग्रंथ के आरंभ में राधाकृष्ण का रसतात्त्विक निरूपण है: सच्चिदानंद भगवान =कृष्ण=रस; राधा=आह्लादिनी शक्ति, इन दोनों में वियोग नहीं होता :

परवर्ती रसिकों ने इस बात को अनेक प्रकार से कहा है[13] श्री हितहरिवंश जी ने स्वयं अपने किसी अन्य गुरू की बात नहीं कही और अपनी रचनाओं का आरंभ राधा संबंधी मंगलाचरण से किया है। इसका तात्पर्य यह है कि 'वस्तु' को मंत्र रूप में प्रदान करने वाली राधा इष्टदेवी भी हैं और आचार्या भी। इसलिए वस्तु ग्रहण का क्रम भिन्न हो गया।



१=अनाख्येय चेतना इष्ट देवी राधा ; २=परामानस रूप राधा (मंत्र-स्फुरण) ३=गुरु (आचार्या) मानस राधा (मंत्रदान); ४=हित हरिवंश ; ४ क= अचेतन या स्वगत प्रेरणा ; ४ ख=चेतन मंत्र (द्वादशाक्षर) ग्रहण; ४ ग=तत्व दर्शन (राधा सुधानिधि; ४ घ—मंत्र भावन ; ४ ङ.=काव्य वस्तु ; प्रेषण=हित चौरासी। संप्रदाय का आचार्य मंत्र का ग्रहण, बोध, और उसका भावन करते हुए 'मंत्र वस्तु' को स्वयं ही 'काव्य वस्तु'में भी परिणत कर देता है। इस प्रकार वस्तु का स्तरीकरण, विभाजन और विश्लेषण समाप्त हो जाता है और दार्शनिक वस्तु और काव्य वस्तु में अभेद स्थापित हो जाता है। वल्लभ संप्रदाय और निंबार्क संप्रदाय की भाँति मंत्र ग्राहक आचार्य मानस, और दीक्षित कवि मानस के बीच वस्तु—स्थानांतरण की प्रक्रिया अनावश्यक हो जाती है।

हरिदासी संप्रदाय में वस्तु ग्रहण की पद्धति कुछ भिन्न है। इस संप्रदाय की आचार्या ललिता है।[14] ललिता राधा की प्रमुख सखी है। संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हरिदास जी को ललिता का अवतार कहा जाता है—'प्रगट ललिता वपु धार्‌यौ'। युगल केलि का मर्म कथन ललिता से अधिक कोई नहीं कर सकता है : 'बिन श्री ललिता और बरन सकै को केली'—क्योंकि 'भोजन सैन बिहार करै ललिता की मोदी।' इसमें वस्तु ग्रहण अत्यन्त सरल और सीधा है।

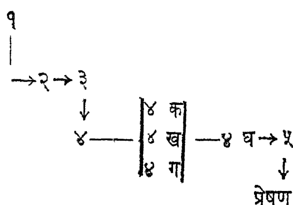


; १=अव्याख्येय चेतना (इष्ट युगल) ; २=परिकर की प्रमुख इकाई, ललिता : केलि अनुभव कर्त्री, मर्मज्ञा, व्याख्याता, आचार्या; ३=हरिदास जी : ललितावत अनुभव कर्ता ; ३ क=काव्यवस्तु ; प्रेषण=केलिमाल।

इस योजना में संप्रदाय का आचार्य कवि भी है। साथ ही मंत्र ग्रहण की आनुष्ठानिक औपचारिकता भी अत्यन्त शिथिल है।

ललित संप्रदाय की गुरु/आचार्या भी ललिता ही हैं।

निंबार्क संप्रदाय में वस्तु का स्थानांतरण मूलस्रोत से आचार्य मानस में सीधा नहीं होता : इनके बीच में अन्य कड़ियाँ भी हैं। इसमें स्थानांतरण का क्रम इस प्रकार है—



[१=अव्याख्येय चेतना (=हंसावतार); २=परामानस (=सनत्कुमार); ३=मुनिमानस (=नारद); ४=आचार्य मानस (=निंबार्क); ४ क=मंत्र का दार्शनिकीकरण (=ब्रह्मसूत्र भाष्य); ४ ख=मन्त्र का आनुष्ठानिक रूप (=मन्त्रसिद्धि); ४ ग=मन्त्र (गोपालमन्त्र) का रागात्मक संदर्भीकरण (=बालगोपाल, गोपीजनवल्लभ); ४ घ=संसृष्ट वस्तु; ५=दीक्षित मानस; प्रेषण=सांप्रदायिक काव्य]

परा, पश्यंती और वैखरी की व्यवस्था में इन स्थितियों को रखें, तो १=परास्थिति; २=पश्यंती; ३=पश्यंती→वैखरी; ४=वैखरी स्तर का विश्लेषणात्मक बोध; ५=वैखरी वाणी के स्तर का संश्लेषणात्मक भावन।

वस्तु का यह स्थानांतरण कुछ पेचीदा है।



संदर्भ संकेत

१—करी गोपाल की सब होइ।

जो अपनौ पुरुसारथ मानत अति झूठौ है सोइ। (सूरदास)

२—नि० ल० १।

३—गद्यात्मक मन्त्र जिसमें प्रभु को सर्व समर्पण पूर्वक भक्त अपने को भगवान का मान लेता है। मन्त्र अक्षरों की संख्या के आधार पर विविधि संप्रदायों में मिलते हैं।

४—अजहूँ सावधान किन होहि।

कृष्ण नाम सो मन्त्र सँजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ।

बार-बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुड़ी सुनायौ।

५—या में कहा घटैगौ तेरौ।

नन्दनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहै चेरौ।

सबै समर्पन 'सूर' स्याम कौं, यह साँचौ मत तेरौ।

६—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, कविवर परमानन्द दास, पृ० ३०।

७—वही। 'माई री कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना' और 'मनिमय आँगन नन्द के खेलत दोऊ भैया।'

८—'दीक्षा' की विधि के स्पष्टीकरण के लिए विविध संप्रदायों में ग्रन्थों की रचना हुई : निबार्काचार्य जी ने 'प्रपंच कल्पवल्ली' में शरणागति मन्त्र की व्याख्या भी की है और दीक्षा-प्रकरण भी दिया है। इसी संप्रदाय के वृन्दावन देव जी ने

'दीक्षा मङ्गल' ग्रन्थ की रचना की। वल्लभ संप्रदाय में 'ब्रह्म सम्बन्ध' नाम से दीक्षा-ग्रन्थ मिलता है।

९—श्रावण स्यामले पक्ष एकादश्यां महानिशि।
साक्षात् भगवता प्राक्तं तदक्षरशः उच्यते। [सिद्धान्त रहस्य, १]

१०- इतीदं द्वादश स्कंधं पुराणं हरिदेव सः [भागवतार्थ प्रकरण] पुराणं हरेः स्वरूपं शब्द तोऽर्थतश्च [गो० पुरुषोत्तम जी की व्याख्या] आगे इन्होंने कहा—'द्वादशो वै पुरुष इति श्रुतेः'—वह पुरुष द्वादशांग है। फिर द्वादशांग का परिगणन भी है [भागवत प्रकरण, १, श्लो० ७-१०]।

११—डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, ब्रह्म संबंध का स्वरूप एवं स्रोत, ज्ञानदा, ब्रज विशेषांक, (१·२), पृ० १६ (क)।

१२—एक दिवस सोवत सुख लह्यौ। श्रीराधे सुपने में कह्यौ।
द्वार तिहारे पीपर जो है। ऊँची डार सबन में सो है।
तामें अरुन पत्र इक न्यारौ। जामैं जुगल मंत्र है भारौ।
लेहु मंत्र तुम करहु प्रकास। रसिक जनन की पुजिवहु आस।

[उत्तमदास जी कृत, रसिकमाल]

१३—नागरीदास कृत अष्टक, (पृ० ११७) रूपलाल जी की वाणी, जतनलाल कृत, रसिक अनन्यसार (हस्तलिखित) चाचा वृन्दाबनदास कृत श्री हरिवंश सहस्रनाम।

१४—हरिदासजी ने अपनी कृति 'केलिमाल' (२५) में ललिता का नामोल्लेख किया है। —'आचारज ललिता सखी' जैसी उक्तियाँ मिलती हैं।

१५—श्रीगुरु ललिता रूपमम, तिनकौ नाम रटन्ता
पाठ सम्पत राधिका, श्री वृन्दाविपुन बसन्ता

[बंशी अलि, हृदय सर्वस्व, छन्द, २५]

गुरुः श्री ललिताज्ञेया सातु तस्या परा सखी

[वंशी अलि, श्रीराधा सिद्धान्तम्ः श्लो० ३]

४ / वस्तु भावन : कवि मानसीय व्यंजना

१. : वस्तु भावन–

वस्तुबोध या वस्तु ग्रहण के पश्चात् वस्तु भावन की स्थिति आती है। वस्तु का भावन सौन्दर्य बोध का भी प्रथम सोपान है। इसका तात्पर्य है, वस्तु के साथ कवि का रागात्मक सम्बन्ध। रागात्मक सम्बन्ध का निर्धारण उस दृष्टि पर निर्भर रहता है, जिससे वस्तु को अनुभव किया जाता है। कवि का समग्र व्यक्तित्व एक वृत्ति या दृष्टि में केन्द्रित हो जाता है। यह केन्द्रीकरण जितना ही सघन और आविष्ट होता है, व्यक्तित्व के अन्य तत्व उतने ही अधिक विस्मृत हो जाते हैं। वृत्तियों के इस आविष्ट केन्द्रीकरण को भक्ति साहित्य के सन्दर्भ में 'आसक्ति' का नाम दिया जाता है।[१] आसक्ति[२] जहाँ प्रेम परक ध्यान के केन्द्र को निश्चित करती है, वहाँ कवि के व्यक्तित्व और लिंग को भी रूपान्तरित करती है। इस नवोदित या पूर्णतः स्वीकृत व्यक्तित्व के आधार पर ही गृहीत वस्तु का भावन होता है।

लिंग-परिवर्तन, लीलादेह की प्राप्ति या व्यक्तित्व संक्रमण के वल भावस्तरीय प्रक्रियाएँ हैं। भक्ति के सभी संप्रदाय तथा उनसे संबद्ध कवि मात्र भाव जीवी थे। साधना, सेवा, तथा सृजन सब कुछ भावमय था[३]। सांप्रदायिक भक्त कवियों की भावनाएँ सेवक, रसिक, सखा और नारी रूप में मिलती है।

१·१ प्रकृत मानस पर मानसीय अध्यारोपण—

१·११ सेवक मानस—

भक्त कवि के दीक्षित मानस ने सेवा-चर्या में भी प्रवेश किया। सेवा की तीन सरणियाँ हैं : इष्ट विग्रह सेवा, गुरु सेवा और भागवत सेवा। ये सभी स्तर भावात्मक हैं। विग्रह सेवा का विस्तार तो 'अष्टयाम' तक हो गया। अर्थात् कोई क्षण ऐसा नहीं हो सकता, जब कि भक्त मानस सेवा भाव से मुक्त रह सके। 'अष्टयाम' सेवा भाव पर अनेक ग्रंथ लिखे गये[४]। इन सभी ग्रन्थों में सेवक-अर्चक के अष्टयाम व्यापी सेवा भाव में मग्न रहने का विधान है।

भक्ति और सेवा एक ही है। चित्त की प्रवणता ही सेवा है। मानसी सेवा ही सर्वोत्तम है। यही वल्लभ संप्रदाय की मान्यता है[५]। सेवा के सम्मुख मुक्ति भी फीकी लगती है[६]। सेवा भाव और सेवाक्रम का निश्चय सांप्रदायिक भावना के अनुसार होता है।

पुष्टि मार्ग में सेवा मुख्यतः वात्सल्य प्रेरित रहती है। आराध्य देव की संज्ञा मूर्ति नहीं 'स्वरूप' है। मर्यादा मार्ग में जहाँ स्वरूप का आवाहन—विसर्जन मंत्रादि के द्वारा होता है, वहाँ वल्लभ मार्ग में भावना ही मुख्य है। भावना को 'प्रीति' कहा जा सकता है—'प्रीतम प्रीति ही ते पैये' (गोविंद स्वामी) प्रीति की पराकाष्ठा वत्सलता है।

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में झाँकियाँ भावप्रेरित सेवा के प्रतीक-विंदु हैं। प्रातः मंगला, शृङ्गार, ग्वाल और राजभोग, तथा सायं उत्थापन, भोग, संध्या आरती तथा शयन, ये आठ झाँकियाँ होती हैं। "राजभोग के बाद जैसे ठाकुरजी गोचारन वन में पधारते, तब व्रजभक्त श्री ठाकुर जी के वियोग में वेणु गीत, युगल गीत गान करतीं, शाम को जब ठाकुर जी व्रज-भक्तों को सुखदानार्थ पीछे व्रज में पधारते तब व्रज भक्तें आनंद से दर्शन करतीं। वैसे ही पुष्टिमार्ग में सेवा समय सेवा दर्शन करें और अनोसर में श्री ठाकुरजी संबंधी क्लेश (वियोगार्ति) करें और इसी प्रकार शाम को श्री ठाकुर जी शयन पश्चात् शुद्ध मन करके रासलीला, मानलीला आदि मन से साधना करें, साक्षात् और परोक्ष दोनों समय के स्वरूप संवलित कर सेवा करें। सेवा के समय साक्षात्स्वरूप

की सेवा कर संयोग रस का अनुभव करें। अनोंसर में कुंज की लीला विचार-विचार कर वियोग रस स्वरूप का अनुभव करें। ....वैष्णव भगवत्सेवा में साक्षात् स्वरूपानंद अनुभव करें, उस समय सेवा संबंधी संयोग के कीर्तन करे और अनुभव करे और जब अनोंसर हों तब परोक्ष दशा जान विप्रयोग के कीर्तन (वेणुगीत, मंगलगीत, गोपिका गीत) अति आतुरता से (गान) करे। ....इस प्रकार संयोग-वियोग विचार सेवा करे[७] तो आगे भाव बढ़ें और प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रीति हो तब पुष्टिमार्गीय फल सिद्ध हो।" यही 'कीर्तन' प्रणाली है।

राधाबल्लभ संप्रदाय में केवल रस मार्गीय भक्ति की प्रतिष्ठा है। नवधा भक्ति के प्रति सांप्रदायिक मानस उदासीन है। भाव-भावित अष्टयाम सेवा का क्रम यह है: मंगला, शृङ्गार, राजभोग, उत्थापन, संध्या, शयन और शैया समय। इस समय विधान के साथ आरती और भोग का विधान है।

मंगला का समय—'द्वै घड़ी रात्रि रहै अरु द्वै घड़ी चढ़ै तक मंगला समय: श्रीजी के जागरण कराने के लिए सुन्दर 'सुरतांत' के पदों के गायन का विधान है। मंगला भोग के बाद श्रीजी प्रातः कालीन भ्रमण के लिए जाते हैं। वहाँ पुष्प चयन, शृंगार कन्दुक क्रीड़ा आदि करते हैं।

शृङ्गार का समय—'द्वै घड़ी दिन चढ़ै ते बारह घड़ी पर्यंत दिन चढ़ै तक शृङ्गार का समय'; दो घड़ी दिन चढ़े पाँछै श्री जोरीजू पुष्पवाटिका में बाग की रचना देखिवै को आवै। स्नानकुंज में स्नान; स्नानांतर शृङ्गार; धूप आरती; शृङ्गार भोग; शृङ्गार-सज्जा संबंधी पदों का गायन; सखियों के कौतुक—नृत्य, दर्पण-दर्शन, गान आदि। इन कृत्यों में पहले बंशी की, फिर प्रियाजी की, तत्पश्चात् लालजी की सेवा करनी चाहिए।

राजभोग का समय—"बारह घड़ी दिन चढ़े पीछे राजभोग समयौ लागै, छह घड़ी पाछिलौ दिवस रहै तब लगहै।" दोपहर के भोजन का समय; पदगायन द्वारा जोड़ी जी का मनोरंजन; भोजनोपरान्त कुछ देर चौपड़ आदि क्रीड़ाएँ, फिर विश्राम शयन; आरती पदों का गायन।

उत्थापन का समय—"छह घड़ी दिन पाछिले सौं' लेकर सायंकाल पर्यंत लौं संध्या समय है। उत्थापन के लिए वीणावादन आदि; स्वल्प भोजन; धूप आरती; फिर जोड़ी जी वन-बिहार को जावें, वहाँ पुष्प-चयन, कन्दुक-क्रीड़ा, नौका-बिहार, नृत्यगान आदि।

संध्या—वन-बिहार से लौटने पर; स्वल्प भोजन; फिर पदगायन; संध्या आरती; आरती के पद; आरती के बाद रासलीला; रासलीला अन्य समयों पर भी हो सकती है, पर इस समय आवश्यक है नृत्य, वाद्य, संगीत आदि भी।

शयन—"छह घड़ी रात्रि गये ताईं संध्या समय भयौ, ता पाछें शयन समय घडी दोय-दोय को है।" रात्रिकालीन भोजन; शयन आरती; श्री जी के शैया पर पधारने की भावना; फिर केलि-क्रीड़ा—मध्य रात्रि तक; हास्य विनोद आदि।

शैया—"आठ घड़ी रात्रि गये पाछै सेज्या समय—बिचारे, घड़ी बीस को सेज्या समय है।" हास-परिहास-क्रीड़ा से परिश्रान्त युगल, शैया भोग करते हैं (=अनौसीथी भोग) फिर मंगला तक निद्रामग्न।

बल्लभ संप्रदाय के सेवा-भाव से इस संप्रदाय की भाव-सेवा भिन्न है। इसमें 'युगल' की भावना रहती है; गोपी के स्थान पर सखियाँ हैं; इसमें विप्रयोग की पारिभाषिक स्थिति नहीं है। 'ग्वाल-गोपाल' भावना इसमें नहीं है।

इसी प्रकार अन्य संप्रदायों के विग्रहों की सेवा का विधान भाव-भावित है। आरम्भ में शुद्ध भावात्मक और मानसी सेवा की मान्यता रही। पीछे सेवा की शुद्ध भावना स्थूल औपचारिकताओं में विलीन होती गई।

१.१२ : भक्त > रसिक > कवि मानस—

भक्ति साहित्य के क्षेत्र में 'रसिक' शब्द धीरे-धीरे भक्त का स्थान लेता गया। जिस सम्प्रदाय में साध्याश्रित प्रगाढ़ मधुर भावना की एकान्त प्रतिष्ठा थी, उनको 'रसिक संप्रदाय' ही कहा जाने लगा था। इन संप्रदायों से संबंधित दीक्षित मानस भी 'रसिक' हैं।

उपनिषद् में एक क्रम मिलता है : असत् > सत् > सुकृत । सत् का अभिव्यक्त रूप ही 'सुकृत' है।[८] सुकृत ही 'रस' है।[९] इसी रस को आनन्द का मूल कहा गया है। इसी शब्द के आधार पर संभवत: निर्गुणियाँ और सगुण भक्तों को रसिक कहा गया। राधावल्लभी व्यास जी ने निर्गुणियों को भी रसिक परिवार का सदस्य कहा है।[१०] इस प्रकार 'रसिक' शब्द भक्ति संदर्भ का एक व्यापक शब्द है।

रसिक शब्द वैष्णव भक्ति के क्षेत्र का एक पारिभाषिक शब्द भी है। श्री संप्रदाय में भी यह शब्द प्रचलित था। वेदांत देशिकाचार्य की पुस्तक 'भगवद्ध्यान सोपान' में रंगनाथ के दरबार का वर्णन है।[१२] इस दरबार को उन्होंने 'रसिकों' से सेवित बतलाया है। रसिक शब्द यहाँ आल्वारों के लिए प्रयुक्त है। अर्चा-विग्रह के सम्मुख भावाविष्ट गुण-लीला-गान करने वाले आल्वारों के लिए 'रसिक' शब्द रूढ़ हो गया था।

इससे यह सिद्ध होता है कि 'रसिक' केवल रसाश्रय नहीं है। ऐसा रसाश्रय जो रसावेश को अपनी कुछ कलात्मक चेष्टाओं में ढालने के लिए विवश हो जाये, वही रसिक कहलाता था। सांख्य के इस कारणवाद से कि 'जिसमें रस हो, वही रसिक है' - यह सिद्धान्त विशिष्ट है। काव्य-शास्त्र में भी यह शब्द गृहीत हुआ। भोज के अनुसार 'सुसंस्कृत जन' (सभी मनुष्य नहीं) ही रसाश्रय या रसिक है। प्रस्तुत संदर्भ में, दिव्य रस में दीक्षित मानस ही 'रसिक' है। भोज ने आश्रयत्व रसिक की आत्मा को प्रदान किया है। प्रेक्षक, स्वयं कवि, कोई पात्र, उन्मुक्त और विस्तृत अहं से निर्गत काव्य, इनमें कोई भी रसिक संज्ञक हो सकता है।[१३] रस कहीं बाहर से नहीं आता वह रसिक की आत्मा से ही प्रकट होता है। सांख्य के 'सत्कार्यवाद' के अनुसार यदि रसिक में रस नहीं, तो प्रकट क्या होगा।

कृष्ण रसमय है; रसिक शिरोमणि है।[१४] शुकदेव जी ने इस रस कृष्ण का गायन किया है।[१५] यही रस-रसिक राधा के साथ वृन्दाबन बिहार करता है।[१६] इस रस की अनुभूति ज्ञानियों को नहीं हो सकती; केवल रसिक ही इसका अनुभव कर सकता है।[१७]

३.३१३ : कवि=सखा—

अष्टछाप के कवि का प्रकृत व्यक्तित्व स्तब्ध होकर कृष्ण-सखा के व्यक्तित्व के उदय को संभव बनाता है। यह कवि सख्यासक्ति के धरातल पर वस्तु का भावन करता है। इसलिए इस कवि का सांप्रदायिक नाम 'सखा' भी है : अष्ट छाप=अष्ट सखा। 'सखा' की आध्यात्मिक स्थिति है—श्रीनाथ जी के नित्य सहचर।[१८] लीला की दृष्टि से इन सखाओं का संबंध वन-लीला से है। लीला में भाग लेने के लिए इनकी प्रकृत भौतिक देह उपयुक्त नहीं। इसलिए इनको भगवल्लीलोपयोगी दिव्य देह प्राप्त रहती है। पुराणों में सखाओं की संख्या प्राय: दस मिलती है,[१९] तथापि इनमें से आरंभिक आठ को लेकर अष्ट सखाओं की रूढ़ि बनी। इन्हीं अष्ट सखाओं के व्यक्तित्व में अष्टछाप के कवियों का व्यक्तितत्व संक्रमित हुआ : सूर=कृष्ण-सखा; परमानन्द=तोक-सखा; कृष्णदास=रिषभ; छीत स्वामी=सुबल; कुम्भनदास=अर्जुन; चतुर्भुज दास=विशाल; नन्ददास=भोज; गोविन्द स्वामी=श्रीदामा।[२०] अष्ट सखाओं का प्राकट्य परिकर के रूप में गोवर्धन नाथ जी के साथ ही हुआ था। इन्हीं सखाओं ने अष्टछाप के रूप में प्रकट होकर लीला साहचर्य और लीला गान किया।[२१]

तात्पर्य यह कि अष्टछापी कवियों ने सखा रूप में संक्रमित होकर वनलीला-वस्तु का भावन किया। सख्यासक्ति इस सप्रदाय की रेखांकित विशेषता है।

वल्लभ संप्रदाय की भाँति चैतन्य संप्रदाय में भी सखा भावना का आरोप संप्रदाय के रसिकों पर किया गया : चैतन्य=कृष्ण; नित्यानंद=बलराम; अभिराम ठाकुर=श्रीदामा; सुंदरानंद=सुदामा; धनंजय पंडित=वसुदामा; गौरी दास पंडित=सुबल।

सखा भावाविष्ट वल्लभीय कवियों की काव्य-कृतियां सांप्रदायिक साधकों को मानसिक शांति प्रदान करती हैं। गर्ग संहिता में गिरिराज गोवर्धन की मानवाकार कल्पना मिलती है।[२२] यही गिरिराज की तलहटी कृष्ण की नित्य लीला भूमि है। 'देवदमन' श्रीनाथ जी का प्राकट्य भी इसी भूमि से हुआ था।[२३] इस निकुंज-स्थली के आठ द्वारों पर अष्ट सखा भौतिक रूप से स्थित रहकर भगवान की वनलीला

तथा नित्य सेवा में तत्पर रहते हैं। सखा भगवान की बाललीला के सखा हैं। सख्य भावना से मंडित सखाओं के व्यक्तित्व का आरोपण अष्टछापी कवियों पर किया गया। अथवा उन्होंने अपने प्रकृत व्यक्तित्व का विसर्जन करके अष्टसखाओं के व्यक्तित्व में प्रवेश किया। इसी व्यक्तित्व से भगवान की गोपाल लीला का भावन सिद्ध हुआ। अष्टसखाओं के आस-पास सांप्रदायिक पुराणीकरण का ताना-बाना भी बना।[२४] अष्टसखामय शृङ्गार भी श्रीनाथ जी का वर्णित है। इनके साहित्य से चित्त-निरोध होता है।[२५] भगवान की लीला में इनकी सेवा और इनके सहयोग के कथन मिलते हैं।[२६] श्रीनाथ जी के अंग-प्रत्यंग के रूप में भी इनकी भावना मिलती है।[२७] गिरिराज की तरहटी में इनके स्थान भी निश्चित थे।[२८] इन्हीं स्थानों पर इनकी भाव-साधना, स्थलीय संदर्भ की छाया में चलती थी।[२९]

१.१४ : कवि मानस : नारी मानस—

भक्ति कवि के चरित्र की तीन विशेषताएँ हैं : अशेष आत्म-समर्पण, कोमल-मधुर भावों की क्षमता और निष्काम तटस्थता।[३०] इसीलिए भक्ति परक रहस्य-वाद को नारी प्रकृति का धर्म कहा जाता है।[३१] इस मार्ग के आदर्श के अनुसार भक्त-कवि को चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, स्त्रीभाव में ही सन्निविष्ट होना पड़ता है। आल-वार रसिक कवि भी भावावेश के क्षणों में अपने को नारी भावना में लीन पाते हैं।[३२] प्रेमाभक्ति में कवि की वाणी प्रेममयी नारी की वाणी हो जाती है।[३३] गीता में इसी को 'परम भाव' नाम दिया गया है—'परमभावमजानन्तो।' और इसका दृष्टांत है—'योषाजारमिवप्रियम'। वल्लभाचार्य जी ने एक स्थान पर स्पष्ट रूप से कहा है कि निस्साधन भक्त केवल स्त्री भाव से ही भगवान का रसास्वादन कर सकता है।[३४]

स्त्रीभाव की पूर्ण प्राप्ति पुरुष भाव के मिटा देने पर ही संभव है। यही सच्चा सखीभाव होगा।[३५] गोपी भाव भी स्त्रीभाव ही हैं। 'गोपी का अर्थ है—'स्त्री भाव वाले भक्त।' हृदय प्राधान्य तत्त्व का नाम स्त्री है। अतः पूर्ण स्त्री भाव ही गोपी भाव है।[३६] पुरुष भाव के भंग और स्त्री भाव (=सखी भाव या गोपी भाव)

की स्वीकृति का सिद्धान्त वल्लभ संप्रदाय के भक्त कवि का मान्य है।[२७] निंबार्क संप्रदाय के भक्त कवि के अनुसार भी रसिक को प्रातःकाल उठते ही सखी भाव धारण करके सेवा में संलग्न होना चाहिए।[२८]

'मधुमय' उपासना के सन्दर्भ में स्त्री मानस की स्वीकृति बहुत पुराने समय से चली आ रही है।

आल्वार भक्तों के नाम भी स्त्रीलिंग में मिलते हैं। नाला यिरम् के भाष्य—कारों ने आल्वारों के स्त्रीलिंग नाम दिये हैं: नम्माल्वार=परांकुशनायकी, तिरुमंकइ-याल्वार=परंकालनायकी।

वंशीअलि जी के द्वारा प्रवर्तित 'ललित संप्रदाय' में ललिता सखी को गुरु और राधा से अभिन्न कहा गया है।[२९] युगल ललिता सहचरी के अंचल में ही विकसित है: युगल+ललिता=एक प्राण तीन मित्र (देह)।[३०] राधा और कृष्ण दोनों के मन में ललिता का नाम विद्यमान रहता है।[३१] ललितादिक अष्ट सखियों के नाम एवं जन्म-तिथियों का विवरण भी सांप्रदायिक साहित्य में मिलता है।[३२] उनके वस्त्राभरण का भी उल्लेख है।[३३] राधा, कृष्ण, ललिता, वृन्दाबन और सखी में तात्त्विक अभेद माना गया है।[३४] वर्षगाँठ आदि उत्सवों एवं जल विहार जैसी लीलाओं में स्वभाव के अनुसार सखियाँ रस लेती हैं।[३५]

सखी मानस का प्रवेश रामोपासक रसिक साधना में भी हुआ। इस क्षेत्र में स्वसुखी और तत्सुखी दोनों प्रकार की सखियों की मान्यता है। पहला प्रकार गोपी भाव के समीप है। सखी का परम काम्य है—राम सीता की केलि के सुख की प्राप्ति।[३६] अष्ट सखी, निकुंज रस (=महल माधुरी) आदि की मान्यता भी ज्यों की त्यों मिलती है।[३७] राम और सीता की सखियाँ अलग-अलग भी हैं।

रामभक्ति संप्रदाय की भाँति सखी मानस की मान्यता निर्गुण भक्ति संप्रदायों में भी हो गई। १८ वीं शती में, महात्मा श्याम चरण दास के द्वारा स्थापित शुक्र संप्रदाय का साहित्य इसका प्रमाण है। इस मत के अनुसार पुरुषोत्तम ब्रज में बिहार करते हैं।[३८] ये नित्य किशोर रूप में नित्य किशोरी राधा के साथ रासमंडल में केलि करते हैं।[३९] केलि के लिए अनेक कुंजें हैं।[४०] अविनाशी पुरुषोत्तम की बाँई ओर रूप राशि राधा विराजमान हैं।[४१] पाँच तत्वों और तीनों गुणों से न्यारी सखियाँ खम्भों के निकट होकर चँवर डुलाती रहती हैं। सभी नित्य किशोरी और सुसज्जित हैं।[४२] ये सदा सुहागिनें हैं और चूड़ी पहनती हैं।[४३] पुरुषोत्तम के धाम में सखा-भाव से पहुँचते

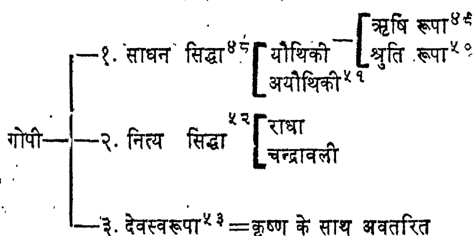
हैं एवं सखी भाव से भीतर प्रवेश होता है।[४४] इस प्रकार निर्गुण संप्रदाय की भावना भी कृष्ण की मधुर लीला की सखी परक संरचना में ढल गई। डा० देवी शंकर अवस्थी के अनुसार, "१८ वीं शती में संभवतः एक भी भक्ति संप्रदाय ऐसा न मिलेगा जिसके अनुयायियों ने सखी भाव की अभिव्यक्ति न की हो। परिणामस्वरूप १८ वीं शती का प्रेमाभक्ति साहित्य मुख्यतः सभी भावापन्न एवं निकुंज लीला का गान है।[४५]

इस प्रकार भक्त कवियों ने नारी मानस स्वीकार करके सृजन प्रक्रिया को अभिव्यंजना को दिशा प्रदान की। नारी मानस की स्थिति दो रूपों में मिलती है: गोपी मानस और सखी मानस।

गोपी मानस

गोपी मानस आद्यन्त कृष्ण प्रेम से आप्लावित है। उनके पंचेद्रिय-विषय कृष्ण केन्द्र पर विरुद्ध हैं। उनकी समग्र चेतना कृष्ण रूप से संसिक्त है। इसीलिए प्रेमाभक्ति साधना के आदर्श के रूप में गोपियों की एकान्त प्रतिष्ठा हुई: ब्रजदेवियों को 'तत्तद्भावेच्छामयी' रागानुगा भक्ति का चरमादर्श माना गया। इसी उपासना को वल्लभ संप्रदाय में पूर्ण स्वीकृति मिली और चैतन्य सम्प्रदाय ने इनकी ही रमणीय मधुरोपासना को प्रामाणिक कहा।[४६]

गोपी मानस की जो पौराणिक सरणियाँ मिलती हैं, उनसे विकास का एक क्रम परिलक्षित होता है। समस्त आध्यात्मिक मानस इस क्रम के अनुसार गोपी भावमय हो गया। ये सरणियाँ इस प्रकार व्यक्त की जा सकती हैं: वेद ऋचा>गोपी, देव>गोपी, लक्ष्मी>गोपी, ऋषि मुनि>गोपी, विविध क्षेत्रीय लोक मानस>गोपी। इस प्रकार मानस वह चमत्कारपूर्ण सरोवर है, जिसमें पड़कर सभी प्रकार की आध्यात्मिक साधनाएँ भावमयी हो जाती हैं। पौराणिक और साहित्यिक परम्परा के अनुसार गोपियों के तीन भेद किये जाते हैं[४७]:



पद्म पुराण के अनुसार गोपियाँ श्रुति रूपा, ऋषिजा, गोपकन्या और देवकन्या हैं।[५४] इस सांस्कृतिक और सामूहिक मानस के संक्रमण के प्रधान सूत्रों पर आगे संक्षेप में विचार किया गया है।

अ-श्रुति रूपा गोपियाँ : (वैयक्तिक गृहरास : स्वकीया भाव)

पौराणिक साहित्य में श्रुतियों के रूप होने के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।[५५] भक्ति संप्रदायों में भी यह मान्यता रही : वल्लभाचार्य जी ने भी गोपियों को श्रुति रूपा माना।[५६] विट्ठलनाथजी ने ऋचाओं के आग्रह पर ही कृष्ण के अवतार लेने और श्रुतियों के स्वयं अवतरित होने को लेकर एक संक्षिप्त कथासूत्र दिया है।[५७] बंगाली वैष्णवों ने ने भी वृहद् वामन पुराण की इस अवधारणा की उद्धरणी की है।[५८] इसी के आधार पर राधा वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने श्रुति रूपा गोपियों की अवधारणा को ग्रहण किया। ध्रुवदास ने गोपियों को श्रुति-कन्या कहा है।[५९] उन्होंने कान्ताभाव से कृष्ण का ध्यान किया और गोपी स्वरूप की प्राप्ति की।[६०] पुराण ने कथा सूत्र बनाया : श्रुति रूप गोपियाँ विष्णु के वर से ब्रजवासी गोपों के कुलों में उत्पन्न हुई। कृष्ण को पति रूप में वरण करने के लिए उन्होंने वृन्दावनेश्वरी वृन्दा देवी की आराधना की। वृन्दा देवी के वर से उनको अभीष्ट की प्राप्ति हुई। कृष्ण रास क्रीड़ा के लिए नित्य प्रति उनके घर जाने लगे।[६१]

सूरदास जी ने इसको एक कथात्मक रूपक बनाकर प्रस्तुत किया।[६२] पुराणों में गोपियों के श्रुति परक नाम भी मिलते हैं। जैसे गायत्री[६३] उद्गीता, सुगीता आदि।[६४] ब्रह्मा ने इन श्रुति रूपा गोपियों की महिमा भृगु से कही।[६५] गोपियों का प्रेम सभी श्रुतियों का सार है।[६६] इसी भाव का अनुसरण करके भृगु का ध्यान हरि-पद में लीन हुआ।[६७] इन्हीं श्रुति रूपा गोपियों के साथ कृष्ण ने विहार किया—

> सो स्रुति रूप होय ब्रज मंडल कीनों रास-बिहार।
> नवल कुंज में अंस बाहु धरि कीन्हीं केलि-अपार।[६८]

वल्लभ संप्रदाय में दो गोपियों का प्राधान्य मिलता है : राधा और चंद्राबली। राधा स्वकीया के रूप में प्रतिष्ठित है और चन्द्रावली, परकीया के रूप में। यही श्रुति रूपा भी है। वेद की ऋचाएँ बहुत से देवों को समर्पित होती रही हैं। अन्ततः कृष्ण/विष्णु में एक निष्ठ हो गईं।

आ- शिव>गोपी [वृन्दाबन का निकुञ्जरास : शरद्]

रासलीला में सम्मिलित होने के लिए स्वयं शिव ने गोपी रूप धारण किया।

पार्वती से अनुमति लेकर शिव वंशीबट पर पहुँचे। कृष्ण ने उनको "गोपीश्वर' नाम से संबोधित किया। शिव को गोपी-रास-रहस्य का ज्ञाता भी माना गया है। राधा कृष्ण युगल ध्यान का चरम रहस्य रास में उद्घाटित होता है, इस सम्बन्ध में शिव ने आसुरि ऋषि को उद्बुद्ध किया था।

आसुरि एक तपस्वी मुनि थे। वे नारद गिरि पर राधा-कृष्ण युगल में ध्यानस्थ होकर तपस्या करते थे। एक रात उनके ध्यान केन्द्र में युगल-प्रवेश नहीं हो सका। वे व्याकुल होकर कृष्ण राधा की खोज में बदरी खंड, (=नारायणाश्रम), लोक लोक पर्वत (=सहस्रसिर वाले अनन्तदेव का स्थान), श्वेत द्वीप (क्षीर सागर और शेष शैया वाला), बैकुण्ठ लोक (लक्ष्मी के साथ जहाँ विष्णु का निवास है), गोलोक (वृन्दा-वनीय निकुंज में रहने वाले परात्पर कृष्ण का निवास स्थान), ब्रह्मांड (जहाँ पृश्निगर्भ अवतार हुआ) लोकों को गये। पर कहीं इष्ट-दर्शन नहीं हुआ। तब वे कैलास पर्वत पर गये। वहाँ शिव श्रीकृष्ण में ध्यान-लीन मिले। महादेव जी रहस्योद्घाटन किया : वे तो वृन्दाबन सखियों के साथ रास कर रहे हैं। रात छः महीने की कर दी गई है और तब वे दोनों रास में सम्मिलित होने के लिए गये।[६९]

ये दोनों ब्रजमण्डल पहुँचे और वहाँ के दिव्य प्राकृतिक सौन्दर्य का उन्होंने दर्शन किया। बलिष्ट गोलोकवासिनी गोप सुन्दरियाँ हाथ में छड़ी लेकर रासमण्डल का पहरा दे रही थीं। द्वारपालिकाओं ने शिव और आसुरि को रोक दिया। उन्होंने बतलाया कि इस रास मंडल में कृष्ण ही एक मात्र पुरुष हैं। सारा वातावरण गोपी यूथों से भरा हुआ है। गोपियों के अतिरिक्त सभी का प्रवेश इसमें वर्जित है। उनके कहने से शिव और आसुरि ने मानसरोवर में स्नान किया : उनको गोपी देह और गोपी भाव की प्राप्ति हुई। इस रूप में उन्होंने रासमण्डल में प्रवेश किया : वंशीवट के पास, रासमंडल से मंडित-कालिंदी-पुलिन पर, निकुंज के समीप शिव और आसुरि गोपी रूप से निवास करते हैं।[७०]

अन्त देवी और देवों को भी गोपी रूप में, कृष्ण सेवा के लिए अवतरित कहा गया है।[७१] कृष्ण की दिव्य लीलाओं में भाग लेने की ये अधिकारिणी हैं।[७२]

इ- ऋषि-मुनि>गोपी [स्वकीया भाव]

बनवास के समय अरण्यवासी ऋषि मुनि राम के सौन्दर्य की ओर आकर्षित हुए। उन्होंने स्त्री रूप से राम के रूप के आस्वादन की आकांक्षा प्रकट की। राम ने कहा कि यदि योग शक्ति से तुम स्त्री भी बन जाओगे, तो भी मैं तुम्हें सन्तुष्ट नहीं कर

सकता क्योंकि मैं एक पत्नी व्रत हूँ।[73] जब मैं कृष्ण रूप में अवतरित हूँगा, तब तुम गोपी रूप से मेरा आलिंगन कर सकोगे।[74] इसी प्रकार अन्य ऋषि, मुनि आदि गोपी रूप में अवतरित हुए और कृष्ण ने उनकी संयोगाकांक्षा कृष्णावतार के समय पूर्ण की। पुराण परम्परा में इस सूत्र को विस्तृत कथात्मक रूप दिया गया। राम के वरदान से ऋषि स्त्री भाव में समाविष्ट होने में सक्षम हो गये। बंगाल के एक मंगल गोप की पाँच हजार पत्नियों के गर्भ में वे कन्या रूप से प्रविष्ट हुए। मंगल कन्याओं के विवाह की समस्या से व्याकुल रहने लगा। उसी समय मथुरा मंडल से जय नामक एक गोप आया। उसकी प्रेरणा से मंगल ने अपनी कन्याओं को नन्दराज के व्रज में भेज दिया। गो सेवा-निरत ये गोप कन्याएं कृष्ण के रूप से आकर्षित हुईं। यमुना जी की आराधना और उनके वरदान से कृष्ण प्रिया बनकर ये शारदीय रास में सम्मिलित हुईं।[75] ऋषि वस्तुतः श्रुति परम्परा से संबंधित चिंतक-साधक थे। उनका संक्रमण गोपियों में हुआ।

साधकों का दूसरा वर्ग तपस्वियों का है। अनेक तपस्वियों ने अपने तप से गोपी देह की प्राप्ति की। पद्म पुराण[76] में इस प्रकार के कथा सूत्र मिलते हैं। इस कथात्मक विवरण को इस प्रकार तालिकाबद्ध किया जा सकता है :

नाम	साधना	ध्यान-भाव
१. उग्रतपा[77]	अग्नि तप पंचदशाक्षर मंत्र जप— काम मंत्र का संपुट— 'कृष्णाय स्वाहा'	पीताम्बरधारी—मुरलीधर—रसोन्मत्त श्याम कृष्ण-नव यौवना प्रिया का हाथ पकड़कर खींच रहे हैं।—यह ध्यान सौ कल्पों तक किया।
२. सत्यतपा[78]	सूखे पत्ते खाकर तप किया—'रत्यंत-कामबीज' से संपुटित दशाक्षर मंत्र का जाप	चित्र वेशधारी हरि का ध्यान करते हुए शरीर छोड़ा।
३. हरिधामा[79]	घोर तपस्या—दिन में केवल एक पत्ता भोजन—'विंशत्यर्ण'	सुरम्य वृन्दावन में माधवी मंडप—उसमें स्थित श्रीकृष्ण—तीन कल्पों के पश्चात् गोपी देह की प्राप्ति।

	मंत्र का जाप किया—फिर दशाक्षर मंत्र का जाप	
४. जावालि (ब्रह्मवादी)[८०]	योगी से कृष्ण पूजा की विधि सीखी एक पैर से खड़े होकर दुष्कर तप	पतिभाव—श्रीकृष्ण विचित्र लीला परायण—ब्रज वीथियों में पद विन्यास से नूपुरध्वनि—अधरों से गोपियों का चुम्बन करते हुए—अनेक काम कलापों से ब्रजरामाओं का भोग करते हुए—नीबीबंधन को शिथिल करके ब्रज युवतियों का आलिंगन करते हुए—दिव्य माला और अम्बर धारण करने वाले—दिव्य गन्ध युक्त—श्यामल कान्ति वाले—त्रिलोक जयी।
५. शुचिश्रवा और सुवर्ण।[८१]	ऊर्ध्वपाद होकर तप किया—'ह्रीं हंस' के पुट से त्र्यक्षर मंत्र का जप	गोकुल में दस वर्ष के बालक, अनंग मोहक श्रीकृष्ण का ध्यान।
६. जटिल—जंघपूत—घृताशी—कबुं ऋषि।[८२]	जल में खड़े होकर तप किया।	पतिरूप में कृष्ण का भावन।
७. व्यास पुत्र शुक।[८३]	साधना की।	प्रिया रूप से कृष्ण का प्रिय रूप से भावन। कृष्णः "तुम मेरी प्रियतमा हो।"
८. चंद्र प्रभ राजर्षि के पुत्र चित्रध्वज (जन्म से वैष्णव)[८४]	अष्टादशाक्षर मंत्र उपासना	सुन्दरि-निषेवित श्रीकृष्ण, चुम्बन-आश्लेषादि का दर्शन—सलज्ज आनत मुख–तब कृष्ण ने सुन्दरियों को आदेश दिया कि उसे आत्म-स्वरूपवत् करलें–नाम चित्रकला–कृष्ण का उसके साथ विहार।

इसी प्रकार पुण्यश्रवा मुनि अन्त में लवंगा नामक गोपी हुए।[८५] अन्य विशेष व्यक्तियों के गोपी होने के सूत्र :

अर्जुन[८६]—	भगवान की रहस्य लीला के दर्शन की प्रार्थना—कृष्ण की आज्ञा से अधिष्ठात्री देवी की अर्चना।	दिव्य लोक की प्रतीति—सहस्त्रों सखियों की स्थिति—अर्जुन सखी हो गया—नित्य वृन्दाबन में युगल दर्शन। भगवान के पूर्ण संयोग रस की प्राप्ति। गोलोक का वर्णन।
नारद[८७]—	कृष्ण लीला के गोलोक धाम को देखने की इच्छा—सरोवर में स्नान करके गोपी रूप मिला।	सखियों के साथ गोलोक में परिचय—भगवान का नारद से रमण—कृष्ण ने उनका राधा से परिचय कराया—सरोवर में स्नान करके फिर नारद—गोलोक का विशद वर्णन।

सनकादिकों ने भी स्त्री (=गोपी) भाव से वासुदेव की उपासना की।[८८] इसी प्रकार के एक आसुरि ऋषि भी गोपी रूप से रास में सम्मिलित हुए थे।[८९] इस प्रकार गोपी-कल्पना में ऋषियों और मुनियों की विविध साधना—पद्धतियों के प्रेम-पद्धति में परिणत होने का सूत्र अन्तर्व्याप्त है।

वल्लभ संप्रदाय में ऋषि रूप गोपियों की मान्यता गुरु के रूप में है। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने जिस रास का वर्णन किया है, उसका वचन कृष्ण ने चीर हरण से सम्बन्धित गोपियों को दिया था।[९०] वल्लभाचार्य जी ने 'चीर हरण' की सुबोधिनी में इन गोपियों को दण्डकारण्य के उन ऋषियों से संबद्ध कहा है, जिनको राम ने गोपी रूप में अवतरित होने का वरदान दिया था। इनकी संख्या, पद्म पुराण के आधार पर सोलह सहस्र मानी गई है। इसी संख्या का 'सूर' ने प्रयोग किया है।

ये ऋषि रूप गोपियाँ प्रेमाभक्ति के मार्ग की गुरु बन गईं। इसकी प्रेरणा भागवत से ली गई है। ये प्रेम की ध्वजा हैं। इन्हीं का प्रेमभाव अनुकरणीय है।[९१] उद्धव प्रसंग में गोपियों के प्रेम की ही विजय घोषित है। उद्धव इन गोपियों को गुरु रूप में स्वीकार करता है। ब्रह्मा भी गोपी भाव का वरण करना चाहता है।[९२] ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञान और योग की साधनाओं को यही प्रेम-पद्धति निरस्त करती है।[९३] इस प्रकार विशुद्ध प्रेम की प्रतीक और उसके गुरु के रूप में, गोपी की प्रतिष्ठा वल्लभ संप्रदाय में मिलती है।

इसीलिए "अष्टछाप का सम्पूर्ण काव्य गोपी-महिमा से भरा पड़ा है। भ्रमर

गीत एवं रास पंचाध्यायी के प्रसंग गोपियों के प्रेम को अप्रतिम रूप से उज्ज्वल भूमिका में स्थापित कर देते हैं।"[९४]

ई—लक्ष्मी-सखी > गोपी—[माघ रास]

लक्ष्मी की आठ सखियों का उल्लेख मिलता है। जब लक्ष्मी असुरों को छोड़ कर इन्द्र के पास आती है, तो उसके साथ, जया, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजित, संनति तथा क्षमा ये आठ सहचरियाँ भी आती हैं।[९५] आगे इन सहचारियों की पुराण गाथा तैयार हुई।

नारायण के वरदान से लक्ष्मी की सखियाँ वृषभानुओं[९६] के यहाँ, कन्या रूप में उत्पन्न हुईं। इनमें रमा की बैकुण्ठवासिनी, समुद्र से उत्पन्न, अजित पद वासिनी, तथा ऊर्ध्व बैकुण्ठ निवासिनी सखियाँ थीं।[९७] इन्होंने कृष्ण की प्राप्ति के लिए **माघ मास का व्रत** किया। माघ शुक्ल पंचमी को कृष्ण तरुणयोगी के रूप में इनकी परीक्षा के लिए आए। सभी गोपियाँ इनकी ओर आकर्षित हुईं।[९८] इनके साथ कृष्ण ने **माघ मास में**, वृन्दाबन में रास किया।[९९] इन गोपियों के साथ बसन्त रास की सूचना मिलती है।

उ—यज्ञ सीता > गोपी—[मार्गशीर्ष रास]

दक्षिण दिशा के उशीनर देश में इन्द्र ने दस वर्ष तक वर्षा नहीं की। दैवी यातना से पीड़ित यहाँ के गोप ब्रजमंडल में आकर, वृन्दाबन में, यमुना तट पर रहने लगे। **श्रीराम** ने यज्ञ सीता को **वरदान** दिया था कि तुम गोपी रूप में अवतरित हो। ये गोपांगनाएँ इन्हीं गोपों के घर उत्पन्न हुईं—सभी दिव्यांगा, सभी दिव्य यौवना। कृष्ण के रूप को देखकर ये मुग्ध हो गईं। राधा के कहने पर, इन्होंने **एकादशी व्रत** करके, **मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा** की रात्रि को, कृष्ण के साथ रास किया।[१००]

ऊ—गोप कन्याएँ
देवांगना > गोपी—[माघ रास]

मालव देश के दिवस्पति नंद नामक गोप के एक सहस्र रानियाँ थीं। नन्द से दो योजन भूमि लेकर ये, गोकुल में रहने लगे थे। **देवल मुनि के आदेश** से देवांगनाएँ इन्हीं की कन्या के रूप में उत्पन्न हुईं।[१०१] इन्होंने माघमास का व्रत किया। सांख्य और योग का विचार त्याग कर, इन्होंने प्रेम रीति से कृष्ण को पाया।[१०२]

ए—जालंधरी गोपियाँ [जार भाव : चैत्र रास]

सप्तनदी के किनारे 'रंग पत्तन' नगर में रंगोत्रि नाम का बलवान गोप था।

धृतराष्ट्र को वह एक करोड़ मुद्राएँ कर-स्वरूप प्रतिवर्ष भेंट करता था। जब उसने कर देना बन्द कर दिया, तो कौरव सेना ने उसे पकड़ा। जब रंगोजि सामना न कर सका तो, कंस से सहायता माँगी। कंस ने दैत्यों की सेना लेकर कौरव सेना को पराजित किया और रंगोजि को अपने साथ मथुरा ले आया।[११३] कंस ने ब्रज की सीमा के 'बर्हिषद'[११४] पुर में उसे बसा दिया। जालंधर के अंतःपुर की स्त्रियाँ, **भगवान के वरदान** से, इसी गोप की रानियों के गर्भ से, गोप कन्याओं के रूप में अवतरित हुईं। इनका विवाह अन्य गोपों के साथ हो गया। इन्होंने जार के भाव से कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम करके, **चैत्रमास के महारास** में कृष्ण के साथ विहार किया।[११५]

ऐ—बर्हिष्मती वनिताएँ > गोपियाँ—[स्वकीया : मधु मास : झूलन रास]

ब्रज के शोणपुर[११६] के स्वामी नंद की पाँच हजार पत्नियों के गर्भ से ये गोप-कन्याएँ उत्पन्न हुईं :

मत्स्यावतार का वरदान	— लक्ष्मी की सखियाँ	— गोपकन्याएँ
पृथ्वी दोहन से प्राप्त	— औषधियाँ	— गोपकन्याएँ
पृथु का वरदान	— बर्हिष्मीनारियाँ	— गोपकन्याएँ (जातिस्मरा)
नरनारायण का वरदान	— अप्सराएँ	— गोपकन्याएँ
वामन का वरदान	— दैत्यनारियाँ	— गोपकन्याएँ
शेष का वर	— नागकन्याएँ	— गोपियाँ

इन्होंने **दुर्वासा की प्रेरणा** से **यमुना की पूजा** की और कृष्ण को वर रूप में प्राप्त किया। इसके साथ कृष्ण ने **मधुमास में झूलने** का उत्सव आरम्भ किया।[११७]

ओ-दिव्यादिव्य त्रिगुण वृत्तिमयी भूतल गोपियाँ [राधा की सखियाँ : होली रास]

ब्रज में नौ उपनंद थे।[११८] इनके यहाँ दिव्य, अदिव्य त्रिगुण वृत्तिमयी गोप कन्याएँ उत्पन्न हुईं। ये **राधा की सखियाँ** थीं। इन्होंने मानिनिराधा को मान छोड़कर कृष्ण के साथ बरसाने के **होलिकोत्सव** में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। कृष्ण की उन्होंने होली में खूब मरम्मत की।[११९]

औ—मैथिली गोप कन्याएँ > गोपियाँ—[शरद् रास : भागवदोक्त]

श्री राम के वरदान से, मैथिलियाँ नौ नंदों के घरों में उत्पन्न हुईं। इन्होंने कृष्ण की प्राप्ति के लिए मार्ग शीर्ष में कात्यायनी का व्रत किया। कात्यायनी का व्रत करने वाली ये गोपियाँ जब नग्न यमुना-स्नान कर रही थीं तब कृष्ण ने चीर-हरण किया। अन्त में कृष्ण ने रास में उनकी कामना को तृप्त करने का वचन दिया।[१२०]

५. कोसल प्रांतीय स्त्रियाँ>गोपियाँ [परकीया : परमहंसवृत्ति]

कोसल प्रांत की स्त्रियाँ भी राम के वरदान से ब्रज के नौ नंदों की कन्याओं के रूप में अवतरित हुईं। ब्रज के गोपजनों से उनका विवाह भी हो गया। उन्होंने कृष्ण से जार धर्म के अनुसार उत्तम, सुदृढ़ और सबसे अधिक प्रेम किया। कृष्ण उनके साथ सदा हास परिहास करते थे। ये गोप बालाएँ दधि बेचते समय 'कृष्ण लो, कृष्ण लो !' कहने लग जाती थीं। उन्हें सर्वत्र कृष्ण ही दृष्टिगोचर होते थे। प्रेमासक्त हो वे निकुञ्जों में घूमती रहती थीं। प्रेम के समस्त लक्षण और सात्त्विक भाव इनमें प्रकट होते थे।

इस प्रकार ये गोपांगनाएँ परमहंसों की अवस्था को पहुँच गईं। लाज और चिंता से ये मुक्त थीं। बलात् कृष्ण मुख का चुंबन भी कर लेती थीं। सारा लोक–व्यवहार और मर्यादा बोध समाप्त हो गया। ये केवल प्रेम भाव से भगवत्स्वरूप हो गईं थीं।[१२१]

६. अयोध्या की नारियाँ>गोपियाँ [स्वकीया : कामबन रास]

अयोध्या की स्त्रियों को राम, गोपी रूप में जन्म लेकर, प्रेम भोग का वरदान दे चुके थे। सिंधु देश के चंपका नगरी के राजा विमल की छः हजार वंध्या रानियों के गर्भ से, याज्ञवल्क्य के आशीर्वाद स्वरूप इन्होंने जन्म लिया। याज्ञवल्क्य की प्रेरणा से इन्हें कृष्णार्पित करने का भी संकल्प किया गया। उन्होंने दूत के द्वारा कृष्ण को आमंत्रित किया। विमल ने अपनी पुत्रियों को समर्पित करके कृष्ण का सारूप्य प्राप्त किया। कृष्ण ने इन प्रियाओं को कामबन में रख दिया। जितनी प्रियाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके कृष्ण उनके साथ विलास करते हुए विराजमान हुए। विमलकुमारियों के आनन्दाश्रुओं से विमलकुण्ड तीर्थ बना।[१२२]

७. पुलिंद कन्या>गोपियाँ

पुलिन्द (=कोल भील) जातियों की स्त्रियों को भी गोपी भाव प्राप्त हुआ। ये लोग विंध्य की घाटियों में निवास करते थे। ये योद्धा थे और केवल राजधन लूटते थे। विंध्य देश के राजा ने इनको घेरा। इन्होंने कंस से सहायता माँगी। कंस की आज्ञा से प्रलंब आया और उसने विंध्य नरेश को परास्त किया। पुंलिद मथुरा आये और कंस के सेवक हो गये। कामगिरि पर उन्होंने निवास किया। राम के वरदान से इन्हीं के घर पुलिंद स्त्रियाँ, लक्ष्मी की भाँति पूजित, गोपकन्याओं के रूप में अवतरित हुईं। कृष्ण प्रेम में निमग्न रहने वाली इन कन्याओं ने कृष्ण-रास में भाग लिया।[१२३]

गोपी मानस के विकासक्रम के इस सर्वेक्षण से गोपी मानस की संरचना स्पष्ट

हो जाती है। इस वृहद् संक्रमण के क्रम में ब्रजभाषा के कृष्ण भक्त कवियों का मानसीय संक्रमण आता है।

गोपी को वल्लभ संप्रदाय में प्रेम का आदर्श बतलाया गया है।[१२४] इस गोपी प्रेम ने ही ज्ञान और योग परक साधना को रागात्मक मोड़ दिया था। यह एक प्रकार से योग और सन्यास मार्ग के आडम्बर के लिए भावात्मक चुनौती बन गया।[१२५] दूसरी ओर गोपी-भक्ति ने वैधी और नवधा भक्ति को गौण बना दिया। भागवत के अनुसार भक्ति के क्षेत्र में गोपियों की सर्वोच्च स्थिति है।[१२६] वल्लभाचार्य जी के अनुसार गोपियाँ भक्ति मार्ग की गुरु हैं।[१२७] इन्हीं में प्रेम की पराकाष्ठा है।[१२८] भक्ति मार्गीय सन्यास का चरम आदर्श गोपियों में ही दिखलाई पड़ता है।[१२९] नारद ने भी गोपियों के प्रेम को आदर्श और अनुकरणीय कहा।[१३०]

कवि=सखी

यदि वल्लभ संप्रदाय के अष्टछापी कवियों ने वन लीलाओं के संपादन, आस्वादन और गायन के लिए अपने को 'सखा' रूप में भावित किया, तो नित्य निकुञ्ज लीलाओं के सन्दर्भ में प्रवेश के लिए अपने व्यक्तित्व को सखी के व्यक्तित्व में परिणत भी करना पड़ा।[१३१] सखी रूप में उनका भावित व्यक्तित्व यह बना :

अष्ट सखा	सखी रूप	लीलासक्ति
सूरदास	चंपकलता	मानलीला
कुम्भनदास	विशाखा	निकुञ्जलीला
परमानंद दास	चंद्रभागा	बाललीला
कृष्णदास	ललिता	रासलीला
गोविंद स्वामी	भामा	आँख मिचौनी
छीत स्वामी	पद्मा	जन्मलीला
चतुर्भुज दास	विमला	अन्नकूटलीला
नन्ददास	चंद्र रेखा	किशोरलीला

इस योजना के अनुसार सखी भाव में वात्सल्य और अन्नकूट जैसे सूत्रों का भी प्रवेश हो गया है। शुद्ध रसिक सम्प्रदायों में इन सूत्रों का अभाव मिलता है। निकुञ्ज, मान, रास और आँख मिचौनी रसिक संप्रदायों के समान हैं।

चैतन्य मत में सखी मानस को अंगीकार करने के लिए और भी विस्तार किया गया है :

नाम	अवस्था	वर्ण	वस्त्र वर्ण	निर्धारित सेवा
विशाखा	वर्ष महीने दिन १४— २ —१५	सौदामिनी जैसा		दंपति के वस्त्राभरण
ललिता	१४— ३ —१२	गोरोचन जैसा गहरा पीला	मोर पंख जैसा	पान बीड़ी निवेदित करना
चित्रा	१४— १ —१९	कश्मीरी (सैफरन)	काँच के समान श्वेत	व्यक्तित्व का शृङ्गार
इन्दुलेखा	१४— २ —१२	हरिताल : हलका पीला रङ्ग	हलका बैंगनी	अमृतस्व देना
चंपकलता	१४— २ —१४	चंपक : श्वेत-पीत		चँवर डुलाना
रंग देवी	१४— २ —८	कमल का पराग पीत-अरुण	गहरा लाल	चन्दन चर्चन
तुङ्ग विद्या	१४— २ —२०	केशरिया	हल्का पीला	संगीत : मनोरंजन
सुदेवी	१४— २ —८	कमल पराग पीतारुण	गहरा लाल	जल पिलाना

संप्रदाय के आठ स्तम्भों को सखियों के रूप में भावित किया गया है : रूप गोस्वामी=विशाखा; राय रामानंद=ललिता; वनमाली कविराज=चित्रा; कृष्ण दास ब्रह्मचारी=इन्दु लेखा; राघव गोस्वामी=चंपक लता; गदाधर भट्ट=रंगदेवी; प्रबोधा नंद=तुङ्ग विद्या; अनंताचार्य गोस्वामी=सुदेवी। इस परिकल्पना में स्वयं चैतन्य महाप्रभु राधा-महाभाव के रूप में भावित हुए।

वल्लभ संप्रदाय की सखियों से ये नाम भिन्न हैं। सभी सखियाँ चौदह और

पंद्रह वर्ष के बीच की हैं। सखियों का वर्ण गौर, पीत या अरुण हैं।

सखी के नाम और उसके व्यक्तित्व को ग्रहण करने की परिपाटी निंबार्क संप्रदाय में भी मिलती है। संप्रदाय के आचार्य/कवियों में से ४१ के नाम सखी या मंजरी के नाम पर हैं।[१३२] इस संप्रदाय में सखियों की रूढ़ संख्या आठ का भी बंधन नहीं है। सांप्रदायिक कवियों ने अपने काव्य में प्रायः अपना सखी नाम ही ज्ञापित किया है। संप्रदाय के आचार्यों को भी सखी नामों से ही संबोधित किया जाता है।

हरिदासी संप्रदाय का तो नाम ही सखी संप्रदाय है। केलिमाल में हरिदासी सखी का उल्लेख है[१३३] अर्थात् हरिदास=हरिदासी। सखी अन्य सखियों में से केवल ललिता का नामोल्लेख मिलता है।[१३४] वैसे संप्रदाय के अनुयायी कवि अपने नामों को सखी नाम की स्त्री लिंग संरचना में ढालते हैं। वल्लभ और चैतन्य संप्रदाय की भाँति कवियों पर सखियों के आरोपण की पूर्ण व्यवस्था इस संप्रदाय में नहीं मिलती।

राधावल्लभ संप्रदाय में सखियों की नामावली[१३५] वल्लभ संप्रदाय के अनुसार न होकर, चैतन्य संप्रदाय के समान है। इस संप्रदाय के रसिक/कवियों पर सखियों का विधिवत आरोपण नहीं हुआ। सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश जी को 'हित सखी' के रूप में मान्यता मिली। हित चौरासी के टीकाकार प्रेमदास जी ने उनकी एक कृपा-पात्र सखी 'नरवाहन सखी' का भी संकेत किया है।[१३६] वैसे सम्प्रदाय से सभी रसिक/कवि इस भावना से भावित मिलते हैं।

मानसीय संक्रमण की परम्परा में यदि सखी मानस की स्थिति को देखें, तो रस-ब्रह्म को समर्पित औपनिषदिक मानस और तंत्रीय मानस का संक्रमण सखी मानस के रूप में लक्षित होता है। वैसे तो सखी सम्प्रदाय से संबंधित विचारकों ने सखी मानस के संदर्भ में वेद की चर्चा भी की है[१३७] तथापि यह चर्चा औपचारिक ही प्रतीत होती है। वस्तुतः वेद-मानस का जितना साम्य गोपी मानस से है, उतना सखी मानस से नहीं।

औपनिषदिक ब्रह्म 'रस' है। वह अपने ही रस का आस्वादक बनना चाहता है।[१३८] इस आस्वादन की प्रक्रिया 'रमण' है। रमण अकेले नहीं हो सकता, इसीलिए परमात्मा ने अपने को द्विधा विभक्त किया।[१३९] रमण के संपादन में भोक्ता और भोग्य के अतिरिक्त 'प्रेरिता' तत्त्व भी आवश्यक है[१४०] जो क्रीड़ाशील की इच्छा शक्ति है। इसी प्रेरिता शक्ति का प्रतीक सखी है।[१४१] इस प्रकार रस-ब्रह्म की रस-रमण योजना का अनिवार्य तृतीय आयाम सखी है।

'बृहदारण्यक उपनिषद्' में ब्रह्मानंद की उपमा स्त्री-पुरुष के संभोगानंद से देकर, जीवात्मा और परमात्मा के मधुर मिलन से उत्पन्न होने वाली महासुख-दशा की भूरिशः मधुर उद्भावनाएँ की गई है।[१४२]

रस ब्रह्म के रमण में घटित इसी महासुख की दृश्य रूप में प्राप्ति सखी मानस का लक्ष्य है।

कुछ विद्वानों ने सखी मानस की संरचना में तांत्रिक सूत्रों की संघटना मानी है। अन्य विद्वान इसका निषेध भी करते है: 'हमारा मत है कि प्रेम तत्त्व पर आधृत सखी भाव तात्त्विक दृष्टि से तंत्र पद्धति से सर्वथा भिन्न उपासना हैं।'[१४३] आगे प्रभाव की कुछ स्वीकृति भी है—'हम कह सकते हैं कि तंत्रों की उपासना पद्धति से सखी भाव की उपासना पद्धति का कोई संबंध नहीं है, परन्तु, उपास्य के स्वरूप वर्णन क्षेत्र में दोनों में प्रभूत साम्य है।'[१४४]

इस संबंध में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि 'तंत्र' एक चिंतन पद्धति और साधना पद्धति है। शैव, शाक्त और वैष्णव शब्द साध्य के आधार पर रचित इसके विशेषण हैं। एक दार्शनिक पद्धति उपास्य की दृष्टि से कालक्रम में विशिष्ट होती गई। विकास की गति 'उग्र' के मृदुलीकरण की ओर हुई। उपासना पद्धति भी मृदुल हुई और भाव-पद्धति भी। मृदुलीकरण की प्रक्रिया ही वैष्णवीकरण की प्रक्रिया है। अनेक पूर्वागत तत्त्व वैष्णव संप्रदायों की भूमिका में है—यह असन्दिग्ध है। शक्ति तत्त्व का 'आह्लादिनी' शक्ति के रूप में विकास भी एक मृदुलीकरण ही है। इसी के अन्तर्गत 'प्रेम-राग' की सरणियाँ सन्निहित हैं। इस दृष्टि से शक्तिवाद का प्रच्छन्न प्रभाव सखी भाव पर मान लेना अनुचित और निराधार नहीं है।

वैष्णव तंत्रों में भी मंत्र, जप, तंत्र, ध्यान आदि का अभाव नहीं है। वैष्णवीकरण की प्रक्रिया में ध्यान-केन्द्र अधिक सौन्दर्यतात्त्विक और कलात्मक होता गया। कृष्ण, निकुञ्ज और लीला-परिकर का अत्यन्त सरस रूपायन हुआ। नामस्मरण, संकीर्तन, लीलापरक ध्यान, उपास्य का महामिलन, उससे स्फुटित महा भाव तथा महासुख कुछ ऐसे परिवर्तित रूप हैं, जिनमें उपासना पद्धति का रागात्मक संक्रमण स्पष्ट हो जाता है। सनत्कुमार संहिता में सखी भावापन्न श्रीधाम वृन्दावन ध्येय रूप में प्रतिष्ठित है। 'गौतमीय तंत्र' में सखियों के ध्यान, उनके स्वरूप एवं स्थानादि का जो विवरण मिलता है, उससे सखी समाज के अनेक उपासक कवि प्रभावित हुए हैं।[१४५] ऊर्ध्वाम्नाय तंत्र में 'राधा' को सारभूत कहा गया है।[१४६] रासोल्लास तंत्र में गोपी भाव भी मिलता है। 'श्यामा' तंत्र का एक पारिभाषिक शब्द भी है जो राधा-वाचक है। उपास्य का

युगल रूप भी तंत्रों की भावभूमि के अनुकूल ही है।[१४७] सम्मोहन तंत्र के अनुसार इस भाव की प्राप्ति के लिए सखी देह धारण की जाती थी।[१४८] गौतमीय तंत्र में भी सखी भाव से राधा कृष्ण की पूजा का विधान है।[१४९] रुद्रयामल में भी सखीभाव की उपासना पद्धति का विवरण है।[१५०]

इसके आधार पर कहा जा सकता है कि सखी भाव से उच्छलित कवि मानस तांत्रिक मानस का वैष्णवीय पद्धति से काव्यशास्त्रीय और काम शास्त्र के आधार पर हुआ मानसीय संक्रमण का परिणाम है। भौगोलिक दृष्टि से शक्तिवादी तांत्रिक सिद्धांतों का वैष्णवीकरण प्रबल रूप से पूर्वी भारत में हुआ। पहले यह संक्रमण बौद्ध तंत्र के रूप में मिलता है। इस प्रभाव से बौद्ध धर्म की आचार-प्रवणता, भाव प्रवणता में परिवर्तित हुई। संक्रमण का यह क्रम सिद्धों में होता हुआ, निर्गुणियाँ वैष्णवों तक तो अविच्छिन्न रूप से मिलता है, पर, सगुण वैष्णव साधना इस क्रम से कुछ कट कर विकसित हुई। यह वैष्णव तंत्रों से भी सीधे प्रभाव ग्रहण करने लगी। इसलिए शाक्त-शैव तंत्रों का प्रभाव अव्यक्त रूप से ही आया। ब्रजभूमि के मानस ने तांत्रिक मानस के सखी मानस में संक्रमण की यथार्थ प्रक्रियाओं का अनुभव नहीं किया। इसीलिए यह मानस चिंतन और साहित्य में शुद्ध प्रेमवादी तंत्र पर ही प्रतिष्ठित रहा। यद्यपि सखी भाव का नितांत अभाव दक्षिणांचल के भक्त-मानस में भी नहीं है—एक आचार्य ने आंडाल को लक्ष्मी की सखी बताया है[१५१]—तथापि इसका चरमोत्कर्ष पूर्वांचल और ब्रजभूमि के भक्त मानस में ही मिलता है।

३.३१५ लोक मानस

भक्ति संदर्भ की गति ज्ञान और योग के उच्च अनुशासनों से सरल मानस की ओर रही। ज्ञानी भक्त भी होते रहे और योगी भक्त भी, पर, अन्ततः भक्ति इन अनुशासनों से मुक्त होकर रही और स्वयं साध्य बन गई। दिग्विजय राग-भक्ति की हुई और राग भक्ति ने सरल से सरलतर मानस की खोज की। मुनि मानस ने अपने से निम्नतर, पर सरलतर मानस-स्तरों में संक्रमण किया।[१५२] इन स्तरों की विशेषता यह थी कि इनमें आदिम मानस के तत्त्व सजीव थे। गहरी और कठोर संस्कारिता ने जिन मानस तन्तुओं को निष्क्रिय और मौलिक संभावनाओं से हीन कर दिया था, वे आदिम मानस की भूमियों से नवीन रस, प्रेरणा और सामग्री ग्रहण करने लगे। आदिम मानस के संस्पर्शों ने सृजन-वृत्ति को जाग्रत कर दिया। भक्ति के सभी आचार्यों को मानस के इन्हीं आदिम स्तरों की खोज रही। किसी को ये स्तर आलवारों के भाव-विगलित प्रबन्धकों में मिले और किसी को सहजिया मार्ग के प्रेमोन्माद से उच्छलित साहित्य में।

शास्त्रानुशासनों से आहत व्यक्तित्व वाला मुनि जब शास्त्र छाया से अपेक्षाकृत मुक्त मानस-स्तरों पर उतरा, तो नवीन उत्तेजना-केन्द्र जगे। लोक मानस की उद्‌भावनाओं के माध्यम से प्रस्थानत्रयी की व्याख्या होने लगी। प्रस्थानत्रयी को लोक मानस ने एक नया जीवन दिया। शंकर ने बुद्धि की जिस उच्च साधना के साथ प्रस्थानत्रयी को जोड़ दिया था, वह बौद्धिक आयास चिंतन के जाड्य को तो एक सीमा तक झकझोर सका, पर व्याख्या की जीवन्त और अछूती प्रविधियाँ न दे सका। संभवतः भक्ति के आचार्यों ने पहली बार ज्ञान परक संस्कृति की परम्परा को लोक मानसीय व्याख्या भूमि प्रदान की। इस व्याख्या ने एक ओर तो समग्र ज्ञान-संपदा को जीवन-संदर्भों से जोड़ा, दूसरी ओर प्रसुप्त सृजन-चेतना को प्रबुप्त कर दिया।

लोक मानस की विजय यहाँ तक हुई कि लोक और वेद की अधीक्षक विधि-मर्यादाएँ अपनी प्रभाववत्ता खो बैठीं और ज्ञानी का चरम साध्य-कैवल्यमोक्ष उपेक्षित हो गया। यह उपेक्षा सहजशील लोक मानस की ही देन है। जब सब कुछ भावात्मक हो गया, तो आदिम मानस के राग-केन्द्रों से नवोदित मेधा का सम्पर्क हुआ। इन राग केन्द्रों की सघन भावाकुलता में लौकिक-अलौकिक का भेद तिरोहित हो गया। लौकिकता नितांत नवीन व्यंजना-प्रविधियों से अलौकिकता को दरसाने लगी। ये प्रविधियाँ न प्रतीकात्मक थीं और न रूपकात्मक। इन प्रविधियों में कुछ न कुछ द्वयता रहती है। इतनी भी द्वयता राग केन्द्रों को स्वीकार नहीं थी। समस्त दिध्यता आदिम लोक मानस से संपृक्त होकर रागारुण हो उठी। एक प्रकार से न तो लौकिक के उदात्तीकरण की पद्धति ही रही और न लौकिक को दिव्य संदर्भ ही प्रदान किया गया। हुआ यह कि दिव्य को लौकिक संदर्भ दिया गया। संक्रमण इतना पूर्ण और सृजनात्मक हुआ कि दिव्य लौकिक में घुलता चला गया। सारी संरचना लौकिक ही रही; केवल गहन संरचना में अलौकिक अर्थ-स्तर निविष्ट हो गये। इन स्तरों की प्राप्ति प्रतीकार्थ-बोध से नहीं, इसमें डुबकी मार कर ही हो सकती थी। जो अभिव्यक्ति लौकिक और अलौकिक के भेद को जितना ही मिटा सकी, वह उतनी ही लोक मानसीय आदिम विच्छित्तियों से अनुप्राणित मानी जानी चाहिए। इस प्रकार की प्राणवत्ता जितनी ही अधिक होती है, उतनी ही अभिव्यक्ति देश-काल-जयी होगी।

जब रागात्मिका भक्ति को लोक मानसीय संस्कारों से प्रेरित काव्यशास्त्रीय संरचना में ढाला जाने लगा, तब ऐसा लगने लगा, जैसे रस-भक्ति की सामग्री ब्रज में प्रभूत रूप में है। आभीर गुर्जर जातियों का आदिम मानस, कृषि युग की निश्चित मूल्य व्यवस्था के स्थान पर गतिशील गोपाल मूल्य व्यवस्था की प्रतिष्ठा—सब कुछ ब्रज में उभरने लगा। इन तत्त्वों ने भारत के सभी अंचलों में उभरने का प्रयत्न किया, पर

इनको अपने उन्मुक्त विकास-विलास के लिए इतना शून्यावकाश (वैक्यूम) नहीं मिला, जितना ब्रज में मिल सका। दक्षिण के अंचल में लोक मानसीय अभिव्यक्ति को स्वीकृति तो मिल गयी थी, किन्तु प्रस्थानत्रयी की ज्ञान परक भाष्य परम्परा और योग के तत्त्वों से अन्तर्बाह्य वातावरण भरा था। इसी प्रकार पूर्वी अंचल में शाक्त-तंत्र जाल सघन था। उत्तर-पश्चिम में शैवाचार प्रबल था। इन क्षेत्रों में भक्ति का लोक मानसीय संस्कार पूर्ण रूप से नहीं हो सका। बाहरी परिधियों पर जब वैक्यूम का अभाव था, तो ये तत्त्व केन्द्र के आसपास के वैक्यूम की ओर चलने लगे। काशी, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात में ज्ञान और योग की परम्पराएँ लोक मानसीय आघातों से अधिक आहत होने लगीं। ब्रज में यह वैक्यूम सबसे अधिक था। अतः यहाँ राग केन्द्रीय भक्ति भावना को मुक्त विकास के लिए पूर्ण अवकाश प्राप्त हुआ। इस वैक्यूम को सबसे अधिक वल्लभ संप्रदाय और चैतन्य संप्रदाय ने समझा। यही कारण है कि दोनों ही संप्रदायों में ब्रज की भावना बहुत व्यापक रही। बंगाली वैष्णव आचार्य भक्ति की चरम परिणति ब्रज में ही हो सकती है, ऐसी घोषणा करने लगा। समग्र भक्तिरस रस शास्त्रीय संरचना में आया और वह संरचना ब्रज के संदर्भों में ही चरितार्थ हुई।

इस भक्ति रस शास्त्र के लिए लक्ष्य साहित्य भागवत आदि पुराण तो रहे, पर मुख्य रूप से रससिक्त लोक साहित्य ही रहा होगा। चाहे वह लोक साहित्य सहजिया साहित्य के रूप में रहा हो, चाहे आभीर गुर्जर साहित्य के रूप में, इसी के आधार पर लक्षण साहित्य का निर्माण हुआ।[१५३]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पूर्वाचार्यों की नितांत बौद्धिक मानसीय संरचना के प्रति प्रतिक्रियाशील भक्त्याचार्य मानस, आगम, पुराण और लोक भाषा साहित्य के माध्यम से राग-प्रवण बना। राग प्रवणता ने आचार्य मानस को दार्शनिक वस्तु के अनुशीलन के लिए एक 'एप्रोच' दिया। इसी दृष्टि से दार्शनिक परंपरा का भावन किया गया। इसी भावन-प्रक्रिया ने दार्शनिक वस्तु को काव्य वस्तु में संक्रमित किया। यही संक्रमित काव्यवस्तु ब्रजभाषा के भक्ति साहित्य में पूर्ण यौवन के साथ प्रतिष्ठित है। कालांतर में शुद्ध भावभूमि की प्राण सत्ता को चर्या, आचार, सेवा और अभिव्यक्ति की शास्त्रीय औपचारिकताओं ने घेर लिया और शुद्ध काव्य की भूमि को संकुचित कर दिया। इसी संकुचित भूमि में रीतिकाल के भक्त कवियों, रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों की स्थिति माननी चाहिए। लोकमानस के उष्णस्पर्शों की जीवंतता, अभिजात रुचियों की शीतलता में विलीन होती चली गई।

संदर्भ संकेत

१—'लीला में चरम आसक्ति ही चरम प्रेम है।' डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, कविवर परमानंददास पृष्ठ १८४

२—रूपासक्ति लीलासक्ति, विप्रयोगासक्ति आदि।

३—सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो, व्रजाधिपः [चतुः श्लोकी, १] तथा 'भावोहि विद्यते देवः' जैसी उक्तियाँ मात्र रूढ़ि नहीं, सजीव प्रेरणा स्त्रोत हैं।

४—वल्लभ संप्रदाय में 'सेवा भावना' 'सेवा फलम्' जैसे ग्रन्थ मिलते हैं। अग्रदास जी ने 'अष्टयाम' की रचना की। राधावल्लभ सम्प्रदाय में 'सेवा विवेक' (सस्कृत, श्री वृन्दाबनदास जी कृत) सेवा विचार (व्रजलाल जी कृत) अष्टयाम (व्रजलाल जी की, चाचा हित वृन्दाबनदास जी की, कमलनयन जी की, श्री चन्द्रलाल जी की, इसी नाम की कृतियाँ हैं)

५—गोवर्धन नाथ शुक्ल, कविवर परमानंददास, पृष्ठ १३६

६—सेवा मदन गोपाल की मुक्तिहू ते मीठी। [परमानंददास]

८—नानालाल मुखिया, वल्लभ कुल की सेवा, ज्ञानदा (वर्ष १, अंक २) पृष्ठ २०

८—तैत्तिरीय उप० ब्रह्मानन्द वल्ली, २.७

९—यद्वैतस्सुकृतं रसोवैसः। वही

१०—इतनो है सब कुटुम हमारो।
सैना, धना, अरु नामा, पीपा और कबीर रैदास चमारो। [वासुदेव गोस्वामी, भक्त कवि व्यास जी, पृष्ठ १९६

११—भगवद्ध्यान सोपान, श्लोक १२

१२—"Evidently the Alvars are referred to here all of whom were greatly attracted by the Arca form of Lord Rang-

nath. Emotion of love (devotion) made them sing His Praise and so they are referred to here as rasikas."
[Subbu Reddiear, typed copy, P. 954]

१३—भोज, सरस्वती कंठाभरण, ५.३; शृंगार प्रकाश (सं. राघवन) पृष्ठ ४३३; पतंजलि ने (महाभाष्य, ५.२.९५) 'रसिकोनटः' कहा है। इनके लिए शौभिक और ग्रांथिक शब्द भी चलते थे।

१४—रसिक सिरोमनि नंदनंदन।
रसमै रूप अनूप विराजत, गोपवधू उरसीतल चन्दन [परमानन्द० ३१८]

१५—जो रस रसिक कीरमुनि गायौ [वही. ३१५]

१६—सो रस रसिक दास परमानन्द, वृखभानु सुता उरमाँझ समायो।
[वही, ३११]

१७—आनन्द सिंधु बढ्यौ हरि तन में।
ना परस्यौ करमठ अरु ज्ञानिनु, रह्यौ रसिकन के मन में।
[परमा० सं० ३१६]

१८—श्रीमद् भागवत में कृष्ण की वन लीलाओं के अनिवार्य सहचर सखा हैं [१०.१५.२०]

१९—वन लीलाओं के संदर्भ में सखाओं की संख्या दस भी मिलती है (भागवत, १०.२२.३१; गर्ग संहिता, वृन्दाबन खण्ड १२.१३-१६)

२०—हरिराय जी तथा द्वारकेश जी महाराज ने मूल सखाओं की भावना का आरोप अष्टछापी कवियों पर किया था।

२१—'जब श्री गोवर्धन नाथ जी प्रगट भए, तब अष्ट सखाहू भूमि में प्रगट भए। अष्टछाप रूप होय के सब लीला को गान करत भए।' (श्री गोवर्धननाथ जी की प्राकट्यवार्ता (नाथद्वारा विद्याभवन संस्करण) पृष्ठ ३१

२२—अन्नकूट का स्थान 'श्रङ्गार मंडल'=मुखारविंद; मानसी गंगा=नेत्र; चन्द्र सरोवर=नासिका; गोविंद कुण्ड=दोनों ओष्ठ; कृष्णकुण्ड=चिबुक; राधाकुण्ड=जिह्वा; ललिता सरोवर=कपोल; गोपाल कुण्ड=दोनों कान; कुसुम सरोवर=गंड स्थल; दंडौती शिला=ललाट; सिंदूरी शिला =मस्तक। [गर्ग संहिता, गिरिराजखण्ड, ४.२]

२३—वही ६.३०—३१

२४—द्रष्टव्य, अष्ट सखामृत, प्राणनाथ कवि, [सं० १७६७ की यह पुस्तक म्होटा मंदिर भूलेश्वर बम्बई में मौजूद है।]

२५—सूरदास=सिर पाग; कृष्णदास=मुकुटमणि; परमानन्द=ग्वालपगा; कुम्भनदास=कुल्हे सिर ताज; गोविंद स्वामी=टिपारे; चतुर्भुजदास=दुमाले; नन्ददास=फेंटा; छीतस्वामी=सेहरा [वैष्णवाह्निक पद; गो० गोपिकालंकार जी (=रसिकदास जी) और भी द्रष्टव्य 'अष्टसखा भावना'—श्री द्वारकेश जी रचित।

२६—जो जन अष्ट छाप गुन गावै।
चित निरोध होत ताही छिन हरिलीला दरसावै। [वही]

२७—कृष्णदास जी के वसन्तोत्सव वाले पद में अष्ट सखाओं का योगदान वर्णित है।

२८—सूर=वाणी; गोविंद=कमल नयन; परमानंद=श्रवण; चतुर्भुजदास=कर; कुम्भनदास=हृदय स्थल; छीतस्वामी=कटि भाग; नन्ददास=उदर; कृष्णदास=चरण [अष्ट सखान की भावना, संग्रह द्वारकेश जी]

२९—कृष्णदास बिलछूकुण्ड पर; नन्ददास मानसी गंगा पर; सूरदास, पारसौली में; कुम्भमदास, आन्यौर में, परमानन्ददास, सुरभी कुण्ड पर; गोविंद स्वामी, कंदमखण्डी ऐरावत कुण्ड पर; छीत स्वामी, अप्सरा कुण्ड पर; चतुर्भुजदास, सिंदूरी शिला रूदन कुण्ड में रहते थे। [अष्ट सखान की भावना, द्वारकेश जी]

३० डा० राधाकृष्णन, ईस्टर्न रिलीजन एन्ड वैस्टर्न थॉट (द्वितीय संस्करण) ग्रेट ब्रिटेन, १९४०, पृष्ठ ६५

३१—वही।

३२—"The Alvars........themselves as men but in the white heat of their passion for God, they lose themselves and sing in Pirattiyana tannmai i. e. as the lady love." [Dr. N. S, Reddiar, Religion and Philosophy of Nalayira Divya Prabandham, Typed Copy, P. 55.

३३—आचार्य हृदयम्, सूत्र ११८

३४—अतो हि भगवान कृष्ण: स्त्रीषुरेमेऽहर्निशम्। [सुबोधिनी, तामसफल, प्रकरण-४]

३५—उलटि लगे मन स्याम सौं प्रीया भाव ह्वै जाइ।
सखी भाव तब जानियै, पुरुष भाव मिटि जाइ।
पुरुष भाव छूटै नहीं मन में बसि रही जोइ।
सखी भाव तब जानियै, निर्विकार तन होइ।

[स्वा० रसिकदेव साखी-५]

३६—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, कविवर परमानन्द, पृष्ठ २११

३७—लगे जो श्री वृन्दाबन रंग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै, अरु विषयन को संग।
सखी भाव सहजहि होइ, सजनी, पुरुष भाव होइ भंग।
श्री राधावर सेवत सुमिरत, उपजत लहर तरंग।

[परमानंद दास और उनका साहित्य, पृष्ठ १४६ पर]

३८—प्रातःकाल ही उठि कै धारि सखी को भाव—

[महावाणी, सेवासुख, पृष्ठ २४]

३६—वंशी अलि जी, राधा सिद्धान्तम्, ४

४०—हृदय सर्वस्व, १५

४१—वही, १७

४२—राधा सिद्धान्तम् ७८-८०

४३—वही ४५-४६

४४—हृदय सर्वस्व, २६

४५—हृदय सर्वस्व, १०-१२

४६—कृपा निवास, पदावली, पृ० ४

४७—श्री प्रसाद प्रसाद करि, अष्ट सखी गुन गाय।
अलि निकास जिनकी मया, महल माधुर्य पाय।
रसिक अली जीवन यही ध्यावै रटै दिन रैन।
बिनु जुगल रस लीला लखे दिन पल हिये किमि चैन।

[रा० म० भ० उ० पृ० २२५, २४० पर उद्धृत]

४८—पुरुषोत्तम प्रभु लीलाधारी, वृन्दाबन में सखा बिहारी। [चरणदास, अमर लोक अखंड धाम वर्णन, पृष्ठ १७]

४६—चरणदास, ब्रजचरित्र वर्णन, पृष्ठ ७

५०—रसिक केलि एहु कुंज हैं। अमरलोक अखंड धाम वर्णन, पृष्ठ १८

५१—वही, पृष्ठ २१

५२—वही, पृष्ठ २२-२३

५३—सदा सुहागिनि पहिने चूरी, सुबक पछेली बंगरी रुरी,

[व्रजचरित्र वर्णन, पृष्ठ ६]

५४—सखा भाव पहुँचत यहि ठाँई, सखी भाव भीतर का जाई।
घेरे स्वरूप अनुपम भारी, सदा सुहागिनि हरि पिय प्यारी।
परम पुरुष पुरुषोत्तम पावें, निकट रहें नित केलि बढ़ावें।

[अमर लोक, अखंड धाम वर्णन, पृष्ठ १९]

ललित संप्रदाय में भी इसी प्रकार की मान्यता है कि सखियाँ राधा को अपना भर्ता मान कर ही अपने को सौभाग्यवती मानती हैं और सौभाग्य सूचक नथ, चूड़ा आदि पहनती हैं [वंशी अलि, राधा सिद्धान्तम्,४५-४६]

५५—ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति, उपसंहार, पृष्ठ ४६७

५६—डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुर रस (१), पृष्ठ १५९।

५७—S. K. De, Early History of the Vaishnava Faith and movement in Bengal (Calcutta, 1942) P. 156.

५८—तप साधना से जिन्हें सिद्धावस्था प्राप्त हुई है : 'तप तनु नारि बहुत स्रम कीन्हौ, सो फल पूरन दैन [सू० सा० १६२०] अति तप करति घोष कुमारि [वही १३९९]

५९—पद्म पुराण, उत्तर खंड, २४५.१६४-६५

६०—व्रज सुन्दरि नहिं नारि, रिचा श्रुति की सब आहीं (सू० सा० १७९३)

६१—गोपी यूथ की चर्चा मिलती है 'ब्रज बनिता सत जूथ मंडली (सू० सा० १७५४)

६२—ब्रह्मवैवर्त और पद्म पुराण में राधा और चन्द्रावली प्रधान गोपियाँ हैं।

६३—'गोकुल जन्म लेहु सँग मेरे, जो चाहत सुख कीन्हौं (सू० सा० ६२२; भागवत १०.१४.१)

६४—श्री रास पंचाध्यायी, सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३२

६५—पद्म पुराण (पाताल खंड), अध्याय ७७; वृहद्वामन पुराण; अग्नि पुराण (गर्ग संहिता) माधुर्य खंड १।५-६ आदि :

६६—सुबोधिनी, पृ० १८

६७—यह कथा विद्वनमंडन में आई है।

६८—उ० नी० म० पृष्ठ ६६, ६७ पर उद्धृत। (वम्बई, १९३२) गोपियों का औपनिषदी भेद भी है (वही)

६९—और तियन में गनहु जनि ये श्रुति कन्या आहि। (वृहद्वामन पुराण की भाषा, बयालीस लीला, पृष्ठ ४१)

७०—निगमनि सोच विचारि कें यह ठहराई चित्त।
भजन ताहि कौ कीजिए, इकरस रहै जो नित्त।
कामवासना बढ़ी उर, यह उपजी अति आइ।
खेलैं ऐसे रूप सँग, बनिता के तन पाइ। (वही)

७१—गर्ग संहिता माधुर्य० १।५-६

७२—प्रस्तुत प्रबन्ध, काव्य रूप वाला अध्याय। (पद, १७९३)

७३—ब्रह्मवैवर्त (कृष्ण जन्म०) ६।१४३, १४५

७४—पद्म० पुराण० (पाताल०) ७३/१०५-६

७५—गोपी पदरज महिमा, विधि भृगु सौं कही। सू० सा०, १७४३

७६—सर्व पुराननि सार, सार जो सर्व स्त्रुतनि कौ। वही

७७—तव भृग आदिक ऋषि सकल, रहे हरि पद चितलाइ। वही

७८—सू० सा० १३९३

७९—राधा रहस्य प्रकाशिका, संकलन, हंसदास, (वृन्दाबन) पृष्ठ ९

८०—गर्ग संहिता, वृन्दाबनखंड, २४ वाँ अध्याय।

८१—वही, अध्याय, २५

८२—भागवत १०/१४/११

८३—यदि यूयं योग शक्त्या स्त्रीत्वं भजन्तः, तथापि मम सत्य वाक् सत्य प्रतिज्ञापूर्वकभेकदार व्रतत्वात् (कृष्ण उपनिषद् १/२ परब्रह्मयोगीभाष्य)

८४—भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा भामालिंग्य। अन्येयेऽवतारास्ते हि गोपा नः स्त्रीश्च कुरु॥

अन्योन्य विग्रहं धार्यं तवाङ्ग स्पर्शनादिह ।
शश्वत्स्पर्शयिता स्माकं गृह्णीमोऽवतरा वयम् ।
रुद्रादीनां वचः श्रुत्वा प्रोवाच भगवान स्वयम् ।
अंगसंग करिष्यामि भवद्वाक्यं करोम्यहम् ।
(कृष्ण उप० १/२)

सुर: 'प्रति ऋषिरूप रामवरपायौ, हरि से प्रीतम पाय ।
चरन प्रसाद राधिका देवी, उन हरि कंठ लगाय । (सू० सा०)

८५—अग्नि पुराण, गर्ग संहिता, माधुर्य० अध्याय ३; उज्ज्वल नीलमणि (बंबई १६३२) पृष्ठ ६४ (टिप्पणी); हरिभक्ति रसामृत सिंधु, लहरी २; पद्म पुराण (उत्तरखंड) २४५।१६४,१६५

८६—पातालखंड, अध्याय ७२

८७—ये सुनंद नामक गोप की कन्या सुनंदा हुए (प० पुराण, पाताल०७२।१-६)

८८—ये सुभद्र गोप की भद्रा नामक कन्या हुई (वही, ७२/७,८, ११, १२, १३)

८९—ये रंग नामक गोप की रंगवेणी नामक कन्या हुई । [ये चित्रकर्म में निपुण हैं ।] (वही, पाताल ७२/१३-२०)

९०—नौ कल्पों के बाद, गोकुल में प्रचंड गोप की चित्रगंधा नाम्नी कन्या के रूप में जन्म (वही, पाताल०, ७२/२१-४४)

९१—ये दोनों कुशध्वज नामक ब्रह्मर्षि के पुत्र थे । ये दोनों सुवीर नामक गोप की कन्या हुए । (पद्म पुराण, पाताल० ७२।५५-५६)

९२—ये चारों तीन कल्प के उपरान्त, सुन्दर रमणियों के रूप में गोकुल में उत्पन्न हुए । (वही, ७२।६०-६४ ।

९३—वही, ७२।६६-७५

९४—कल्प के अन्त में वीरगुप्त गोप की चित्रकला नाम्नी कन्या के रूप में उत्पन्न हुए इनके कन्धों पर सप्त स्वर विभूषिता विपंची है ।
वही ७२।९५-१२६

९५—पद्म पुराण, पाताल, ७२।१२८-१५२

९६—समालोक्यार्जुनीयाऽसौमदाना वेश विह्वला ।
ततस्तां च तथाज्ञात्वा हृषीकेशोऽपि सर्ववित् ।
तस्याः पाणि गृहीत्वैव सर्वक्रीड़ा वनान्तरे ।

यथा कामं रहो रेमे महायोगेश्वरो विभ्रः ॥

पद्म पु० पाताल० ७४।१६०-१६१

इसमें 'अर्जुनी' के साथ वनांतर रमण का स्पष्ट उल्लेख है।

९७—पद्म पुराण पाताल० ७५।४०-५०

९८—महाकूर्म पुराण, हरिभक्ति रसामृत सिंधु, पूर्व विभाग, लहरी, २ में उद्धृत।

९९—सुबोधिनी, रास-पंचाध्यायी, फल प्रकरण, ३।२-५ में १६ प्रकार की गोपियों का उल्लेख है।

१००—परमानन्द दास, परमानंद सागर, पृष्ठ ८२५

१०१—ये हरि रस ओपी सब गोप-तियनते न्यारी।
कमल नयन गोविंद चन्द की प्रानहुँते प्यारी।
निरमत्सर जे संतत अहहि चूड़ामणि गोपी।
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी।
जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावे।
क्यों 'नहिं' परमानंद' प्रेम भगति सुख पावे। वही, पृष्ठ ८२६

१०२—परमानन्द सागर, पृ० ८२३

१०३—जो गोपिन की प्रेम न होतौ, अरु भागवत पुरान।
तौ सब औघड़ पंथहि होतौ, कथन गमैया ज्ञान। वही, पृष्ठ ८२४

१०४—डा० देवी शंकर अवस्थी, ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति, पृष्ठ २४०

१०५—महाभारत १२।२२८।८२

१०६—छः वृषभानु ये हैं : नीतिवित्, भार्गद, शुक्ल, पतंग, दिव्यवाहन तथा गोपेष्ट।

१०७—गर्ग संहिता, माधुर्य० ११।२-६

१०८—वही ११।१०-१२

१०९—वही ११।२३-२५

११०—विस्तार के लिए द्रष्टव्य, गर्ग संहिता अध्याय ८ और ९ (माधुर्य खंड)

१११—गर्ग संहिता, माधुर्य० १३।२-६

११२—वही १३।११-१४

११३—गर्ग संहिता (माधुर्य०) १४-१८-३१

११४—हो सकता है, यह बरहद का पूर्व रूप हो !

११५—गर्ग सं० (माधुर्य०) १४।३२-३६

११६—हो सकता है, इसका संबंध 'सोनहद' से हो !

११७—गर्ग संहिता, (माधुर्य०) १५।१-५)

११८—वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्बु, श्रीकर, गोपति, श्रुत, ब्रजेश, पावन तथा शान्त ।

११९—वही, अध्याय, १२

१२०—वही, अध्याय, ३

१२१—वही, अध्याय, ४

१२२—गर्ग० माधुर्य०, अध्याय, ५, ६ तथा ७

१२३—वही, अध्याय, १०

१२४—गोपी प्रेम की धुजा

जिन जगदीश किए बस अपने उर धरि स्याम भुजा । (परमानन्ददास)

१२५—जो गोपिन कौ प्रेम न होतौ, अरु भागवत पुरान ।
तो सब औघड़ पंथहि होतौ, कथत गमैया ज्ञान ।
बारह बरस कौ भयौ दिगंबर, ज्ञानहीन संन्यासी ।
खान-पान घर-घर सबहिन कै भस्म लगाय उदासी ।
पाखंड दंभ बढ्यौ कलियुग में श्रद्धा धर्म भयौ लोप ।
परमानन्ददास वेद पढ़ि बिगरे, का पै कीजै कोप ।

१२६—भागवत १०.२९.३१; १०.४६.४; १०.४७.५८; १०.४७.६२-६३

१२७—सन्यास निर्णय, ८

१२८—परिवृढाष्टक, ५

१२९—गायत्री भाष्य

१३०—यथा व्रज गोपिकानाम् । नारद भ० सू० २१ । १९ भी द्रष्टव्य ।

१३१—राधिका की शृङ्गार-सज्जा में निरत सहचरियों की चर्चा नित्य लीला में मिलती है।

१३२—डा० नारायण दत्त शर्मा, निंबार्क संप्रदाय और उसके कृष्ण भक्त कवि, (परिशिष्ट) पृ० १७३-१७८

१३३—केलिमाल, २५

१३४—वही ६४

१३५—इस पर पहले विचार किया जा चुका है (ब्रज का सांस्कृतिक संदर्भ) नामों के वर्णन के लिए द्रष्टव्य 'बयालीस लीला' (ध्रुवदास), रसानंद लीला, सभा मण्डल लीला और स्नेह मंजरी लीला।

१३६—द्रष्टव्य पद १२ की टीका।

१३७—वेदनि कह्यौ सो हम कियो, लोगन कौ मत छाँटि।
बिहारी दास अनन्य रस, कहत सभा में डाँटि। श्री बिहारिन दास की साखी ४२५

१३८—तैत्तिरीय उप० २.७

१३९—वृहदारण्यक उप० १.४.३

१४०—श्वेताश्वर उप० १.१२

१४१—डा० शरण बिहारी गोस्वामी, कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव, पृ० ५७

१४२—डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुर रस (२) पृ० ३६

१४३—डा० शरण बिहारी गोस्वामी, कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव, पृष्ठ १०८

१४४—वही।

१४५—ध्रुवदास जी ने (बयालीस लीला, वृन्दाबन, पृष्ठ १६६) सखियों के नाम इसी स्रोत से ग्रहण किये गये हैं।

१४६—इसका राधा सहस्र नाम द्रष्टव्य है।

१४७—कृष्णयामल में राधा कृष्ण युगल की पूजा का एक मात्र भाव सखी भाव ही माना गया है। (हंसदास, राधा रहस्य प्रकाशिका, वृन्दाबन, पृष्ठ ४)

१४८—वही ।

१४६—राधा कृष्णदास, रास सर्वस्व, पृष्ठ २६

१५०—डा० शरण बिहारी गोस्वामी, कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव, पृष्ठ ४२

१५१—तिरुक्मणी मंगैयाण्टान, ने आंडाल के सम्बन्ध में दो प्रशस्ति पद्य रचे हैं, उनमें यह संकेत मिलता है ।

१५२—कपिल, (सांख्य+योग→भक्ति) नारद और उद्धव के उदाहरण इस संक्रमण के प्रमाण हैं ।

१५३— मध्यकालीन कवि की लोक मानसीय संरचना पर डा० सत्येन्द्र ने 'मध्यकालीन साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन' ग्रन्थ में विस्तार से विचार किया है ।

● पृष्ठ १२६ से १३६ तक संदर्भ संकेत २७ से १०२ को क्रमशः ३७ से ११२ माना जाय ।



५ / गोपाल-गोपी केन्द्रीय वस्तु वैदिक सामग्री का संक्रमण

०. प्रास्ताविक :

पिछले अध्याय में वस्तु-व्यंजना के मानसीय स्तर पर विचार किया गया है। ब्रजभाषा काव्य के लिए मानसीय रूप से गृहीत और अभिव्यक्त वस्तु एक सुदीर्घ सांस्कृतिक संक्रमण का परिणाम है। संक्रमण और अवतरण प्राय: एक ही सांस्कृतिक प्रक्रिया की दो प्रविधियाँ हैं। संक्रमण प्राय: मानसीय स्तर पर, अर्थ, प्रतीक, विशेषण, क्रिया आदि के मानसीय रूपांतरण, बलाघात, विपर्यय जैसी प्रविधियों के द्वारा होता है। इसके विपरीत अवतरण कारण-कार्य मूलक लोक मानसीय कथा-सृष्टि के धरातल पर होता है। संसृष्टि, संक्रमण और अवतरण की प्रक्रिया को जोड़कर एक घनीभूत और जटिल वस्तु का विधान करने वाली प्रविधि है। सूर ने कृष्ण के संक्रमण और अवतरण दोनों की सूचना कृष्ण-परक वस्तु के आरम्भ में दी है। संक्रमण की सूचना उन्होंने एक मिश्र वाक्य की प्रणाली से दी है[१] :

जो →	शेष वाक्यांश	सो →	शेष वाक्यांश
जिसको	१. पूरन ब्रह्म पुरान बखानैं। चतुरानन, सिव अंत न जानैं। गुन-गन अगम निगम नहिं पावैं।	ताहि	१. ताहि जसोदा गोद खिलावै।
जिसको	२. एक निरन्तर ध्यावै ज्ञानी। पुरुष पुरातन (सो) निर्वानी। जप-तप-संजम-ध्यान न आवै।	सोइ	२. नन्द के आँगन धावै।

जिसके जो	३. लोचन स्रवन न रसना नासा। बिनु पदपानि करै परगासा। विस्वंभर निज नाम कहावै।	(सो)	३. घर घर गोरस सोइ चुरावै।
जिसका	४. सुक सारद से करत विचारा। नारद से पावहिं नहिं पारा। अबरन बस सुरति नहिं धारै।	सो	४. गोपिन के सो बदन निहारै।
जो जिसके	५. जरामरन तें रहित अमाया। मातु पिता सुत बंधु न जाया। ज्ञान रूप हिरदै में बोलै।	सो	५. बछरनि के पाछैं डोलै
जो जिसने	६. जल, धर, अनिल, अनल, नभ छाया। पंचतत्त्व ते जग उप- जाया। माया प्रगटि सकल जग मोहै। कारण करन करैसो सोहै। सिव समाधि जिहि अंत न पावै।	सोइ	६. गोप की गाय चरावैं।
जो	७. अच्युत रहै सदा जल साई। पर- मानंद परम सुखदाई। लोक, रचै, राखै अरु मारै।	सो	७. ग्वालिन संग सो लीला- धारै
जाके	८. काल डरै....डर मारी।	सो	८. ऊखल बाँध्यौ महँतारी
जिसके	९. गुन अतीत, अविगत न जनावै। जस अपार स्रुति पार न पावै। जाकी महिमा कह तन आवै।	सो	९. सो गोपिन संग रास रसावै।
जाकी	१०. लखै न कोई। निर्गुन सगुन धरै वपु सोई। चौदह भुवन पलक मैं में तारै।	सो	१०. बन बीथिन कुटी सँवारै
जिसके जो	११. चरन कमल नित रमा पलोवै। चाहति नैकु नैन भरि जोवै। अगम अगोचर लीलाधारी।	सो	११. राधा बस कुंज बिहारी
जा	१२. जा रस ब्रह्मादिक नहिं पावैं।	सो	१२. रस गोकुल गलिन बहावैं।

इस पद के विश्लेषण से वैदिक, औपनिषदिक और आगमीय वस्तु के 'माधुर्य' में संक्रमण की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। पुरुष, ब्रह्मा, परमात्मा परमदेव और पर विष्णु की संक्रमिति यशोदा कृष्ण, गोपाल, कृष्ण, गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण में होती है। इसमें देवकी कृष्ण, माथुर कृष्ण और द्वारका कृष्ण का संकेत भी नहीं है। इनका संबंध अवतरित वस्तु से है।

मुख्यतः यह संक्रमण 'गोपाल' केन्द्रीय काव्य वस्तु में परिलक्षित होता है। गोपाल केन्द्रीय वस्तु के दो ध्रुवान्त हैं : एक, गोपी रंजन और, दो, गो-गोपव्रज की रक्षा। इस वस्तु को सबसे अधिक प्रश्रय वल्लभ संप्रदाय ने दिया। इसके वैदिक स्रोत के प्रति इस संप्रदाय के आचार्य का मानस सजग-सचेतन था : 'यत्र-गावो भूरि श्रृङ्गा अयासः' जैसी श्रुतियों की व्याख्या वल्लभाचार्य जी ने गोपी परक ब्रजलीला के रूप में की[2] और ऋग्वेद की एक ऋचा (१०.११३.४) की देवदमन और असुर-विनाश परक ब्रज-गोकुल लीला के रूप में गो० बिट्ठलनाथ जी ने की।[3] चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों और कवियों ने भी गोपाल-केन्द्रीय वस्तु को ग्रहण किया और बल का स्थानांतरण गोपी केन्द्र पर होता गया। निंबार्क संप्रदाय में 'गोपाल मंत्र' का संदर्भीकरण इसी वस्तु के आधार पर चला और बल के स्थानांतरण की दिशा चैतन्य संप्रदाय के समान निर्धारित हुई। इस प्रकार ब्रजभाषा काव्य का संबंध गोपाल केन्द्रीय वस्तु से घनिष्ठ है।

१-गोपी केन्द्रीय वस्तु

इस शब्द को 'गो' से संबद्ध होकर अर्थ की एक दिशा मिलती है। 'गो' के अनेक अर्थ हैं।[4] इस पर आधारित 'गोप' शब्द के भी कई अर्थ हो जाते हैं।[5] रक्षा करने वाले के अर्थ में यह पहले इन्द्रवाची और पीछे विष्णुवाची और तदनन्तर कृष्णवाची भी हो गया। दूसरी ओर 'गोपालक' आभीर-गुर्जर जैसी जातियों के लिए भी यह शब्द चला।[6] गोप की स्त्रियाँ गोपियाँ हो गईं।

अर्थ की दूसरी दिशा √गुप्-धातु से इसका संबंध करके उद्घटित हुई, जिसका अर्थ है गुप्त या संरक्षित रखना। ये प्रेमानन्द रूप गूढ़ हर्षोल्लास और आनन्द को गुप्त रखती हैं। इसी की आध्यात्मिक अर्थ छाया के अनुसार—गोपी=माया जो ब्रह्म को समावृत करे।[7] इसी आधार पर रास का आध्यात्मिक प्रतीकार्थ सिद्ध होता है : श्रीकृष्ण (=चैतन्य)+गोपी (=माया विलास)=रास।

आभीर-गोप जाति की स्त्रियों के अर्थ में कृष्ण-जन्मोल्लास में निमग्न गोपियाँ स्थित हैं। माखन चोरी, चीर हरण, दानलीला जैसी प्रेम कथात्मक लीलाओं में आया

हुआ 'उपालम्भ' प्रकरण, हर्षोल्लास को गुप्त रखने वाली गोपी की चमत्कृति है। तीसरे अर्थ के आधार पर रास जैसी विलास लीलाओं के आध्यात्मिक अर्थ सिद्ध हुए। इन अर्थों के आधार पर गोपी-कृष्ण के संदर्भ विकसित हुए या गोपी-कृष्ण के सामान्य संदर्भों को सूक्ष्म अर्थ-सरणियां प्राप्त हुईं।

वल्लभ संप्रदाय में गोपियों के तीन रूप मान्य हैं :

ब्रजांगना	सामान्या	[यशोदा आदि]
गोपी	अनन्यपूर्वा	[अविवाहिता]
गोपांगना	अन्यपूर्वा	[विवाहिता]

इनमें से प्रथम रूप के संक्रमण का बीज-बिंदु वैदिक साहित्य में स्पष्ट नहीं है। शेष दो का बीज-विकास वैदिक साहित्य से हुआ। इस संक्रमण के मूल अभिप्राय ये हैं : प्राकृतिक शक्तियों के पति = इन्द्र > विष्णु > कृष्ण; विष्णु शक्तियों के अवतरित रूप = गोपियाँ तथा विष्णु स्त्रियों से अन्वीयमान हैं। संक्रमण प्रविधि स्थानांतरण या अध्यारोपण की है। एक दिव्य शक्ति के गुण वाचक विशेषण या नाम दूसरी शक्ति पर अध्यारोपित होते हुए चले गये। वैदिक देवताओं की प्रशस्ति परक स्तुतियों में प्रायः समान तत्त्व मिलते हैं।

इन्द्र > विष्णु, कृष्णः (= बहु प्रियात्व = गोपीनाथ)

वैदिक इन्द्र वृद्धि, समृद्धि, शक्ति, वनस्पति तथा उर्वरा शक्ति का देवता है।[८] मरुत, पर्जन्य, अग्नि और भग उसके सहकारी-सहचारी हैं। वह वज्र (= प्राकृतिक शक्ति) का प्रतीक है। अंकुश या वज्र के द्वारा वह समृद्धि देता है।[९] रूपक क्रिया में वह धरती का पति (= वृषभ) है[१०] : वह सीता (= कृषि या कर्षित भूमि) का भी पति है[११] : वह उर्वरा पति है।[१२] इस रूपक प्रक्रिया में जहाँ इन्द्र उर्वरा शक्ति का देवता बन जाता है, वहाँ उसका बहुप्रिया रूप भी प्रकट होता है। इसकी संक्रमिति विष्णु/कृष्ण में होती है। वेद में विष्णु को महान् कहा गया : इनसे बहुत सी स्त्रियाँ संबंद्ध हैं।[१३] इसी प्राकृतिक प्रतीक योजना में कृष्ण का 'गोपीनाथ' रूप सन्निहित है।[१४] गोपियाँ बहुत हैं। गोपी वार्ता का महत्त्वपूर्ण तत्त्व उनका बहुसंख्यक होना है।

आगम परम्परा में गोपी कृष्ण का संमूर्तन हुआ। गोपीनाथ कृष्ण 'गोपाल' की परवर्ती संक्रमिति है। वैखानस परम्परा में गोपीनाथ और उसके प्रादुर्भाव की विधि का उल्लेख मिलता है।[१५] भृगु संहिता में गोपी का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है पर कृष्ण के क्रीड़ा रस का संकेत अवश्य है।[१६] पांचरात्र परम्परा में गोपी का संकेत विस्तार ग्रहण

करता है। 'रासमण्डल मध्यस्थ' नृत्य मुद्रा से युक्त कृष्ण 'बहु साहस्त्र गोप कन्याभिरा वृतम्'[१७] तथा 'गोपी पुंजान्वित[१८]' है। बाल के अभिप्राय यौवन[१९] में विकसित होने लगते हैं। इस प्रकार पांचरात्र परम्परा में कांत कृष्ण की कल्पना परिपक्व होती चली गई।[२०] कृष्ण साक्षात् 'रसम्' ही हो गये।[२१]

कुछ पुराणों में गोपी कृष्ण की वार्ता प्रमुख हो गई।[२२] वैष्णव उपनिषदों में से कुछ की यही प्रवृत्ति है।[२३] साहित्य में गोपी कृष्ण की भावना समृद्ध हुई।[२४] इस धारा में कृष्ण के बाल्य, पौगण्ड' कैशोर, प्रौढ़ि से सम्बन्धित लीलाओं की समन्विति है।[२५] इस धारा के साहित्य में राधा का नाम यदि है भी तो एक विशेष गोपी के रूप में। दूसरी धारा में राधा-प्रधान पुराण और काव्य कृतियाँ आती हैं।[२६] महाभारत में कृष्ण को 'गोपी जनप्रिय' कहा गया है।[२७] यह कथन गोपी प्रधान साहित्य परम्परा में ही आता है।

गोपीकृष्ण का रसात्मक चरमबिंदु 'रास' में मिलता है। रास का संकेत पांच-रात्र साहित्य में ही मिलता है।[२८] गोपी प्रधान पुराणों में रास का पूर्ण विकास हुआ : इस विकास की पराकाष्ठा श्रीमद्भागवत की 'रास पंचाध्यायी' में मिलती है। पुराणों में गोपी तत्त्व के विकास के साथ रास के प्रकारों और गोपियों की संख्या और उसकी प्रतीकात्मकता का विकास होता चला गया।

१-२ कृष्णप्रिया गोपियाँ

गोपियाँ कृष्ण की नित्य कान्ताएँ हैं : जन्म-जन्म की प्रेयसियाँ हैं।[२९] गोपियों के अहैतुक कृष्ण प्रेम का विस्तार भागवत, गोपी परक पुराणों और साहित्य में मिलता है। कृष्ण सुख की इच्छा को सर्वोपरि और अपनी भोगेच्छा को गौण मान कर चलने वाली गोपियों के प्रेम और काम में अन्तर नहीं है। सर्वस्व त्याग कर अपने आपको समर्पित कर देना ही उनके प्रेम का आदर्श है।[३०] रास पूर्व प्रेम परीक्षा में गोपियों ने स्पष्ट बतला दिया कि कृष्ण ही हमारे सर्वस्व हैं।[३१] कृष्ण ने भी अंततः उनके प्रेम का मूल्यांकन करते हुए अपने को उनका ऋणी माना।[३२] इन्हीं तत्त्वों की विवृत्ति और चरम परिणति रास में मिलती है। रास में गोपियाँ जारभाव और पतिभाव दोनों को लेकर सम्मिलित हुईं। भागवत दशम स्कंध का पूर्वार्द्ध गोपी प्रेम के विस्तार और महत्वांकन के लिए ही नियोजित है। गोपी प्रेम उपासना के क्षेत्र में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गया था।

१-३ स्त्रियों से अन्वीयमान : विष्णु > कृष्ण : गोपियों की संख्या

विष्णु के साथ सैनिक नहीं हैं। वह स्त्रियों से अन्वीयमान कहा गया है।[३३] इस सूत्र का पुराणीकरण गोपियों की संख्या विस्तार के रूप में हुआ।

भागवत में गोपी यूथों की चर्चा है। फिर प्रधान गोपियों का संबध यूथों से जोड़ा गया। यूथ असंख्यता की ओर चलने लगे और प्रधान गोपियों की भी संख्या बढ़ती रही।

भागवत में एक ही प्रधान गोपी का उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त में यही प्रधान गोपी राधा है।[३४] इसके साथ एक और प्रधान गोपी चन्द्रावली उल्लिखित है।[३५] राधा को प्रधान मान कर आठ प्रधान गोपियों या सखियों की रूढ़ि भी चल पड़ी। इस आठ संख्या का आधार आठ प्रकृतियाँ हो सकती हैं।[३६] इसी आठ की संख्या का विस्तार सोलह, बत्तीस[३७], चौंसठ, सोलह हजार, सोलह हजार एक सौ आठ जैसी अष्ट परक संख्याओं में हुआ।[३८] काव्यशास्त्रीय परम्परा में भी आठ-परक संख्या हल्लीसक-रास की संरचना में मिलती है।[३९]

ब्रजभाषा साहित्य में 'अष्ट सखी' रूढ़ि का प्रचलन बहुत व्यापक है।[४०] गोपी यूथ की संख्या सूर ने सोलह सहस्र दी है।[४१] 'सहस-बीस-द्वादस' का संकेत भी एक स्थान पर मिलता है।[४२] पुराणों मे संख्या का विकास और अधिक हुआ : छत्तीस कोटि[४३], शत कोटि[४४], छत्तीस शत कोटि[४५] तथा अन्त में असंख्यताद्योतक 'कोटि कोटिश:[४६]' शब्द मिलते हैं। प्रत्येक प्रधान गोपी के साथ सहस्रों गोपियों का यूथ रहता था।[४७] ध्रुवदास जी ने असंख्यता का कथन रज कण, तारों, वर्षा की बूँदों के उपमानों से किया हैं।[४८] कुछ और सौन्दर्य तात्त्विक कथन सूर ने चन्द्र-किरण-समान कर किया है।[४९] गर्ग संहिता में गोपियों के प्रकारों और संख्या का विशद विवरण दिया गया है। पद्म पुराण में भी यूथ विस्तार की प्रवृत्ति मिलती है।

१-४ गोपी : कृष्ण शक्ति (=गोपी नाम)

कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में, कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति गोपियों के रूप में भी अभिव्यक्त होती हैं।[५०] इस प्रकार गोपियाँ भगवान की आनन्दात्मक शक्तियों की प्रतीक हैं। इच्छा शक्ति का भी प्रतीकत्व उनमें है। भगवान की ह्लादिनी शक्ति का संबंध माधुर्य गुण से होता है।[५१] वल्लभ संप्रदाय के अनुसार श्रिया, पुष्टि, गिरा, कात्या आदि द्वादश शक्तियाँ ही चन्द्रावली, राधा आदि के रूप में अवतरित होती हैं।[५२] इन शक्तियों में जो भाव तरंगित होते रहते हैं, वे ही अन्य सखी-सहचरियों के रूप में प्रकट

होते हैं। ब्रजभाषा साहित्य में शक्ति और शक्तिमान् की एकता को अभिव्यक्त किया गया है।

गोपियों के नामों की जो परम्परा मिलती है, उससे प्रकट होता है कि वे प्राकृतिक और सौन्दर्यमूलक शक्तियों की प्रतीक हैं। नामों के संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

भागवत में गोपियों के नाम प्रायः नहीं मिलते। जातिवाचक नाम और बहु-संख्यक यूथ का जिक्र उसमें मिलता है। एक विशिष्ट गोपी का भी नामोल्लेख नहीं है। जैसा कि अभी संकेत किया गया है, ब्रह्मवैवर्त में यह प्रधान गोपी राधा बन जाती है और दूसरी प्रधान गोपी चन्द्रावली। इसके अतिरिक्त बत्तीस अन्य प्रधान गोपियों का नामांकन मिलता है।[५३] इन नामों का वर्गीकरण रूप यह है :

१. गुणों पर आधारित नाम—सुशीला, शुभा, सर्व मंगला, नंदिनी।

२. रूप-सौन्दर्य परक नाम—चंद्रमुखी, पद्ममुखी, सुधामुखी, स्वयं प्रभा, सुन्दरी।

३. ऋतु, पुष्प परक नाम—माधवी, कदंब माला, पारिजाता, मधुमती, चंपा, चन्दना, पद्मा।

४. नदियों पर आधारित—यमुना, जान्हवी, गंगा।

५. प्रसिद्ध देवांगनाओं के नाम—गौरी, पद्मा, कालिका, कमला, दुर्गा, सरस्वती, भारती, अपर्णा, रति, सती, कृष्णप्रिया।

६. अन्य अंगनाएँ— कुन्ती, सावित्री, अंबिका।

चन्द्रावली नाम अलग से आया है।[५४] एक और स्थान पर इनके अतिरिक्त गायत्री, तुलसी, बसुन्धरा[५५], रोहिणी आदि भी हैं।[५६]

राधिका की अष्ट प्रकृतिरूपा आठ गोपियों की गणना भी मिलती है। राधा के सम्मुख ललिता, वायुकोंण में श्यामला, उत्तर में धन्या, ईशानकोंण में हरिप्रिया, पूर्व में विशाखा, अग्निकोंण में शैव्या, दक्षिण में पद्मा तथा नैऋत्य में चन्द्रावली।[५७] आठ नाम और जोड़ कर षोडश प्रकृति भी कहा गया है।[५८] रूप और गुण का विस्तृत वर्णन राधा और चन्द्रावली का ही है।[५९]

गोलोक दर्शन के समय अर्जुन को गोपियों का परिचय मिलता है। यहाँ की नामावली अधिक साहित्यिक है :

१. रस परक नाम—पूर्णरसा, रसमंथरा, रसालया, रसवल्लरी, रसपीयूष धारा, रसतरंगिणी, रसकल्लोलिनी, रसवापिका, रसविह्वला।

२. काम परक नाम[६०]—अनंग सेना, अनंग मालिनी, मदयंती, अनंग कुसुमा, मदन मंजरी, रतिकला, कामकला, कामदायिनी, रतिलीला, रत्युत्सुका, रतिसर्वस्वा, रतिचिंतामणि।

ललित्य परक—ललिता, ललित यौवना,

कला परक—कलावती।

आनन्द परक—नित्यानन्दा।

उपर्युक्त सभी गोपियाँ नित्य लीला विधात्री हैं। इनके अतिरिक्त कुछ गोपियाँ श्रुति परक हैं : उद्‌गीता, सुगीता कलगीता, कलसुरा आदि। कुछ मुनिगण गोपी रूप हैं : उग्रतपा=बहुगुणा गोपी; प्रियव्रत=सुव्रता गोपी; आदि।[६१]

ब्रह्मवैवर्त पुराण की गोपियों के नाम ब्रजभाषा काव्य में उल्लिखित नामों से इतना साम्य नहीं रखते, जितना कि पद्म पुराण के नाम। पद्म पुराण के नाम रस, काम, रति, सौन्दर्य परक तो हैं ही, श्रुति और मुनि परक भी हैं। नामावली का विकास क्रम दोनों पुराणों में परिलक्षित होता है।

१-५ विष्णु (=काम) और कृष्ण (गोपी रास)

विष्णु की भाँति काम भी उर्वराशक्ति का देवता है। श्रुति के अनुसार काम ही आदि जन्मा है।[६२] विष्णु पुराण के अनुसार[६३] वह धर्म और श्रद्धा का, महाभारत के अनुसार[६४] धर्म का और हरिवंश के अनुसार[६५] वह धर्म और लक्ष्मी का पुत्र है। वही काम कृष्ण और रुक्मिणी से प्रद्युम्न के रूप में अवतरित हुआ।[६६] प्रद्युम्न चतुर्व्यूह कल्पना में भी है : वह कृष्ण (वासुदेव) का ही एक रूप है।

ऐसा भी उल्लेख है कि विष्णु की पूजा रति के साथ होती थी।[६७] ऐसे ही सूत्रों के आधार पर काम और विष्णु/कृष्ण में अभेद कहा गया है।[६८] काम नाम से विष्णु की पूजा का विधान भी हुआ है[६९] और विष्णु का एक नाम भी काम हो गया। काम का एक नाम 'दमन' भी है।

पांचरात्र पद्धति में काम रूप कृष्ण का कथन मिलता है।[७०] ब्रजभाषा साहित्य में प्रयुक्त 'मदन मोहन' शब्द का मूल उत्स इसी कल्पना में प्रतीत होता है।[७१] 'मदन मोहन' नाम भी प्रतीक रूप में प्राप्त है। इस प्रकार कामदेव कृष्ण का संक्रमण

'मदन मोहन' में हुआ। पांचरात्र में मन्थन—मान्मथ[७२] की प्रवृत्ति इसी संक्रमण की ओर संकेत करती है। साहित्य में काम का समस्त परिकर कृष्ण के रूपायन में 'अप्रस्तुत' होगा।

शैव परम्परा में 'काम दहन' की जो गाथा थी वह काम मोहन के वैष्णव अभिप्राय में संक्रमित हो गई। रास-संदर्भ में कृष्ण 'मन्मथमन्मथ' हो गये। यदि काम दहन योग के 'शमन' का संदर्भीकरण है तो 'रास' उसके भोग परक। उन्नयन का वैष्णव परंपरा में भोग परक उन्नयन मान्य हुआ। कृष्णावतार को कामोन्नयन के सिद्धान्त से संबद्ध करके देखा जाता है। विष्णु की लैंगिक (=फैलिक) कल्पना कृष्ण में पुनरुज्जीवित हो उठी है। भक्ति के क्षेत्र में यही रूप प्रतिष्ठित हो गया।[७३]

इन्द्र+काम बनाम नारायण का सूत्र संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण है। योगाभ्यास में लीन नारायण की तपस्या को भंग करने के लिए, भयभीत इन्द्र ने काम को ससैन्य भेजा। बसन्त उद्दीपन का प्रसार हुआ। काम ने पंचबाण संधान किये। जब नारायण ने आँख खोली, तो सम्मुख स्थित काम को अभय किया—'तुव कुछ मन में भय मति करौ।' यह दोष इन्द्र का है: इन्द्र भी स्वर्ग के राज्य के जाने के भय से भीत है। तब नारायण ने एक-से-एक सुन्दर सहस्त्रों अप्सराएँ उत्पन्न कीं, जो इन्द्र की अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर थीं। काम ने नारायण की आज्ञानुसार, उर्वशी को उनमें से चुना और उसे जाकर इन्द्र को भेंट में दिया।[७४]

२-गोपाल-केन्द्रीय वस्तु

वल्लभ संप्रदाय के सूर प्रभृति कवियों ने बालगोपाल परक वस्तु को भावात्मक स्फीति प्रदान की है। बालगोपाल नवनीत प्रिय है, गोचारक है, गोपालक और गो-रक्षक है। इन अभिप्रायों का मूल संक्रमण-विंदु वैदिक साहित्य में मिल जाता है।

२.१ विष्णु>कृष्ण और 'गो' (>नवनीत)

कृष्ण वार्ता का अक्ष ही गाय हैं। सामान्य अर्थ-स्तर से प्रतीकात्मक अर्थ स्तर तक इस शब्द का विकास हुआ है। मानव विज्ञान और समाज विज्ञान की दृष्टि से यह तत्त्व भी उर्वरा शक्ति से संबद्ध है। उर्वरा शक्ति के देवता के रूप में विष्णु का पशुधन से घनिष्ठ संबंध है। यह संबंध ज्यों का त्यों कृष्ण में संक्रमित हो जाता है।

ब्रजभाषा साहित्य में गाय का स्वभावोक्ति स्तरीय सामान्य विवरण बहुत मिलता है। प्रातःकाल ग्वाल-बाल गाय चराने जाते थे[७५], दोपहर को गाय विश्राम

करती थीं और ग्वाल-बाल कलेवा करते थे[७६] तथा सायंकाल को ग्वाल उन्हें घर लाते थे।[७७] गाय गोपाल की यह चर्या वैदिक साहित्य में भी मिलती है।[७८] एक दण्डधारी ग्वाल गायों की रक्षा के लिए जाता था।[७९] दण्ड कमरियाधारी गोपाल कृष्ण ब्रज साहित्य में भी मूर्तिमान है।[८०] वेद में गायों के खोजने या चोरी जाने की आशंका प्रकट की गई है।[८१] ब्रजभाषा साहित्य में ब्रह्मा गायों की चोरी करता मिलता है।[८२] वेद में यदि गायों के बड़े गोल वर्णित हैं[८३], तो यहाँ नन्द बाबा के यहां लाखों गायें हैं।[८४] गायों के रंगों की भी गणना वेद में मिलती है: लाल (रोहित) श्वेत (शुक्ल) चितकबरी (प्रश्नि) और काले रंग की गायें थीं।[८५] ब्रजभाषा साहित्य में इससे भी लम्बी रंग-सूची मिलती है।[८६] रँभाने की ध्वनि का वर्णन वेद में रुचि पूर्वक किया गया है। कभी इसे वैदिक गानों के समान[८७] और कभी अप्सराओं के संगीत के समान[८८] बतलाया गया है। ब्रज साहित्य में भी इसके उल्लेख हैं।[८९] गायें तीन बार दुही जाती थीं: प्रातदोह, संगवदोह और सायंदोह।[९०] ब्रज साहित्य में गोदोहन प्रसंग बड़े जीवंत रूप मे मिलता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में गो-चर्या का विस्तार मिलता है। इसकी झलक ब्रज साहित्य में देखी जा सकती है।

वैदिक ऋषि पशुधन की वृद्धि के लिए देवों की प्रार्थना करता था।[९१] यशोदा पशुधन की वृद्धि और रक्षा के लिए इन्द्र की पूजा का अनुष्ठान करती है।[९२] वैदिक यज्ञानुष्ठान में भी गाय का महत्त्वपूर्ण स्थान बना।[९३]

वैदिक साहित्य में ही इस शब्द का अर्थ विकास होने लगा। इससे गाय से सम्बन्धित पदार्थों का भी बोध होने लगा।[९४] तारे, किरणें, पृथ्वी, वाणी आदि भी इससे द्योतित होने लगे।[९५] यह 'सोम' का पर्याय भी हो गया। 'सोम' गायों का उत्पादक भी है। इस प्रकार 'गो' के प्रतीकार्थ विकसित होने लगे।

गाय को आकाश और प्रजापति भी माना जाने लगा।[९६] 'शिपविष्ट' प्रजापति का ही एक नाम है। इसका तात्पर्य है—पशु का सहारा लेकर स्थित।[९७] इन मन्त्रों के पाठ से गोधन की प्राप्ति बतलाई गई है। प्रजापति विष्णु है। अतः वह भी शिपविष्ट है। गाय के सहारे स्थित कृष्ण चित्रकला का प्रमुख अभिप्राय बन गया। जब प्रजापति, अग्नि, इन्द्र आदि देवता मुक्त पशुओं पर अधिकार न कर सके, तब विष्णु ने यज्ञ-शक्ति से उनको अधिकृत किया।[९८] विष्णु का एक नाम संभवतः इसीलिए 'गोपति' हो गया।[९९] यह कृष्ण का भी नाम हैं। पीछे प्रतीकार्थ का विकास हुआ और विष्णु/कृष्ण को अनियंत्रित ऐन्द्रिय शक्ति का नियन्ता मान लिया गया। 'सूर' ने इस प्रतीक का प्रयोग किया है।[१००]

विष्णु का एक नाम 'गोहित' भी है।[१०१] वेद में विष्णु को 'गोप' भी कहा गया—'विष्णुर्गोपा अदाभ्य।'[१०२] 'गोप' का तात्पर्य है—गो-रक्षक या गोपालक।[१०३] इस रूप का पूर्ण संक्रमण 'गोपाल' (=कृष्ण) में मिलता है। ब्रजभाषा साहित्य का अधिकांश गोपालमय है। इस विकसित प्रतीक को सौन्दर्यमूलक या काव्यात्मक विस्तार देने में आभीर जैसी गोपालक जातियों की संस्कृति और उनके लोक साहित्य का योग-दान प्रायः सर्व स्वीकृत है।[१०४]

कृष्ण के गोपरक नामों में अर्थ विकास की दृष्टि से 'गोविंद'[१०५] का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गौ का अन्वेषक इन्द्र स्वयं, वैदिक साहित्य में इस नाम से अभिहित हैं।[१०६] कृष्ण भी गायों का अन्वेषक है। उपनिषद् के अनुसार गायों और वेदों के द्वारा ज्ञातव्य ही गोविन्द है।[१०७] इस व्याख्या में गाय ऋचा की प्रतीक है। पौराणिक व्युत्पत्ति के अनुसार पृथ्वी (=गो) के उद्धारक ही गोविंद हैं—'गां पृथ्वी विन्दति'[१०८] जब 'गो' का अर्थ 'ऋचा' हो गया तो, युगान्त के पश्चात् नवसृष्टि के आरम्भ में वेदोद्धार के कारण भी यह नाम निष्पन्न माना गया।[१०९] इस प्रकार : गो > ऋचा = वाणी = पृथ्वी, इन्द्रिय। भक्ति परक स्तोत्रों में स्वयं आकर्षित होकर भक्त के समीप आने वाला ही गोविंद है।[११०] कृष्ण में भी यह गुण विद्यमान है। परिजनों की बाधा के कारण जो गोपी रास में सम्मिलित होने के लिए नहीं आ सकी थी, उसके पास स्वयं कृष्ण आ गये।[१११] इस प्रकार उद्धार का अभिप्राय ऋचा, गाय और भक्त के साथ जुड़ गया।

कृष्ण का पालन-पोषण उस परिवार में हुआ जिसके पास प्रभूत गोधन था। गोधन के परिमाण के आधार पर सामाजिक श्रेणियों का निर्धारण होता था।[११२] जिसके पास अधिक पशुधन होता था वही 'श्रीमान्' कहा जाता था।[११३]

गोतत्त्व का सार रूप 'नवनीत' है। गोपाल कृष्ण यह कहते हुए मिलते हैं—

> मैया री मोहिं माखन भावै।
> जो मेवा पकवान कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै।[११४]

इन पंक्तियों में नवनीत प्रिय कृष्ण का बिंब उभर आता है। आगे चल कर माखन-चोरी और दानलीला जैसे प्रसंगों में नवनीत एक मुख्य अभिप्राय और प्रतीक बनता जाता है। वैदिक स्रोत से जहाँ 'गो' प्रतीक विकसित होकर ब्रजभाषा साहित्य में आया है, वहाँ नवनीत भी उसी स्रोत से आगत है।

वेद में विष्णु को 'घृत योनि' कहा गया है।[११५] विष्णु का निवास या आविर्भाव 'घी' में/से है। अन्य देवताओं का सम्बन्ध भी घी से माना गया है।[११६]

नवनीत या घी विष्णु हृदय, है ।[११७] नहीं, नवनीत विष्णु का स्वरूप-प्रतीक है ।[११८] जागतिक जीवन, जल और पौधों का यह सार तत्त्व है ।[११९] इसे बीज भी कहा गया है ।[१२०] इस प्रकार विष्णु और नवनीत एकाकार हुए। आगे इस प्रतीक का संक्रमण नवनीत कृष्ण में हुआ । पशु का सारभूत तत्त्व 'वसा' भी है ।[१२१] 'वसा' को श्री कहा गया है ।

वैखानस परंपरा में कृष्ण को 'नवनीत नट' कहा गया है ।[१२२] इनके सीधे हाथ में नवनीत बतलाया गया है और बाएँ को फैला हुआ कहा गया है ।[१२३] नवनीत कृष्ण को हर्षोत्फुल्ल लोचन और नर्तित भी कल्पित किया गया है ।[१२४] इसीलिऐ कृष्ण का नाम नवनीत नट है । इस रूप में वे आभरण-भूषित तो हैं, पर वस्त्र-रहित हैं ।[१२५]

नवनीत नट का रूप ज्यों का त्यों पांचरात्र परम्परा में भी उतर आया है । नारद ने 'नवनीत नटादीनि'[१२६] कह कर इस रूप की ओर संकेत किया है । नवनीत नृत्यों का भी उल्लेख है ।[१२७] वैखानस संहिताओं की अपेक्षा पांचरात्र संहिताओं में नवनीत-नट का विस्तार कम है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नवनीत-नट की कल्पना वैखानस परम्परा में अधिक लोकप्रिय रही ।

वैखानस परंपरा (मरीचि संहिता, पटल ५९) में नवनीत नट का संबंध देवकी से जोड़ा गया है—'नवनीत नट कृष्णं देवकी सुतं बालरूप' मिति नवनीत नटस्य' । आगे के साहित्य में यह रूप यशोदा-संदर्भ में प्रतिष्ठित हुआ ।

वल्लभ संप्रदाय में 'नवनीत प्रिय' कृष्ण की मान्यता रही । अनुश्रुति के अनुसार वल्लभाचार्य जी, सूरदास को पहले गोकुल में नवनीत प्रिया जी के सान्निध्य में ही ले गये थे । वहाँ उनके मुँह से यह पद फूट पड़ा था—

> 'शोभित कर नवनीत लिए ।
> घुटुरन चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेह किये ।'
> चारु कपोल, लोल लोचन गोरोचन तिलक दिएँ ।
> लट लटकानि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए ।[१२८]

गोपाल प्रधान पुराणों और उपनिषदों में 'नवनीत' प्रिय कृष्ण का प्रतीक विस्तार मिलता है । पांचरात्र में 'नंद नंदन'[१२९] तथा 'बालबपुष'[१३०] से बालकृष्ण का बोध होता है और इस रूप का संक्रमण 'नवनीत नट' में हो जाता है ।[१३१] चतुर्भुज कृष्ण का स्थानापन्न 'नवनीत नट' है । अतः इन दोनों की पूजा में विकल्प भी रखा गया ।[१३२] इसके पश्चात् गोपाल[१३३] तथा 'मदन गोप विलास वेशम्'[१३४] के बिंब

उभरते हुए मिलते हैं। 'नवनीतनट' का बिंब बालकृष्ण के नृत्य में प्रकट हैं। सूर में नवनीत नट की परंपरा समृद्ध हुई है।[१३५]

२.२ गोपाल : गोरक्षक

गोरक्षा सम्बन्धी कुछ शब्द-सूत्र वैदिक साहित्य में मिलते हैं। उनका संक्रमण कृष्ण की ब्रजस्थलीय देवदमन, और असुर-विनाश लीलाओं में होता है। इन पर आगे संक्षेप में विचार किया गया है।

२.३ विष्णु > कृष्ण : गिरि रूप

गोवर्धन धारण और इन्द्र-विजय कृष्ण परक कला और साहित्य का प्रमुख प्रतीक है।[१३६] सांप्रदायिक भावभूमि को ध्यान में रखते हुए, वल्लभ संप्रदाय के कवियों ने इसका बहुत अधिक विस्तार किया है।[१३७] इस संदर्भ में मुख्यतः तीन अभिप्राय अनुस्यूत हैं : इन्द्र के स्थान पर गो-गोवर्धन की लोक-पूजा की प्रतिष्ठा, पर्वत रूप विष्णु की मान्यता, तथा उद्धत प्राकृतिक शक्ति के प्रतीक इन्द्र का दमन। कृष्ण ने संदेश दिया—गो, गोचारण भूमि, पहाड़ियाँ और वन ही हमारे देव हैं। यह लोक-पूजा विधान है। इन्हीं सूत्रों का विकास पुराण और साहित्य में हुआ है। इनमें से प्रथम दो सूत्र एक दूसरे में सन्निविष्ट हो जाते हैं। दूसरा अभिप्राय गो-ब्रज रक्षा से संबद्ध है।

२.३१ आरोपण प्रविधि

विष्णु को पर्वत-वासी कहा गया है[१३८] : 'गिरिक्षित' तथा 'गिरिष्ठा' शब्द इसी के वाचक हैं। विष्णु को पर्वताधिपति भी कहा गया है।[१३९] पर्वत जल और वर्षा का स्रोत भी है।[१४०] इसी में पर्वत-पूजा का बीज और उसकी प्रेरणा है। आदिम जातियों में पर्वत पूजा प्रचलित थी और है।[१४१] पौराणिक दृष्टि से पर्वत विष्णु के 'तेजस्' हैं।[१४२] विष्णु ने वराह पर्वत का रूप धारण करके हिरणाक्ष का बध किया।[१४३] विष्णु ने अपने स्वरूप-सदृश पर्वतों की रचना की।[१४४] इस प्रकार पर्वत पूजा का संक्रमण विष्णु पूजा के रूप में हो गया। हो सकता है कि आदिम-पूजा विधान का पहले वैदिक साहित्य में ग्रहण हुआ हो,[१४५] और पीछे उसका पौराणिकीकरण हुआ हो।

विष्णु के साथ इन्द्र को भी पर्वतस्थ दिखलाया गया है :[१४६] किन्तु पर्वताधिपति के रूप में विष्णु की प्रतिष्ठा अधिक मान्य रही।[१४७] विष्णु का 'गिरिज' नाम यह सिद्ध करता है कि वह पर्वत से उत्पन्न हुआ।[१४८]

आगम परंपरा की वैखानस शाखा में प्रायः यह रूप अप्राप्य है।[149] उसमें कृष्ण के असंख्य रूपों की स्वीकृति अवश्य है, जिनका वर्णन संभव नहीं है।[150] पांचरात्र परम्परा में यह रूप प्रकट होता है। नारद ने इसकी ओर संकेत किया है। 'गोवर्धन धरादीनि कौमाराणि महामुने।[151]

पुराणों और साहित्य में गोवर्धन पूजा का तत्त्व प्रतिष्ठित है। वल्लभाचार्य जी ने गिरिराज की पूजा को स्वीकार किया। सूर के कृष्ण कहते हैं—'गिरि गोवर्धन देवन कौ मनि सेवहु ताकौं भोग चढ़ाई।[152] बलराम जी भी समर्थन करते हैं।[153] ब्रजवासियों ने देखा कि कृष्ण और गिरिराज में भेद नहीं है—'गिरिवर स्याम की अनुहारि।'[154] कृष्ण ने पर्वत रूप से गोपों की पूजा को स्वीकार किया।[155]

२.३२ गिरिधरण

मूल शक्ति में एक गुण या शक्ति है। वह शक्ति अन्य में संक्रमित हो गई। मूल शक्ति में उसका अभाव ही नहीं हुआ, अपितु, विरोधी गुणों को उसके साथ संबद्ध कर दिया गया। इस प्रविधि को स्थानांतरण की प्रविधि कहा जा सकता है। ब्रजभाषा साहित्य के कुछ संदर्भों से इस प्रविधि को उदाहृत किया जा सकता है:

१. 'यः अन्तरिक्षम् विऽममे वरीयः'[156] और 'यः द्याम् अस्तम्नात्।	इन्द्र	गिरिधर कृष्ण

इस संक्रमण में वृत्रहन्ता इन्द्र तो कृष्ण बन जाते हैं और वृत्र के आच्छादक या हिंसक कार्य इन्द्र में अध्यारोपित हो जाते हैं। इस प्रकार वृत्र-दमन, इन्द्र-मद-मर्दन का रूप धारण करता है। इस रूपांतरण का कारण पौराणिक उपासना-भाव हो सकता है।[157]

२.३३ इन्द्र का गो-ब्रज रक्षक के रूप में आह्वान।[158]	इन्द्र 'गोप'	कृष्ण गोपराज

जो इन्द्र गो-रक्षक था, वह गो-गोप-ब्रज के विनाश के लिए कुपित हो जाता है। गोप तो कृष्ण बन जाते हैं और गो-नाशक (=वृत्र आदि असुरों के गुण) इन्द्र बन जाता है। वेद में गो-हरण असुरों के द्वारा ही किया जाता है। कृष्ण वृत्त में ब्रह्मा भी गायों का अपहरण करता है।

इन्द्र के विशेषण का कृष्ण पर आरोपित हो जाना आरम्भिक प्रविधि थी:
पर्वतान् प्रऽकुपितान अरम्णात्।
यः अन्तरिक्षम विऽममे वरीयः [159] ।→गिरिधर इन्द्र > गिरिधर कृष्ण,
आगे वस्तु का स्थानांतरण हुआ।

२.५ कृष्ण और इन्द्र (संघर्ष)

कृष्ण संप्रदाय इन्द्र पूजा के विरुद्ध था। कृष्ण ने ही दैत्य-दानवों का हनन करके इन्द्र को सुरराज बनाया था।[१६०] इससे कृष्ण का गौरव प्रकट होता है। अदिति के कुण्डलों को चुराने वाले 'भौम नरक' को इन्द्र अभिभूत नहीं कर सका था। यह कार्य कृष्ण के द्वारा सिद्ध हुआ।[१६१] इससे भी इन्द्र का पराभव ही सिद्ध किया गया है। कृष्ण की कृपा से इन्द्र-संचालित देवों पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।[१६२]

पारिजात अपहरण की कथा के अन्त में इन्द्र को कृष्ण के सम्मुख नतमस्तक दिखलाया गया है।[१६३] पराजित इन्द्र का सत्यभामा उपहास करती है।[१६४] इन्द्र-वृत्त कथा की झलक कृष्ण की कालिय विजय और शंबर-बध में मिल जाती है।[१६५] इन्द्र-कृष्ण संघर्ष के बीज भी वैदिक साहित्य में लक्षित हैं। एक घन जैसे काले कृष्ण को इन्द्र ने अपने प्रिय 'हप्स' के हित के लिए नष्ट किया था।[१६६] पीछे वही कृष्ण इन्द्र पर विजयी हुआ। कृष्ण ने गोपों के बीच से इन्द्र की पूजा भी समाप्त कर दी और उसके स्थान पर 'पशु' और 'पर्वत' की लोकपूजा की पुनर्प्रतिष्ठा की।

इन्द्र दमन का प्रसंग ब्रज संदर्भ की गोवर्धन-धारण लीला में आया है। एक सूत्र द्वारका सन्दर्भ में भी घटित हुआ है। सत्यभामा की कल्पवृक्ष देखने की इच्छा और कल्पवृक्ष आनयन के साथ यह सूत्र संबद्ध है। जिस प्रकार कालिय नाग से कमल-पुष्प मँगवाए गये थे, उसी प्रकार इन्द्र से कल्पवृक्ष मँगवाया।[१६७] इन्द्र ने कृष्ण के चरणों में गिर कर अपनी विनय प्रकट की और रत्नकुण्डल देकर कृष्ण के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया।[१६८]

बलराम ने कृष्ण की अलौकिकता का वर्णन करते हुए कहा—'इन्द्र सकल सुर दरबार ठाढ़े रहें।[१६९] विराट कृष्ण का रूप-गायन करते हुए शिव ने कहा—'इन्द्र कर लोक त्रै बपु तिहारौ।'[१७०]

२.४ वरुण दमन

इन्द्र दमन के पश्चात् वरुण दमन का प्रसंग मिलता है। नंद वरुण-पाश में आबद्ध हो गये। इस प्रसंग में अभिप्राय-परिवर्तन कर दिया गया। अर्थात् वरुण ने नंद को इसलिए बाँध लिया था कि कृष्ण इनकी मुक्ति के लिए आयेंगे और इस प्रकार उनका दर्शन लाभ होगा। अपनी पत्नियों सहित वरुण कृष्ण के सम्मुख विनत हुआ और उसने उनकी स्तुति की।[१७१]

वरुण भी वैदिक देवता है। ऋग्वेद में शुन:शेयकृत वरुण-प्रार्थना मिलती है।

वरुण-हरिश्चन्द्र रोहित का वृत्त भी उपनिषदों में मिलता है।[१७२] अन्ततः वरुण जल देवता मात्र रह गया। यही वरुण कभी ऋत (=सत्य) का स्वामी था (सा ऋतस्य)। उसके पतन के बीज भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं : ऋग्वेद में उसे 'मायिन' बतलाया है।[१७३] वरुण के संक्रमण की एक दिशा 'नारायण' में भी मिलती है। शब्दतः नारायण =नार+अयण। यह 'सिंधुपति' (=वैदिक मित्र या वरुण) का पर्याय कहा जा सकता है। इन्द्र की भाँति वरुण के नैतिक पतन की सूचना भी साहित्य और लोक साहित्य से मिलती है।[१७४] इसका एक ऐतिहासिक विवरण यह हो सकता है : "वरुण असुर थे और इनकी राजधानी 'सुषा' द्वारिका से पश्चिम समुद्र के मार्ग से १६०० मील दूर है। आजकल इसका नाम ईरानियों ने 'शुसर' रख छोड़ा है। यह अनार्य देवता है।........ पुराण में अनिरुद्ध के वृत्त में वाणासुर का नगर शोणितपुर या रुधिरपुर बताया गया है। यह वरुण की नगरी 'सुषा' से आगे थी। वाण को हरा कर लौटते हुए श्रीकृष्ण को सुषा में वरुण से युद्ध करना पड़ा था।[१७५]"

जिस प्रकार इन्द्र दमन सूत्र का मुख्य अभिप्राय गो-गोपाल-ब्रज की सामूहिक रूप से रक्षा है, वहाँ वरुण-दमन गोपराज (=नन्द) की वरुण पाश से मुक्ति का उद्देश्य प्रकट करता है।"

२५ यज्ञ > ब्रह्मा—विष्णु और कृष्ण—गायों की चोरी

ब्राह्मण साहित्य में यज्ञानुष्ठान सर्व प्रमुख है।[१७६] साथ ही विष्णु की कल्पना यज्ञ के रूप में बनी और यज्ञकर्ता को विष्णु रूप माना गया।[१७७] दूसरी ओर ब्राह्मण साहित्य में सृष्टि कार्य से संबद्ध ब्रह्मा—प्रजापति को भी महत्व दिया गया।[१७८] महाभारत में भी ब्रह्मा को सृष्टि से संबंधित अवयवों का देव कहा गया है।[१७९] इसी से सभी की उत्पत्ति हुई है।[१८०] इस क्रम में ब्रह्मा का ही प्रतिरूप यज्ञ माना गया।[१८१] ब्रह्मा और विष्णु के गुणों में साम्य है।[१८२] इन सूत्रों से ब्रह्मा के निस्तेज होकर कृष्ण में संक्रमित हो जाने के संकेत मिलते हैं। वैदिक साहित्य में प्रजापति और विष्णु का संबंध भी मिलता है।[१८३] वराह और कूर्म के रूप में, प्रजापति के प्रकट होने का उल्लेख भी मिलता है।[१८४] इस प्रकार अवतार-कल्पना में भी विष्णु और प्रजापति (=ब्रह्मा) साथ-साथ मिलते हैं। आगे चलकर यज्ञ और अवतार कल्पनाओं में ब्रह्मा का स्थान कृष्ण ने लिया। महाभारत ने इस संक्रमण का उल्लेख किया है।[१८५] दोनों में प्रतिस्पर्द्धा भी मिलती है।

विष्णु यज्ञ रूप ही नहीं, उसका रक्षक भी है। अवैध यज्ञों से वह रक्षा करता है।[१८६] असुर शक्तियों से यज्ञरक्षा भी एक प्रमुख वैष्णव अभिप्राय बन गया।[१८७]

विष्णु परक मन्त्रों वैष्णव यज्ञों के महत्व में भी वृद्धि होती गई।[१८८] आगे विष्णु का महत्व यज्ञ के ऊपर भी स्थापित किया गया : जो यज्ञ से भी सम्भव नहीं है, वह विष्णु के द्वारा सम्भव है।[१८९] विष्णु यज्ञ के सन्दर्भ में प्रेम, भक्ति, रक्षा आदि के तत्त्व प्रमुख हैं।

ब्रह्मा और यज्ञ सम्बन्धी दो सूत्र—प्रसंग कृष्ण वार्ता में मिलते हैं : ब्रह्मा-वत्सहरण और यज्ञ पत्नी प्रसंग।

२.६ गोविरोधी आसुरी शक्तियों का दमन

२.६१ दावानल विजय

वैदिक परम्परा में इन्द्र के साथ अग्नि का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार एक उद्धत प्राकृतिक शक्ति के दमन के रूप में कृष्ण की गोवर्धन-धारण लीला प्रतिष्ठित है। उसी प्रकार 'दावानल-पान' अग्नि के उद्धत रूप के दमन से सम्बन्धित है। कंस की प्रेरणा से दावानल व्रज को भस्मसात करने के लिए चला।[१९०] उसने उग्र-उद्धत रूप धारण किया।[१९१] कृष्ण ने इसका पान ही कर लिया।[१९२]

२.६२ तृणावर्त विजय

जिस प्रकार दावानल अग्नि के उद्धत रूप का प्रतीक है, उसी प्रकार वायु का उद्धत रूप तृणावर्त में मिलता है। तृणावर्त के उद्धत रूप का परिचय सूर द्वारा प्रयुक्त इन शब्दों से मिलता है : अँधवाइ, 'गरजत गगन सहित शहरै'[१९३] अति विपरीत, वातचक्र, अन्धाधुन्ध,[१९४] बौंडर महाभयानक,[१९५]। वायु के इस प्रतिकूल रूप पर कृष्ण की विजय बालदेव की विजय[१९६] ही है।

२६.३ अधासुर से गायों की रक्षा

इसका वैदिक सूत्र यह मिलता है :

य: गा: उत्ऽआजत् अपऽथावलस्य[१९७]→अधासुर (अजगर) की गुहा में से गायों को मुक्त करने की लीला।

सूर ने अधासुर को गिरि समान कहा है। उसका खुला हुआ मुख कंदरा जैसा लगता था। उसके भीतर नदी और बनस्पतियाँ दिखलाई पड़ती थीं। जब उसने मुँह बन्द किया तो अभेद्य अन्धकार जैसा हो गया। इसका बध गोपाल वीर ने किया।[१९८]

२.६४ वकासुर से गो-रक्षा

बक नामक आसुरी शक्ति से भी कृष्ण ने गो-गोप की रक्षा की। इस मायावी असुर ने चोंच का ऊपरी भाग आकाश तक तथा नीचे का भाग पृथ्वी तक फैला दिया।[१९९] इसका शरीर अगम-विकराल था।[२००] अपना शरीर बढ़ा कर कृष्ण ने उसका भी बध किया।[२०१]

इन सूत्रों का विकास इस वैदिक सूत्र से माना जा सकता है :

य: दासम् वर्णम अधरम गुहा अकपित्यक:	विष्णु का अवतार असुर विनाश के लिए होता है।	तृणावर्त धेनुक, केशी आदि का बध कृष्ण ने किया।

२.७ विष्णु > कृष्ण और जल (>पद्म, पद्मासना)

उर्वरा शक्ति के प्रतीकों में जल का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। वनस्पति और प्राणि जगत का यह आधार है। औपनिषदिक सृष्टि क्रम के अनुसार आदि अवस्था में केवल जल ही था।[२०२] इसी का घनीभूत रूप पृथ्वी और वातावरण हैं : जीव, जन्तु, वृक्ष आदि भी इसी के रूपांतर हैं।[२०३] जल के अभाव में सब कुछ नष्ट हो जाता।[२०४]

वैष्णव प्रतीक-विधि में, जल को नारायण का स्वेद कहा गया।[२०५] विष्णु का एक नाम ही आपनिधि या अम्बुनिधि हो गया।[२०६] मनुष्य के संघटक पाँच तत्त्वों में से, ब्रह्मा का निवास भूमि तत्त्व में, शिव का अग्नि में और विष्णु का निवास जल में माना गया।[२०७] पुराणों में भी विष्णु का निवास-स्थान जल में ही है उनका नाम ही 'महोदधिशय' है।[२०८] विष्णु का निवास जिस समुद्र में है उसे 'अमृतोदधि' भी कहा गया है।[२०९] विष्णु के परामर्श से ही समुद्र मंथन हुआ जिससे अमृत की प्राप्ति हुई।[२१०] इस प्रकार उर्वराशक्ति के देवता के रूप में विष्णु-प्रतीक का मुख्य अंश जल बन गया।

कृष्ण का भी एक नाम 'तोयात्मा' है : इसके बालों में बादल, अंगों के जोड़ों में नदियाँ और उदर में समुद्र है।[२११] ब्रजकृष्ण का संबंध यमुना में घनिष्ठ है। जिस प्रकार वनस्पति जगत की अधिष्ठात्री वृन्दा देवी कृष्ण-प्रिया बनी, उसी प्रकार जल तत्त्व की प्रतीक यमुना भी कृष्ण-प्रिया बनी। इस रूप में उसे देवी की प्रतिष्ठा मिली।[२१२]

'यमुना-सहस्र नाम'[२१३] यमुना में को हरिप्रिया (१२ वाँ नाम), गोलोकवासिनी (नाम ४८७) जैसे नामों से अभिहित किया गया है।[२१४] उसे 'जलम्' (नाम ५७२) भी कहा गया है।

जल के अवरोधक कालिय का दमन[२१५] और वरुण विजय कृष्ण-वार्ता के दो प्रसिद्ध लीलावृत्त हैं। पहली लीला में यमुना को सहज-स्वच्छ किया गया और दूसरी के साथ पिता (नन्द) की मुक्ति का अभिप्राय संलग्न है।

कालिय-दमन का एक उद्देश्य कमलों की प्राप्ति भी है। 'कमल' पानी की नैज शक्ति और उसकी संपत्ति का मूर्त प्रतीक है। सृष्टि दर्शन में, जल में प्रसुप्त आदि सत्ता के जागरण और उसके सृष्टि व्यापार के रूप में कमल का प्रतीकत्व सिद्ध हो जाता है। पानी में नारी सुलभ शीतल गुणों और शक्तियों का निवास है। इन्हीं गुणों और शक्तियों का चरम विकास पद्मालया लक्ष्मी में प्राप्त होता है। सृजन की आदि शक्ति (—ब्रह्मा) का भी प्रादुर्भाव भी कमल से ही हुआ।

विष्णु के प्रतीकात्मक संमूर्तन में, चतुर्थ उपकरण 'पद्म' ही बना। कृष्ण के चतुर्भुज रूप के साथ भी यही उपकरण प्रचलित रहा। विष्णु के भाल पर जो स्वर्ण कमल प्रकट हुआ उससे 'श्री' (कमलालया) का आविर्भाव हुआ।[२१६] विष्णु की नाभि से जो पद्म उत्पन्न हुआ,[२१७] उससे ब्रह्मा प्रकट हुआ। हरिवंश के अनुसार तो विष्णु का प्रथम अवतार ही कमल है।[२१८] कृष्ण को महाभारत[२१९] में श्री पद्म (—संपत्ति का कमल) कहा गया है। विष्णु/कृष्ण के अंगागों के उपमान के रूप में कमल का अधिक प्रयोग इसी मूल प्रतीक का आलंकारिक विकास है।[२२०]

पीछे के साहित्य में कमल-प्रतीक का विकास और अधिक हुआ। यह सकल ब्रह्मांड का प्रतीक हो गया। पद्म निराकार, अनंत कारण-जल में खिलता है। जो ब्रह्मांड विष्णु-मानस में था, वह सृष्टि-समुद्र में खिलता है।[२२१] पानी की गहराई से उत्पन्न, तट से दूर, और जल से असंपृक्त रहने के कारण वह पवित्रता का प्रतीक होकर सत्त्व से संबद्ध हो जाता है :[२२२] सत्त्व>ज्ञान>धर्म। यह षट्गुणो में से 'भग' का प्रतीक भी बन जाता है। इसी से 'भगवान' व्युत्पन्न है।

उर्वरा शक्ति के देवता 'काम का भी एक आयुध 'पद्म' है।[२२३] विष्णु श्री पति है और श्री जल (=रस) है।[२२४] इसीलिए श्री और रस का साथ-साथ

वर्णन मिलता है।[२२५] जल का सारतत्व वीर्य है और वही लक्ष्मी है।[२२६] श्री वर्षा भी है।[२२७] इस प्रकार विष्णु जलपति (=श्रीपति) है।

सूर की यशोदा कृष्ण के 'वेद-कमल-मुख' का चुम्बन करती है।[२२८] इसमें प्रतीक और उपमान का संयोग अनजाने ही हो गया है। .

२·६१ सूर्य, विष्णु और कृष्ण (=यमुना प्रिय)

भारतीय विद्या के प्रायः सभी प्रमुख विद्वान् इस मत के हैं कि सूर्य ही विष्णु के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[२२९] 'शक्रार्थ विष्णु,' 'प्रतिम प्रभाव[२३०] जैसे पद इनके ऐक्स की ओर सकेत करते हैं। सूर्य को इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, प्रजापति और अग्नि बतलाया गया है।[२३१] विष्णु के सूर्यावाची नाम विष्णु सहस्र नाम में मिलते हैं, नामों में 'सहस्रांशु,' (महा० १३।१४९।६४), 'गभस्तिनेभि' (=जिसके रथ की नाभि सूर्य रश्मियों की है, वही १३।१४९।६५) तथा 'विहाय सगति (=जो आकाश के आरपार घूमता है) (वही १३।१५९।१०७) आदि उल्लेखनीय हैं। रवि, विरोन, सूर्य, सवितर, रविलोचन जैसे शब्द (वही) भी इस संबन्ध के प्रतीक हैं। आकाश को विष्णु का घर बतलाया गया है।[२३२] अन्त में विष्णु को 'सूर्यों' का पति भी कहा गया है।[२३३]

पुराणों में यह भी कहा गया है कि वरुण पानी का, वैष्णव (=कुबेर) धन सम्पत्ति का और विष्णु सूर्य का देवता बना।[२३४] विष्णु-केशव सूर्य ही हैं, कमला उसकी आभा है।[२३५] सूर्य और पृथ्वी के बीच पति-पत्नी भाव का आरोप होता मिलता है।[२३६] सूर्य और वर्षा के बीच भी ऐसा सम्बन्ध उभरता है।[२३७] सूर्य की 'कृपा' की ओर भी संकेत है। यद्यपि इन्द्र और सूर्य का सम्बन्ध भी उल्लिखित है,[२३८] फिर भी इन्द्र सूर्य का प्रतिनिधित्व नहीं करता। विष्णु और सूर्य में रूपांतरण है : एक रूपता है।

कृष्ण-वृत्त में सूर्य की दो रूपों में स्थिति है : गोपियाँ सूर्य से कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने लिए विनय करती हैं और सूर्य-पुत्री यमुना कृष्ण प्रिया बनती है। इसकी विवृत्ति ब्रजभाषा साहित्य में मिलती है। उसके स्वतन्त्र अवतार रूप और कृष्ण प्रियात्व, दोनों की प्रतिष्ठा हुई।

यमुना जी नित्यधाम से, भक्त पर कृपा करने के लिए और अपनी लीला प्रकट करने के लिए अवतीर्ण हुई हैं। सभी को यह दिव्य रूप प्रदान करती हैं।[२३९] भक्त की स्नेह वृत्ति को देखकर ही वे अत्यन्त आतुर गति से प्रवाहित हुई हैं।[२४०] कृष्ण तो सबको मोहते हैं: यमुना जी उनको भी रिझा लेती हैं। इनके बिना लाल जी एक क्षण भी नहीं रह सकते, भगवान के साथ ही इन्होंने भी अवतार धारण किया है।[२४१] राधा-गोपी के समान कृष्ण के साथ यमुना जी का साहचर्य है।[२४२] यमुना जी को वल्लभ सम्प्रदाय में 'कृष्ण वेसनि' नाम की सखी भी कहा गया है।[२४३]

कालिय-दमन (=वृत्र दमन) का उद्देश्य यमुना के जल की विमुक्ति भी है।

२.९२ जलमुक्ति : कालियदमन -

इन्द्र योद्धा है : शूरमा है। उसकी शूरवीरता अशुभ, घातक, आसुरी, दानवीय, और प्रकृति की प्रतिकूल शक्तियों से युद्ध करने में प्रकट होती है। यह सारी वस्तु योजना एक 'वीरगाथा' का रूप धारण करती है—वृत्र गाथा।[२४४] सभवत: वृत्र (अहि=बुध्न्य) पानी या वर्षा का इन्द्रपूर्व प्रतीक देवता था।[२४५] अहिरूप वृत्र सो जाता है : इससे वर्षा अवरुद्ध हो जाती है : इन्द्र वज्र से उसे जगाता है।[२४६] इस प्रकार इसको अभिभूत करके देवेश बनता है। यह किसी आर्येतर प्रतीक विधान का वैदिकीकरण ही प्रतीत होता है। अजगर जैसे विशालकाय राक्षसों के वध की गाथाएँ भी मिलती हैं।[२४७] वृत्र-बध का मुख्य अभिप्राय है—जल की विमुक्ति। वृत्र गाथा का दूसरा अभिप्राय 'बल' की गोशाला की विमुक्ति भी है।[२४८]

वैदिक साहित्य में इन्द्र और विष्णु का उल्लेख साथ-साथ भी मिलता है।[२४९] विष्णु को इन्द्र सहायक भी कहा गया है। उसको 'युज्य: सखा'[२५०] कहकर विष्णु के समान ही स्थान दिया गया है। आगे यह भी भावना बनती मिलती है कि विष्णु के बिना इन्द्र कोई महान् कार्य नहीं कर सकता। वृत्रनाश में यह स्पष्ट है। वृत्र-हनन के समय इन्द्र लम्बे डग रखकर आने के लिए विष्णु का आह्वान करता है।[२५१] विष्णु अपने 'ओज' (=शक्ति) से तीन डग रखता है।[२५२] इस प्रकार इन्द्र के पराक्रम में विष्णु के साहाय्य का महत्व ज्ञापित होता है। इन्द्र के साहाय्य-याचना करने पर विष्णु पृथ्वी, वातावरण और आकाश में छा गया।[२५३] इसी साहाय्य के कारण इन्द्र वृत्र पर वज्रपात कर सका।[२५४] विष्णु ने ही अपने 'तेज' और 'बल' का एक अंश इन्द्र को इस कार्य के लिए प्रदान किया।[२५५] यह प्रतीक संक्रमण का महाभारतीय रूप है। महाभारत में वृत्र गाथा का यह रूप बनता

है।[२५६] इन्द्र की याचना करने पर विष्णु ने वृत्र-विजय का आश्वासन दिया। इन्द्र ने विष्णु का स्मरण ध्यान किया। उसने समुद्र से उमड़ता हुआ फेन देखा। विष्णु ने इन्द्र के वज्र में और उस फेन में प्रविष्ट होकर वृत्र-विनाश किया। इस प्रकार इन्द्र और उसके वज्र की शक्ति विष्णु की ही शक्ति सिद्ध कर दी गई। वृत्र विनाश का अभिप्राय व्यक्त-अव्यक्त रूप से विष्णु और उसके अवतारों से सम्बद्ध होता गया।

महाकाव्य काल में विष्णु और इन्द्र का सम्बन्ध बदल जाता है।[२५७] विष्णु सुररक्षक और असुर विनाशक हो जाता है। उसका स्थान इन्द्र से उच्चतर (=अतीन्द्र) हो जाता है।[२५८] वृत्र के अतिरिक्त अन्य असुरों के विनाश में भी इन्द्र को विष्णु ने सहायता दी थी।[२५९] आर्यों का सहायक देवता बिष्णु ही बन गया।[२६०] विष्णु की शक्ति से ही प्रवाहित 'सोम' ने इन्द्र को शक्तिशाली बनाया था।[२६१] पौराणिक युग में इन्हीं सूत्रों के सहारे विष्णु/कृष्ण के सम्मुख इन्द्र को निस्तेज कर दिया गया।[२६२] इस प्रकार वैदिक शक्ति-प्रतीक का वैष्णवीकरण हुआ। जब विष्णु सुप्तावस्था में होते हैं, तो इन्द्र उनके काम को सम्हालता है।[२६३] इन्द्र का रूप धर कर विष्णु अंबरीष को वरदान देता है, तो वह उस वरदान को ठुकरा देता है।[२६४] विष्णु ही वज्रधारी बन जाता है।[२६५]

प्रतीक विकास इस प्रकार हुआ : वृत्र अहि > इन्द्र > विष्णु। इस क्रम में वृत्र अहि असुर हो जाता है जिसका दमन इन्द्र-विष्णु करते हैं। फिर विष्णु का कर्तृत्व स्वीकृत होता चलता है।

यः हत्वा अहिम् अरिणात् सप्त सिन्धून्[२६६]। —कालिय दमन लीला।

वृत्र और शम्बर जैसे असुरों के लिए जो अहि विशेषण प्रयुक्त होता था उसका संमूर्तन काली नाग में हो गया।[२६७] कुछ विद्वानों के विचार से 'असुरों' की एक शाखा नाग भी थी।[२६८] महाभारत के अनुसार नागों का सम्बन्ध कद्रू से है।[२६९] नाग और सर्प दो जातियां भी हो सकती हैं : गीता में शेष और वासुकि को नागों और सर्पों का प्रतिनिधि माना गया है।[२७०] दोनों ही कद्रू के पुत्र थे।[२७१] महाकाव्यकाल में नागों से कुरुवंश का संघर्ष भी हुआ। शेष, वासुकि के पश्चात् दुर्द्धर्ष तक्षक का नाम आता है। कृष्ण और अर्जुन के द्वारा हुए खांडव दाह में आहत तक्षक परीक्षित की मृत्यु का कारण बना। यह इन्द्र-मित्र था। नाग कन्या के एक पुत्र 'असीक' नामक ब्राह्मण के कारण तक्षक-जाति का सामूहिक विकास रुक गया था। नाग कन्याओं से विवाह की कथाएँ[२७२] उनको किसी आर्येतर वन्य जातियों के रूप में अनुमेय बना देती हैं। आज भी अनेक राजवंश अपना आरम्भ नागों से मानते

हैं।[२७३] वैदिक अभिप्राय पौराणिक और ऐतिहासिक अभिप्रायों से संबद्ध हो गया।

सामान्यतः नागों का सम्बन्ध पाताल-रसातल आदि से माना जाता है। हो सकता है पाताल किसी गहन पर्वत-घाटी का ही प्रतीक हो! नागों की 'भोगवती' नगरी की स्थिति गङ्गा-यमुना के बीच मानी जाती है।[२७४] इस प्रकार नाग जाति का प्रसार मध्यदेश में सिद्ध हो जाता है। बौद्ध साक्ष्य के अनुसार भोगवती नागों की स्वर्णपुरी थी।[२७५] वाल्मीकि ने उनकी स्थिति दक्षिण में अगस्त्य आश्रम के समीप मानी है।[२७६] नागपुर और हस्तिनापुर नागों के केन्द्र प्रतीत होते हैं। वैसे, उनकी स्थिति सारे भारत में प्रतीत होती है। इस प्रकार नागों और आर्य राजाओं के संघर्ष एवं शान्तिपूर्ण सम्बन्धों की कथाएँ महाकाव्य काल में मिलती हैं। कुछ विद्वान् नागों को एक सर्प पूजक एवं आर्य-द्रविड़ जातियों से भिन्न एक जाति के रूप में देखते हैं।[२७७] और कुछ के अनुसार ये पशु कहानियों के पात्र हैं।[२७८] इस प्रकार नाग-वार्ता में नाग-सर्प पूजा, नाग-पूजक जाति, उस जाति के सामाजिक सम्बन्ध जैसे सूत्र समाविष्ट हो गये।

नागों का सम्बन्ध धरती से माना जाता है। ब्राह्मण साहित्य में नाग माता कद्रू को पृथ्वी के रूप में देखा गया है।[२७९] उनको भूगर्भवासी कहने की रूढ़ि तो है ही। भूगर्भ स्थित संपत्ति के ये स्वामी थे। मणि-रत्न भांडारों के ये अधिपति थे। भूगर्भ शोधक जाति के भी ये प्रतीक हो सकते हैं। समुद्र और सागरों से भी इनका सम्बन्ध था।[२८०] वनों में भी इनका निवास था। इस प्रकार जङ्गलों, समुद्र, नदियों और ह्रदों पर एवं धातु सम्पत्ति पर इनका अधिकार था।

कृष्ण वार्ता का कालिय यमुना के एक ह्रद से सम्बद्ध है।[२८१] वह कालीदह के पुष्पों का स्वामी था। उन फूलों को मँगवाने का षडयन्त्र कंस ने रचा।[२८२] काली यहाँ गरुड़ त्रास से रहता था।[२८३] गरुड़ और कालिय के द्वन्द्व की कथा पुराणों में मिलती है।[२८४] जब कालिय का पीछा करता हुआ गरुड़ भागा तो, कालिय शेष के पास गया और शेष ने उसे वृन्दावन के कालीदह में जाकर शरण लेने का परामर्श दिया, जहाँ गरुड़ सौभरि ऋषि के शाप के कारण नहीं जा सकता था।[२८५] शेषावतार बलराम ने उसको अपना भाई भी माना है।[२८६] कद्रू ही रोहिणी है, जिसने बलराम को जन्म दिया।[२८७] कद्रू ने अनेक आकृतियों और फनों वाले नागों को जन्म दिया था। कालिय भी इनमें से एक था। पांचरात्र साहित्य में कालिय के पाँच फन कहे गये हैं।[२८८] 'सूर' ने उसके सहस्र फन लिखे

हैं।[२८९] इसके विपम विष से जल-जङ्गल जल उठते थे।[२९०] उसमें पुरुष और नाग के आकारों का मिश्रण था।[२९१] एक और पौराणिक सूत्र इस सन्दर्भ में संग्रथित मिलता है। वेदशिरा और अश्वशिरा परस्पर एक दूसरे के शाप से क्रमश: कालिय नाग और कागभुशुण्ड हुए थे। भगवान ने वेदशिरा (=कालिय) को आश्वासन दिया कि मेरे चरणों से तेरा मस्तक अङ्कित होगा।[२९२] अब वह वर-दान चरितार्थ हुआ : 'यह मुनि कृपा करी नँदनंदन, चरन चिन्ह प्रगटाये' इसके साथ एक और विभावना की गई : कालिय ने कृष्ण से गरुड़ भय की बात कही।[२९४] इसलिए कृष्ण ने जानि आपनौ दास।[२९५] इस प्रकार कृष्ण ने उसे मारा नहीं, नाथ दिया।[२९६] उसे अपने दासों में उन्होंने स्थान दिया।

चरण-चिह्न अङ्कित करने की वार्ता का सौन्दर्यतात्विक विस्तार हुआ। कृष्ण नटवर हैं।[२९७] इस रूप में उन्होंने कालिय के फनों पर नृत्य किया।[२९८] इस प्रकार 'नटवर' 'कालियनट' में संक्रमित हुआ। कालिय नृत्य की मुद्राओं का वर्णन पांचरात्र साहित्य में मिलता है।[२९९] सूर ने भी नृत्य के अभिप्राय का विस्तार किया है।[३००] नागपत्नियों की स्थिति भी है।।[३०१] इन्होंने कृष्ण की स्तुति की।[३०२] लीला संदर्भ देने के लिए कंस के षड़यन्त्र, कमलपुष्प आनयन, सखाओं के साथ खेलना और गेंद का कालीदह में जाना जैसे सूत्र भी संग्रथित कर दिये गये हैं। अन्त में काली को ब्रज से निकालकर नागद्वीप में भेज दिया गया।[३०३]

इस जटिल संदर्भ का रूपायन नृत्य, अभिनय, संवाद, स्तुति जैसे रूपों से युक्त लीला-कथा काव्य रूप के द्वारा हुआ। इस पर 'काव्यरूपों' के साथ विचार किया गया है। वात्सल्य के पुट से काव्य रूप को सजीव बना दिया गया है।

२.(१०) कृष्ण और वनस्पति जगत—

जिस प्रकार पशु जगत का प्रतीक 'गो' तथा उसका सार 'नवनीत' कृष्णवार्ता के महत्वपूर्ण उपकरण हैं, उसी प्रकार वनस्पति जगत का सार 'मधु' भी विष्णु/कृष्ण वार्ता में महत्वपूर्ण है। कृष्ण वनस्पतिमय भी है और वनस्पति का रक्षक भी है।

२.(१०) १ : विष्णु>कृष्ण और वनस्पति जगत् (>मधु)—

ब्रज कृष्ण का अधिकांश जीवन वृक्ष-लताओं, वन-उपवनों और कुंज-निकुंजों में बीता। ब्रज के बटों और उनके विभाजन का विचार पहले किया जा चुका है। कृष्ण के लीला-कलाप की पृष्ठभूमि नीप, कदंब, तमाल, करील जैसे वृक्ष-पौधों से बनी है। यदि प्रतीकात्मक दृष्टि से देखें तो लता-गुल्मों से परिवेष्ठित कृष्ण वनस्पति का

देवता ही प्रतीत होता है। इस प्रकार के देवता की प्रतिष्ठा लोकमानस के उर्वरा शक्ति संबंधी आदिम विश्वास के द्वारा हुई है। इस प्रकार के विश्वासों की अवहेलना वैदिक ऋषि-मानस भी नहीं कर पाया था। विष्णु की वैदिक परिकल्पना लोकमानसीय मान्यताओं से पुष्ट है। विष्णु की रूप कल्पना का सौन्दर्य मूलक और प्रतीकात्मक विकास कृष्ण में हुआ है।

श्रुति ने विष्णु का सम्बन्ध वृक्ष-जगत् से माना है।[३०४] कुछ वृक्ष तो विष्णु रूप ही हैं।[३०५] गीता में कृष्ण ने भी अपने को 'अश्वत्थ' कहा है।[३०६] एक पौराणिक साक्ष्य के अनुसार, एक शाप के कारण विष्णु अश्वत्थ और शिव बट-वृक्ष बने थे।[३०७] विष्णु अश्वत्थ के मूल में छिप गये थे।[३०८] कृष्णवार्ता में जय-विजय के अभिशप्त रूप यमलार्जुन वृक्षों के रूप में मिलते हैं।[३०९] कुछ विष्णु के प्रिय वृक्ष भी हैं।[३१०] इनमें से कुछ का रक्षात्मक महत्व है[३११] और कुछ का यज्ञाग्नि से संबंध है।[३१२] विष्णु के प्रिय वृक्ष शमी की पूजा भी होती है।[३१३] दूर्वा जीवन, उर्वरा शक्ति का प्रतीक भी है और इसका पशु-पालक महत्व भी है।[३१४] दूर्वा का वैदिक साहित्य में प्रतीकात्मक महत्व बहुत उभरा है।[३१५] लोकानुष्ठान में दूब का बहुत महत्व है। कृष्ण जन्म की मांगलिक सामग्री में दूब प्रमुख है।[३१६] यह श्वास, जीवन-रस, घरेलू पशुओं की प्रतीक है।[३१७] अपने इसी व्यावहारिक और प्रतीकात्मक महत्व[३१८] के कारण दूब को विष्णु प्रिया माना गया। तुलसी का सबंध तो विष्णु/कृष्ण से अटूट है। 'वृन्दा' (=तुलसी) कृष्ण-प्रिया ही हो गई। वृन्दा ने तपस्या करके वन-निकुंज बनने का वरदान पाया, जिसमें कृष्ण बिहार करते रहें। वृन्दाबन स्वयं कृष्ण या युगल रूप हैं।

लोक में जो शुद्ध उर्वरा शक्ति संबंधी सूत्र थे, वे वैदिक विष्णु के साथ संलग्न होकर रूपक और प्रतीक की संरचना में ढलने लगे और कृष्ण तक आते-आते प्रतीक के चतुर्दिक आध्यात्मिक अर्थ आकर जुड़ गये। कृष्ण वार्ता तो पूर्णतः वनमय है।

पौराणिक उल्लेखों के अनुसार ब्रज के वन प्रसिद्ध थे।[३१९] अनेक वृक्षों के वन हैं: ताल वन,[३२०] कुन्दबन[३२१] (=कुमुद बन), बकुलबन[३२२] (=बहुलवन), भाण्डीर बन,[३२३] विल्वबन[३२४] आदि विष्णु प्रिय वृक्षों या पादपों के बनों का उल्लेख पौराणिक साहित्य में मिलता है। विल्व विष्णु और शिव दोनों को प्रिय है। न्यग्रोध का संबंध वरुण से माना गया है।[३२५] इन्हीं बनों में कृष्ण का ब्रज जीवन बीता और ब्रज लीलाएँ घटित हुई।

कृष्ण का प्रिय वृक्ष कदम्ब हो गया। नंदगाँव-वरसाना क्षेत्र में सुनहरा की

कदमखंडी और 'उद्धव के क्यार' आज तक कदंब-बन के रूप में सुरक्षित हैं। वृन्दाबन में भी कदंब के वृक्षों का बाहुल्य था।[३२६] इन वृक्षों की छाया में गायें विश्राम करती हैं तथा स्त्री रूप लक्ष्मी तथा पुरुष रूप विष्णु निवास करते हैं।[३२७] वृन्दा (=तुलसी) के मानवीकृत रूप को कृष्ण-प्रिया बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इन बनों की यात्रा आदि के साथ पुराणों ने फल-कथन जोड़कर उर्वरा शक्ति की पूजा को पूर्णतः पौराणिक बना दिया। बारह बनों के अतिरिक्त चौबीस उपवनों से भी ब्रज मर्मरित है। इसी 'उद्यान-वन संपन्ना' भूमि को कृष्ण ने अपने अवतार और लीला-विलास के लिए चुना।[३२८]

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि कृष्ण का वनस्पति जगत् से घनिष्ट संबंध रहा। प्रतीक विकास की दृष्टि से वनस्पति उर्वरा शक्ति की प्रतीक है : वनस्पति की शक्ति 'वृन्दा' कृष्ण प्रिया बनी : काव्य की दृष्टि से वनस्पति जगत् लीला का लौकिक-अलौकिक पृष्ठाधार बनता है : शृङ्गार लीलाओं का यही उद्दीपन भी है।

कृष्ण बनमाला[३२९] धारण करते हैं। वह भी वनस्पति-जगत् की प्रतीक है। पीछे इसका भी योग-परक और ज्ञान-परक प्रतीक विकास हुआ : योग के अनुसार विशुद्ध चक्र की स्थिति कंठ में है। कंठ के आसपास पड़ी माला ही 'निर्गुण' है। इसकी पाँच लड़ें सुगंधित फूलों और पाँच रत्नों की हैं। पाँच लड़ें=पाँच इंद्रियाँ और पाँच भूत; पंचभूत=माया। इस प्रकार 'माला' मूल शक्ति माया हुई। यह सभी प्राकृतिक रूपों की जननी है।[३३०]

वनस्पति जगत का सार मधु है।[३३१] यह उर्वरा शक्ति का भी प्रतीक है। वैदिक साहित्य में सोम की ही भाँति 'मधु पर्क' की भी स्तुतियाँ मिलती हैं।[३३२] 'मधु' का संबंध ऋतुराज बसन्त से भी है।[३३३] वनस्पति जीवन का नवारंभ मधु (=बसंत) से द्योतित है। विष्णु का भी एक नाम 'मधु' है।[३३४] इससे विकसित 'माधव' शब्द भी विष्णुवाची है।[३३५] 'मधु' शब्द मधु-विद्या के रूप में उपनिषदों के द्वारा ज्ञान का प्रतीक बना दिया गया। इस संदर्भ में 'माधव' ज्ञानाधिपति हो गया। कृष्ण के लिए भी माधव नाम प्रयुक्त होता है।[३३६]

विष्णु के तीन 'पद' मधुमय हैं। तृतीय या उच्चतम पद जहाँ है, वहाँ मधु का आगार या स्रोत है।[३३७] इस मधु लोक के संरक्षक विष्णु हैं।[३३८] यह लोक ब्रह्मपद से भी ऊँचा है।[३३९] मनुष्य की जीवन यात्रा का यही लक्ष्य है।[३४०] इस प्रकार वनस्पति जगत के सार 'मधु' का प्रतीकात्मक विस्तार आधि-

दैविक अर्थों में होता गया। विष्णु और कृष्ण सर्वांग मधुर कहे गये हैं।[३४१] कृष्णोपासना के संदर्भ में मधुर रस या माधुर्य भाव की केन्द्रीय स्थिति हो गई।

जैसाकि अभी संकेत किया गया है, उपनिषदों में 'मधु' का अर्थ 'सार' या निष्कर्ष हो गया।[३४२] इसकी व्याख्या 'मधु-विद्या' से संभव है। यह आनंद का भी वाचक है।[३४३] इसका अनुभव योगी को आत्म-साक्षात्कार के समय होता है। विष्णु/कृष्ण के दो नाम मधुपरक हैं : मधुसूदन और माधव। एक ओर जहाँ मधु राक्षस का हनन करने के कारण कृष्ण मधुसूदन हैं, वहाँ वे 'माया' (=मधु) का नाश करने वाली मधु-विद्या के भी प्रतीक हैं।[३४४] संभवत: इसी अर्थ में उपनिषद् ने कृष्ण को मधुसूदन कहा।[३४५] गीता में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है[३४६] और पुराणों में भी।[३४७] यह नाम कृष्ण के लिए रूढ़ हो गया।

माधव नाम [३४८] की व्युत्पत्ति भी मधु राक्षस[३४९] और मधुविद्या के संदर्भ में की जाती है। ब्रह्मविद्या के चरमगति होने के कारण ही भगवान विष्णु का नाम माधव है।[३५०] साथ ही, लक्ष्मीपति 'माधव' मधुविद्या से ही ज्ञातव्य होने के कारण है।[३५१] 'मा' शब्द का अर्थ विद्या भी किया गया है।[३५२] 'धव' शब्द पतिवाचक हो जाता है। मा+धव=मायापति∽लक्ष्मीपति—यह क्रम अनुमेय है। यही सबका स्वामी भी है।[३५३] इसके ऊपर कोई और पति नहीं है।[३५४] इस प्रकार इस नाम की प्रतीकात्मक यात्रा इस प्रकार रही : मधु=वनस्पति का सार∽वसन्त∽सर्वसार∽ब्रह्म विद्या∽माया∽लक्ष्मी; माधव=ब्रह्म विद्या से ज्ञातव्य∽मायापति∽लक्ष्मीपति∽सर्वपति∽विष्णु∽कृष्ण।[३५५] भक्ति-रस की परिणति में कृष्ण 'मधुर' हो जाते हैं जो 'माधुर्य' भाव से प्राप्य हैं।

वनस्पति का सार 'सोमरस' भी है। चन्द्र, वनस्पति और अमृत का देव भी 'सोम' है। सोम को 'श्री' भी कहा गया है।[३५६] विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के नाम 'चन्द्र' से सम्बन्धित हैं। कृष्ण तो चन्द्रवंशी ही हैं।[३५७] उपनिषद् में सोमरस का स्थान 'मधु' ही ले लेता है। कृष्ण का मधुवन से घनिष्ट संबंध है।[३५८]

मधु, लवण और दावानल के दमन में वनस्पति जगत की मुक्ति और रक्षा की भावना भी सन्निहित है। धेनुक भी एक आसुरी शक्ति का प्रतीक है जो वनस्पति जगत पर अधिकार रखता था। उससे 'तालवन' को मुक्त करके बलराम ने उसके भोग का द्वार गोप-ग्वालों के लिए मुक्त किया। [३५९]

पर अन्ततः वह विष्णु की हो गई। इन्द्र संबंध में कहा गया कि लक्ष्मी पाँच इन्द्रों की पत्नी थी। इन्हीं पाँच इन्द्रों के अवतरित रूप पाँच पांडव और लक्ष्मी का अवतरित रूप द्रौपदी है।[४०५] इन्द्र आदि देवों से अविच्छिन्न होकर विष्णु प्रिया बनने की विधि में ही कहीं बहुप्रियात्व एवं जारत्व या परकीयात्व का बीज सन्निहित है।

लक्ष्मी-श्री का इन्द्र आदि देवों से विच्छिन्न होकर विष्णु के पास आना एक प्रतीकात्मक संक्रमण है; सभी देवों की श्री विष्णुप्रिया बनी। इसी प्रकार अन्य देव-प्रियाएँ भी विष्णु की प्रियाओं के रूप में संक्रमित हुई। 'सिनीवाली' देवी[४०६] भी पहले अन्य देवों से संबद्ध थी[४०७] पीछे विष्णु प्रिया हो गई।[४०८] सरस्वती पहले इन्द्र-आश्विन से, इन्द्र-मरुत से,[४०९] ब्रह्मा से, और पीछे विष्णु से संबंधित हुई।[४१०] इस प्रकार की कल्पनाओं में जारत्व सिद्ध होता गया। जारत्व प्रतीक-संक्रमिति का प्रतीक है। अन्ततः सभी देवियाँ श्री-लक्ष्मी में संक्रमित और श्री विष्णु के लिए एक-निष्ठ और समर्पित होती गई। विष्णु और श्री का सामाजिक दृष्टि से मंगल-कल्याण (=विवाह) हुआ।[४११] विष्णु श्रीपति हो गये।[४१२] समुद्र से निकलते समय विष्णु से ही लक्ष्मी का प्रथम-दर्शन प्रेम हुआ था।[४१३] विष्णु/कृष्ण संक्रमिति में श्री को कृष्ण प्रिया भी कह दिया गया है।[४१४] गुप्त युग तक लक्ष्मीनारायण की पूर्ण प्रतिष्ठा हो गई।[४१५]

वैदिक साहित्य में पृथ्वी (=भू) का संबंध त्रिविक्रम के साथ हुआ।[४१६] विष्णु और पृथ्वी की साथ-साथ प्रार्थना भी मिलती है।[४१७] विष्णु के साथ पृथ्वी के उद्धार का अभिप्राय भी मूलबद्ध है।[४१८] अंततः रूपक-प्रतीक की प्रक्रियों में भू विष्णु पत्नी बन गई।[४१९] विष्णु के भू-परक अवतार वराह के साथ भी प्रिया रूप में भू का संबंध स्वाभाविक था।[४२०]

विष्णु पत्नी के रूप में श्री और भू के साथ 'लीला' का परिगणन भी किया गया। यह विष्णु की सृष्टि लीला की प्रतीक है।[४२१] विष्णु की आठ शक्तियों के उल्लेख भी हैं।[४१२] इस प्रकार विष्णु के बहु प्रिया और एक प्रिया रूप चलते रहे। प्रगति एकनिष्ठता की ओर रही : बहु प्रिया > तीन प्रिया > दो प्रिया > एक प्रिया।

उपर्युक्त प्रक्रिया बौद्धिक और सैद्धान्तिक धरातलों पर ही नहीं चली, पांच-रात्रों की संमूर्तन विधियों में यह कल्पना मूर्त होती गई। पांचरात्र आगम में मूल स्थिति पर-वासुदेव की है। इनको 'साक्षाल्लक्ष्मी पति' तो कहा ही गया है,[४२३] 'लक्ष्म्यादि शक्ति जाल' कहकर,[४२४] उसकी एकाधिक शक्ति-प्रियाओं की बात भी कही गई। परवासुदेव का व्यूहांतरण हुआ और चतुर्व्यूह में केन्द्रीय स्थिति वासुदेव की

हो गई। इनकी तीन शक्तियाँ (प्रियाएँ) हैं : श्री, भू और नीला।[४२५] दक्षिण पार्श्व में श्रिय एवं वाम पार्श्व में पुष्टि या तुष्टि की स्थिति भी कल्पित है।[४२६] वासुदेव के दो रूप परिकल्पित हुए : दैविक वासुदेव तथा मानुष वासुदेव। दैविक वासुदेव के दक्षिण पार्श्व में 'श्री' और वाम भाग में 'भू' की स्थिति है।[४२७] मानुष वासुदेव के दक्षिण पार्श्व में केवल रुक्मिणी चित्रित है।[४२८] इसके विकसित रूप में सत्यभामा वाम पार्श्ववर्तिनी हो गई।[४२९] पांचरात्र के द्वादश मूर्ति विधान में दो प्रियाओं की कल्पना चलती रही।[४३०]

पांचरात्र की संमूर्तन-विधि में यादव वासुदेव के साथ रुक्मिणी और सत्यभामा की स्थति रूढ़ हो गई।[४३१] सत्यभामा को वामोत्संग' प्राप्त है। इसलिए इसकी साहित्यिक संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। रुक्मिणी कनकाभ है तो सत्यभामा श्यामला।[४३२] कृष्ण-वासुदेव की बाँईं कुहनी सत्यभामा के स्कंध पर है[४३३] तो वे रुक्मिणी के प्रति भी सविलास है।[४३४] वैखानस और पांचरात्र परम्पराओं में इनका सौन्दर्यमूलक विकास अधिक होता गया।[४३५] रुक्मिणी की अवधारणा सुन्दरी और सत्यभामा की सती के रूप में हुई।[४३६] संमूर्तन की विधि में मूर्त सौन्दर्य की कल्पना का विकसित होते जाना स्वाभाविक है। लक्ष्मी को पांचरात्र साहित्य ने दिव्य स्तर से सौन्दर्य स्तर पर उतारा।[४३७] सौन्दर्य के उपकरणों से सुसज्जित लक्ष्मी जगन्मोहिनी हो गई। सौन्दर्यमूलक विकास में 'भू' और 'नीला' ठिठक गई। 'लीला' का विकास भावात्मक सौन्दर्य के रूप में होता रहा और 'भू' का सौन्दर्यमूलक विकास सत्यभामा के रूप में हुआ।[४३८] जब सौन्दर्य-शृङ्गार मूलक विकास और आगे बढ़ा तो विष्णु/कृष्ण एकनिष्ठ होते गये। अन्य शक्ति-प्रियाएँ सखियों या गोपियों के रूप में युगल के परिवेष्ठन में ही स्थिति बना सकीं।

२.(१२) : विष्णु (=मंगल का देवता) > कृष्ण (=नंदनंदन)—

विष्णु भक्तों पर समृद्धि और कृपा की वर्षा करते हैं। इसी की उनसे प्रार्थना की गई है।[४३९] विष्णु से कामना और आशा की जाती है कि वह कल्याण करें।[४४०] विश्व कल्याण की ओर संकेत ऋग्वेद में भी है।[४४१] भूति और संतति की प्राप्ति के लिए विष्णु प्रार्थनीय हैं।[४४२] विष्णु-याग संपत्ति, स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए ही किये जाते थे।[४४३] विष्णु (अग्नि भी) समृद्धि और संपत्ति से अभिन्न हैं।[४४४] वह 'सात निधि' का देने वाला है।[४४५] ये सूत्र विष्णु को कल्याण और मंगल का देवता बना देते हैं—'मंगलं भगवान विष्णु'। कृपा और उदारता इस रूप में उसके गुण हो जाते हैं। पुराण में इन्हीं गुणों को गाथाओं से प्रमाणित किया गया है। 'सुरक्षा' के संदर्भ में वह 'गोप' है।[४४६] यह अभिप्राय अवतार कल्पना में प्रतिफलित होता है।

इनको विष्णु के कुछ नाम प्रतीक भी व्यक्त करते हैं : 'वसुद' (=संपत्ति देने वाला), वसुप्रद, महाधन, जैसे नाम प्रसिद्ध हो गये।[४४७] नाम साम्य के आधार पर विष्णु और वासुदेव एक हो गये।[४४८] श्री (=वृद्धि, पूर्ति और ऋद्धि) के पति हैं विष्णु।[४४९] विष्णु स्वस्तिक (=आनंद करने वाला) है। ये 'सुखद' भी हैं।[४५०] मनुष्यों को ही नहीं, देवताओं को भी वह शक्ति और आनंद देता है।[४५१] आनंद से संबंधित नाम 'नंद', 'नंदन' (आनंद देने वाला) और 'नंदकिन्' हैं, जिसमें सारा आनंद निहित है।[४५२]

कृष्ण के वासुदेव और नंदनंदन नाम पितृ परंपर को भी स्पष्ट करते हैं और उपर्युक्त नाम प्रतीकों की परंपरा में भी आते हैं।

देवकी के छः पुत्रों के पश्चात् कृष्ण के जन्म लेने का संकेत सूत्र (ऋ० २-३-२१) वेद में मिल जाता है। पूतनोद्धार का सूत्र भी उपलब्ध होता है।[४५३] केशी-वध,[४५४] कालियदमन[४५५] जैसे सूत्र भी वैदिक साहित्य में हैं। ब्रज और उसकी गायों का उल्लेख भी ब्रज में मिल जाता है।[४५६] गोपों का उल्लेख भी है।[४५७] ऊखल बंधन भी व्यंजित है।[४५८] गोबर्धन धारण लीला का संकेत स्पष्ट मिलता है।[४५९] इन्द्र मानमर्दन और इन्द्र के द्वारा गोविन्दाभिषेक के वाचक-प्रेरक पद भी प्राप्त होते हैं।[४६०] गिरि गोवर्धन की तराई में ये सभी लीला सूत्र भावित हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि गोपाल केन्द्रीय वस्तु वैदिक वस्तु का संक्रमित रूप है। अन्य शब्द-संकेत भी वैदिक साहित्य में प्राप्त हो जाते हैं।



संदर्भ संकेत

१—सू० सागर, ६२१ ।

२—व्यास सूत्र, ३·२·१५ पर अणुभाष्य ।

३—द्रष्टव्य, विद्वन्मंडन ।

४—अमरकोश, तृतीय कांड, नानार्थ वर्ग, २५ ।

५—वही द्वि० खं०, ७ ।

६—वही, वैश्य वर्ग, ५७ ।

७—ब्रह्म गोपायति संभावृणोतीति गोपी; स्वातिरिक्तास्तित्वभ्रमं नामरूपाभ्यां गोपायतीति गोपी ।

८—हॉपकिंस, द रीअल इन्द्र ऑफ द ऋग्वेद जे० ए० ओ० स० १६ (१८९६) पृ० सी० सी० ३६; इन्द्र एज गॉड ऑफ फर्टिलिटि, (वही, ३६, १९१७) पृ० २४२ ।

९—ऋ० ४·१७·१०; ३·४·५·४ । यही इन्द्रायुध है (वही १०·४४·९) ।

१०—अथर्व० १२।१।६ : पृथ्वी इस सन्दर्भ में गाय है ।

११—Hillebrandt, Vedic Myth, II, P. 199; पारस्कर गृहत्य सूत्र, २।१७।९ ।

१२—कृषि के आरम्भ में जो देवोपहार होता है, उसमें सीता का भी भाग होता है, गोभिल गृह-यसूत्र, ४।४।२८ ऋ० ८।२१।३ ।

१३—ऋ० ३।५४।१४ : उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्विर ।

१४—"If this interpretation be right, the hypo thesis that the god's female train as described by later authors has resulted from his being identified with Krishna" J. Gonda, Aspects of early Visnuism. P. 19.

१५—मरीचि संहिता [विमानार्चना कल्प] पटल, २१ ।

१६—भृगु० १६।१६१।

१७—पाद्म संहिता (क्रिया०) १८।२८-२६।

१८—नारदीय संहिता १३।२६६।

१६ वही १३।३००।

२०—पाद्म० १८।२; विष्णुतंत्र १८।२, ३, ५; विष्वक्सेन० ११।२३।

२१—शांडिल्य संहिता १।१६।८।

२२—हरिवंश, विष्णुपुराण तथा भागवत में गोपी कृष्ण का ही विकास है। महाभारत में कृष्ण को 'गोपी जन प्रिय' कहा गया (२·६८·४१)।

२३—कृष्णोपनिषद् और गोपालपूर्व तापनीय उप० गोपीनाथ वार्ता की परम्परा में आते है। राधा एक प्रधान गोपी है।

२४—लीलाशुक के 'कृष्णकर्णामृत' और 'हरिलीलामृत' में गोपाल-गोपीनाथ का ही प्राधान्य है।

२५—कृष्णकर्णामृत १·४५; हरिलीलामृत, १०·६।

२६—इन पर आगे विचार किया गया है।

२७—सभापर्व, ६७ में द्रौपदी कृष्ण को इसी नाम से पुकारती है।

२८—रास मण्डल मध्यस्थं चद्वा क्रुर्या जगद् गुरुम्।
देव्यो गृहीत्वा हस्तभ्यां कराग्रं मध्यतः स्थितम्। नृत्यं बहुसहस्र गोप कन्या भिरावृतम्।

२६—अनेक जन्म सिद्धानां गोपीनां पति रेव वा।
नन्द नंदन इत्युक्त।

३०—भागवत १०।३१।१५।

३१—वही १०।२६।३२।

३२—वही १०।३२।२२।

३३—जे० गोंद, विष्णुइज्म, पृ० ११६। ऋ० ५४-१४।

३४—ब्र० वै० प्रकृति० ४६।३०,३१; ४६।३६।

३५—पद्मपुराण पाताल० वृंदा० ६६।११७—प्रधान प्रकृतिस्त्वाद्या राधाचन्द्रावली समा।' ब्रह्मवैवर्त में भी इसकी स्थिति है।

३६—शरण बिहारी गो०, कृष्णभक्ति साहित्य में सखीभाव, पृ० १४७। गीता (७।४) श्रीभाष्य (४।७) ने आठ प्रकृतियों की ओर संकेत किया है। लक्ष्मी की भी आठ सखियाँ कही गई हैं।

३७—ब्रह्म वैवर्त (कृष्ण जन्म खण्ड, २८।२६-४१) में बत्तीस प्रमुख गोपियों के नाम मिलते हैं।

३८—सोलह कलाओं या चौंसठ कलाओं की संख्या में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। षोडश प्रकृति का उल्लेख भी मिलता है।

३९—द्रष्टव्य, प्रस्तुत प्रबन्ध, रास काव्यरूप।

४०—इस पर 'सखी' प्रकरण में विचार किया गया है।

४१—सोरह सहस गोप कन्यनि के अङ्ग-अभूषन सहित चुराए। सू० सा० १४०२; १६६५; १७४१-१७४४; १६२५।

४२—वही, १६५८।

४३—ब्र० वैवर्त (प्रकृति०) ४९।५२।

४४—वही २।२४।

४५—वही २।३८।

४६—वही ३।५७।

४७—वही (कृष्णजन्म खण्ड) २८।२६-४१। संख्या ४,२१,००० तक पहुँचती है।

४८—रजकन, उडुगन, बूँद धन, आवत गिनती आँहिं।
कहत जोइ थोरी सोई, सखियनि संख्या नाँहिं। [सभामण्डल लीला बयालीस लीला, पृ० १४९]

४९—मनहुँ निसाकर किरनि समाज। सू० सा० १७९८।

५०—कृष्ण यामल में गोपियों की कृष्ण की शक्तियों के रूप में देखा गया है।

५१—डा० देवीशंकर अवस्थी, 'अठारहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमा-भक्ति', पृ० १७६।

५२—सूर साहित्य नवमूल्यांकन पृ० २०६।

५३—ब्र० वै० (कृष्ण जन्म०) २८।२६-४१।

५४—वही० २८।४५।

५५—शतपथ० (११।१।६।२३) में लक्ष्मी को पृथ्वी स्वरूपा कहा गया है।

५६—ब्र० वै० (कृष्ण जन्म०) ६।१४३,१४५।

५७—पद्म० पाताल० वृंदा० ६९।११७।

५८—ये आठनाम हैं : चन्द्रावली, चित्ररेखा, चन्द्रा, मदन सुन्दरी, प्रिया, मधुमती चन्द्ररेखा और हरिप्रिया। वही. ७०।८९।

५९—वही, ७०।१०,११।

६०—इसमें रतिपरक नाम भी सम्मिलिति हैं।

६१—पद्म० पु० (पाताल), ७३।१०५-१०९।

६२—अथर्व० ९।२।१९।

६३—१।७।२६ ।

६४—१।६६।३३ ।

६५—हरिवंश अध्याय २०० ।

६६—वही, अध्याय १६१ ।

६७—पद्मपुराण उत्तर० ८६ ।

६८—मत्स्यपुराण ७०·५२ ।

६९—महा० १३·१४९·४५ ।

७०—पाराशर सं० १५।२५४ ।

७१—ध्यायेत हरिं मदन गोप विलास वेषम् । (वही) ।

७२—'चञ्चलं मान्यथं कृष्णं तं भजे सर्व तो मुखम्' (शेष सं० 1V, ८) ।

७३—भक्ति में काम-शृंगार के उन्नत रूप का प्राधान्य है । शृंगारी लीलाएँ और गोपी लीलाओं की बेलि वैष्णव साहित्य में फैलती गई ।

७४—सू० सा० ४९३० ।

७५—चले सब गाइ चरावन ग्वाल (सू० सा० १०३१) ।

७६—गाइनि घेरि, टेरि बलरामहिं, ल्यावहु कहत अबिरियाँ ।
सूरदास प्रभु बैठि कदमतर खात दूध की खिरियाँ । (वही, १०८८) ।

७७—सुरभी गन सवलै आगें करि कोउ टेरत, कोउ बेनु बजावत (वही, ११२४) ।

७८—ऋ० १।६६।७; १।१९४।४; वाजसनेयी संहिता १७।४१ ।

७९—ऋ० १०।६०।३ ।

८०—कान्ह बाँधै कामरिया कारी, लकुट लिये कर घेरै हो । (सू० सा० १०७०) ।

८१—ऋ० १।१२०।८; ६।७४।५-७ ।

८२—बालक बच्छ हरे चतुरानन, ब्रह्म लोक पहुँचाए । सू० सा० १०५४ ।

८३—ऋ० ८।७।३७; ऐतरेय ब्रा० ८।२१।२३; शतपथ० १२।७।४।८ ।

८४—नवलख धेनु खरिक घर तेरैं, तू कत माखन खात पराए । सू० सा० ९२७ ।

८५—ऋ० १।३२।९ ।

८६—धौरी, धूमरि, राती, रौंछी बोल बुलाइ चिन्हौरी ।
पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती ।
दुलही, फुलही, भौंरी, भूरी, हाँकि ठिकाई तेती । सू० सा० १०६३ ।

८७—ऋ० ७।३२।२२; ८।१५।१ आदि ।

८८—वही १०।९५।६ ।

८९—सू० सा० १०५५; १०९८ ।

९०—तैत्तरीय सं० ७।७।३।१ ।

९१—ऋ० १·४३·२; १·१६२ २२; अथर्व० १·३१·४; २·२६·४।

९२—सू० सा० १४२९।

९३=शांखायन श्रौत सूत्र ६·२३·४, शतपथ० २·४·३·१३; ३·१·२·१३; ४·५·५·१०।

९४—गो=गोदुग्ध (ऋ० १।३३।१०); १।१७१।८ आदि। इससे गोमांस भी द्योतित है। (ऋ० १०।१६।७)।

९५—मैकडॉनल, संस्कृत डिक्शनरी।

९६—अथर्व १०।१०।३०।

९७—पंचविश ब्रा० १८·६·२६; मैत्री सं० १।११।९; काठक सं० १४।१०; २०९·८।।

९८—पंचविश ब्रा० २०।३।२।

९९—बौधायन धर्म शास्त्र, ३।९।१०। 'गो विदाम् पतिः' तथा गोविंद नाम विष्णु/कृष्ण के लिये हैं।

१००—क-माधौ जू यह मेरी इक गाइ।
अब आज तैं आप आगैं दई, लै आइए चराइ। सू० सा० ५१।
ख–माधौ नैंकु हटकौ गाइ।
भ्रमत निसि बासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ। वही ५६।
एक कुत्पत्ति इस प्रकार दी गई है: 'गाः मनः प्रधानानि इन्द्रियाणि तेषां विन्दः।' ब्रह्म वाचक है।

१०१ महा० १३।१४९।

१०२—ऋ० १।२२।१८। और भी द्दष्टव्य-दासपत्नी अहिगोपा अतिष्ठतः (ऋ० १·३२·११)।

१०३—'गो-पाय' (=गो की रक्षा) का विकास ९ गुप्-से हुआ (ऋ० ७।१०३।९; अथर्व १०।९।७।८; मैकडानल वैदिक ग्रामर' पृ० ३५८। इसका अर्थ पहले रक्षा करना और पीछे छुपाना हो गया।

१०४ राय चौधरी, अर्ली हिस्टरी आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० ४५।

१०५—गीता (१।३२;२।९) में तथा ब्रज के साहित्य में इस नाम का प्रचुर प्रयोग है। सू० सा० १६२५ आदि। पाणिनि ने इसकी व्याख्या के लिए स्वतंत्रसूत्र (३।१।१३८) दिया।

१०६—ऋ० ९।२।६९

१०७—गोपाल पूर्व तापनी, प्रथमोपनिषद्, ४ (ब्रह्मयोगी की टीका) महाभारत (५।७०) में भी 'गोविन्दो वेदनात् गवाम्' कहा गया है।

१०८—पृथ्वी का उद्धार करने वाले वराह का भी नाम गोविंद हो गया महा० आदि० २१।१२

१०९—ब्रह्म वैवर्त० प्रकृतिखंड, अध्या० २४

११०—विष्णु सहस्रनाम के गोविंद पद पर तारक ब्रह्मानंद की टीका।

१११—एक नाहिं भवननि तैं निकरी, तिनपैं आए परम कृपाला। सू० सा० १६२३

११२—अति अधिकार जनावत याते अधिक तिहारें हैं कछु गैया।

११३—W. Caland, Panchvuinsa Bra. (calculta 1931) P. 311

११४ · सूर सागर, ८८२

११५—अथर्व१ ७।२६।३ ; तै-तरीय सं० १. ३. ४

११६—अग्नि-घी (ऋ० ५.८.६) मित्र-वरुण-घी (ऋ० ५.६८.२)

११७—तै-तरीय सं० ३।२।६

११८—आपस्तंब श्रौत सूत्र २।१०।४

११९—शतपथ ब्रा० ७. २. ३. ४.

१२०—वही ६. ३. ३. १८

१२१—शतपथ ब्रा० १२. ८. ३. १२

१२२—मरीचि संहिता (विमानार्चना कल्पे), पटल ५९, पृ ३८१; भृगुसंहिता (खिलाधिकारः) १९।१९४

१२३—मरीचि संहिता, पृ० ३८१

१२४—भृगु संहिता १९।१९५ 'प्रसार्य हस्तं नृत्यन्तं हर्षोत्फुल्ल विलोचनम्'; 'नवनीत नृत्तरूपं कारयेत। मरीचि संहिता, पटल ५९, पृ० ३८१

१२५—सर्वाभरणभूषितं अंबरहीनं अंबराधार युतं नवनीतनृत्त रूपं कारयेत।' मरीचि संहिता, (वही,)

१२६—नारदीय संहिता, १३।२९९; नवनीतनटं वापि पूजयेत्तम थापिवा। (विष्वक्सेन, ३०/३

१२७—'नवनीताय नृत्यन्तं' पाद्मसंहिता (क्रियापाद) १८।३०

१२८—सू० सा० ७१७

१२९—शांडिल्य, १।१६।३१

१३०—विष्णु तंत्र, १८।३

१३१—पाद्म संहिता, १८।३०

१३२—विष्वकसेन संहिता, ३०।३

१३३—शेष संहिता, २६।५२

१३४—पाराशर संहिता, १५।२५४

१३५—हरि अपने आँगन कछु गावत।

तनक तनक चरनन सौं नाचत, मनहीं मनहिं रिझावत।

× × ×

माखन तनक आपने कर लै तनक बदन में नावत।

कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में लौनी लिए खवावत (सू० सा० ७६५)

१३६—कुषाण युग की एक मूर्ति 'गोवर्धन धारण' लीला की मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित है। कंबोडिया में अंगकोर बट में गोवर्धन-लीला है। चित्रकला भी इस अभिप्राय से भरी पड़ी हैं। [डा० राधा कमल मुखर्जी, फ्लॉवरिंग ऑफ इंडियन आर्ट, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९६४) पृ० ५६-५७]

१३७—सूर ने पहले इस लीला संदर्भ को, ७३ पदों में बाँधा और उसका कथात्मक विस्तार २२ पृष्ठों में किया।

१३८—ऋ० १।१५४।२

१३९—तैत्तिरीय ३।४।५।१

१४०—ऋ० ५।३२।२; १।८५।४, १०

१४१—एस० सी० रॉय, दी खाड़ियाज, (राँची, १९३७), पृ० ३१० (मुंडाओं द्वारा पर्वत पूजा); छोटा नागपुर में, क्रुक, पोपूलर रिलीजन, भाग १, पृ० ६२, २६०

१४२—हरिवंश अध्याय २१७

१४३—वही, २२२

१४४—वही २१८।३३

१४५—इस आदिम प्रभाव को गोंदा ने भी स्वीकार किया है; आस्पेक्ट्स आफ अर्ली विष्णुइज्म, पृ० ७५।

१४६—ऋ० १।१५४; अथर्व ७।२६।२

१४७—प्रत्तिरीय, ३।४।५।१

१४८—ऋ० ५।८७।१

१४९—मरीचि संहिता और भृगु संहिता में इसका वर्णन नहीं है।

१५०—कृष्ण रूपाण्य संख्यानि वक्तुं न शक्यानि तस्माद्यथेष्ट रूपं कारयेत्।
(मरीचि संहिता, पटल ५९)

अनन्त लीला ललित कृष्ण रूपाणि कारयेत्। (भृगु संहिता, १९।१९३)

१५१—नारदीय संहिता, १३।३९९

१५२—सू० सा० १४३७

१५३—वही, १४३९

१५४—वही, १४५५

१५५—Wilson Hall, The Vishnu Purana IV (London 1868) P. 313

१५६—जिसने पर्वत को आकाश में उठा लिया और उस पर्वत पर आकाश के जल को रोका।

१५७—'इन दो समानांतर प्रवृत्तियों में विष्णु (कृष्ण) को गोवर्द्धनधारी रूप में और इन्द्र को 'वृत्रासुर' रूप में चित्रित किया गया जो उपासना के कारण (कृष्ण-प्रति) हो जाना सम्भाव्य है।' [डा० वीरेन्द्र सिंह, हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास, पृ० ३६६]

१५८—अथर्व० २०।७।८१।२

२५६—जिसने पर्वत से क्रीड़ा की और पर्वत को अंतरिक्ष में उठाकर आकाश के जल को रोका।

१६०—महाभारत ३।१२।१८।

१६१—वही, ५।४८।८०।

१६२—वही, ५।४८।७०।

१६३—विष्णु पुराण, ५।२८,३०।

१६४—वही, ५।७७।

१६५—महा० २।१६८।८१;५।१६।१४;५।६८।४; बिष्णु० पु० में शंबर-बध कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न के हाथों से कराया गया है।

१६६—राधाकृष्णन, इंडियन फिलॉसफी, (लंदन, १६२७) I, पृ० ८७।

१६७—कल्पतरु बृच्छ तासौं मँगाए। सू० सा० ४८१२।

१६८—"""इन्द्र रह्यौ पाई परि""जद सपति मान कौं रतन कुण्डल दिए।""वही।

१६९—वही, ४८२७।

१७०—वही, ४८१६।

१७१—सू० सा० १६०२।

१७२—द्रष्टव्य, एच– राविन्सन, 'द गोल्डन लीजेंड ऑफ इण्डिया' की भूमिका।

१७३—प्रति यक्नाचष्टे अनृतमनेया अ द्विता वरुणौं मायीनः सात।

१७४—विवरण के लिए दृष्ट्व्य, डा० सत्येन्द्र, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का लोक-तात्त्विक अध्ययन, पृ० १४४-१४५।

१७५—श्री अमृत बसंत पंड्या, श्रीकृष्ण का असीरिया पर आक्रमण और विजय, [ब्रजभारती, पौष-फाल्गुन, २००६ वि०]

१७६—शतपथ १४।३।२।१; १।१।१।२२; वाजसनेयी संहिता।३३।६२

१७७—शतपथ० ३।२।१।१७; वाजसनेयी० ४।१०

१७८—शतपथ० ८।४।३।२०; ५।१।३।६।

१७९—महा० १२।३१३।३; १४१।४२।२७।

१८०—शतपथ० १०।४।२।२।

१८१—वही, ११।१।८।३

१८२—जेगोंद, पृ० ७८

१८३—मैकडानल, वैदिक माइथॉलॉजी, पृ० ११८; ऋ० १०।१८४।१; तैत्तिरीय० ५।६।६; शतपथ० ६।२।३।१

१८४—जे० गोंद, पृ० ७८

१८५—वही, पृ० ७६

१८६—तैत्तिरीय० १।१।३; शतपथ० ४।२।२।१०

१८७—तैत्तिरीय० ६।२।६।२

१८८—वही, १।७।४।४

१८६—पंचविंश ब्रा० १३।५।५

१६०—चल्यौ रिस पाइ अतुराइ तब धाइ कै, ब्रज जननि बन सहित जरि जाऊँ।
[सू० सा० १२०८]

१६१—वही, १२१२, १२१४

१६२—वही, १२१५।

१६३—सू० सा० ६६४

१६४—वही, ६६५

१६५—वही, ६६६

१६६—चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग रकत प्रवाह चल्यौ अधिकानी।
पाहन सिला निरखि हरि डार्‌यौ, ऊपर खेलत स्याम बिनानी।
[सू० सा० ६६६]

१६७—जिसने बल की गुहा में से गायों को निकाला। [डा० सत्येन्द्र, सूर की झाँकी, के पाचवें अध्याय में उद्धृत]

१६८—गिरिसमान तन अगम अति, पन्नग की अनुहारि।
हम देखत पल एक में मार्‌यौ दनुज प्रचारि। [सू० सा० १०४६]

१६६—चोंच इक पुहुमी लगाई, इक अकास समाइ। वही १०४५

२००—अगम तन विकरार। वही

२०१—पैठि बदन बिदारि डार्‌यौ, अति भए विस्तार। वही।

२०२—वृहदारण्यक उप० ५.५.१

२०३—छान्दोग्य ७।१०।१

२०४—वही

२०५—महाभारत ३।१८६।७

२०६—वही, १३।१४६

२०७—K. K. Hand iqui, Yashastilak and Indian Culture (Sholapur, 1949) P. 206.

२०८—महा० १३।१४६।६८; विष्णु पु० ६।४।४; सौर पुराण ५३।२६

२०९—वायु पु० ६७।२२

२१०—महा० ८।१७।१२; १८।४।६

२११—महा० १२।४७।६०

२१२—गर्ग संहिता (माधुर्य खंड, अध्याय, १६) में यमुना कवच और (सत्रहवें अध्याय में) यमुना का स्तोत-विस्तार किया गया है। इसी के अठारवें अध्याय में जप-पूजन के लिए पटल और पद्धति का वर्णन है।

२१३—वही, अध्याय १९

२१४—यमुना ने कृष्ण को पति-रूप में पाने के लिए खांडव बन में तपस्या की। फिर वे ब्रज में आई। गोकुल में, विशाखा नाम से, रास में सम्मिलित होने के लिए यूथ बनाया। (अग्नि० (गर्ग सं०) ३।१-४) कृष्ण के वामांग से यमुना का प्रादुर्भाव हुआ है। (वही, ३.२५.२९)

२१५—वैदिक वृत्र-विनाश भी जल की मुक्ति के लिए हुआ था। इस पर आगे विचार किया गया है।

२१६—महा० १२।५६।१३१

२१७—विष्णु का नाम ही पद्म है।

२१८—हरिवंश, ४२।२७ ; २२५

२१९—१२।४३।१४

२२०—पद्मिन्, पद्मनाम, पद्मपाणि > अरविंदाक्ष।

२२१—गोपाल तापिनी ५१।२२७

२२२—योगधारा में कमल का प्रतीकत्व 'ज्ञान' के संदर्भ में ही विकसित हुआ है।

२२३—विष्णु पुराण, ३।७३।२०

२२४—ऐतिरेय ब्रा० ८।५।४; शतपथ २-६-३-२

२२५—शतपथ ६-१-१-४; ९-२-३-५१

२२६—रस सम्भृतः। शत० ५-५-३-१,६.

२२७—शतपथ १२-४-१-११

२२८—बेद कमल मुख परसति जननी अंकलिए सुत रति करि स्याम।

सू० सा० ७७५।

२२९—मैकडोनल, वैदिक माइथोलॉजी, पृ७ ३७; कीथ, रिलीजन एण्ड फिलॉसफी, पृ० १०८; जे० एन० बनर्जी, वरशिप आफ साम्ब एमंग द अर्ली पांचरात्रिन्, (प्रोसीडिंग्स आफ इंडियन हिस्टारीकल कांग्रेस, ७ (१९४४) P. ८२

२३०—महाभारत १।८८।६

२३१—वही, ३।३।६०

२३२—कालिदास, रघु० १३।१

२३३—मत्स्य पुराण, १६६।१

२३४—वही, ८।४

२३५—विष्णु पुराण १।८।२१;

२३६—जे गोंद, पृ० २७

२३७—महाभारत, ३।३।५

२३८—अथर्व० १२-३; तैत्तिरीय० ५।७।१; शतपथ० ३।४।२।१५

२३९—भक्त पर करी कृपा श्री जमुना जू ऐसी।
छाँड़ि निज धाम विश्राम भूतल कियो प्रगट लीला दिखाई हो तैसी।
परम परमारथ करत है, सबन कों, देति अद्भुत रूप आप जैसी।
(नं० ग्रं०, पृ० २२८, पद १४)

२४०—नेह कारने जमुनाजी प्रथम आई।
भक्त की चित्तवृत्ति सब जानकैं हीं ता हितें अति ही आतुर धाई।
जैसी जाके मन हती इच्छा, ताकी तैसी सोध जो पुजाई।
(वही, पृ० ३२९ पद १७)

२४१—कौन पे जाति जमुनाजी बरणी।
सब दिन को मन मोहन हरत सो, प्रिय को मन ए जो हरणी।
इन बिना एक क्षण रहे न जीवन धन्य ब्रजचन्द्र मन आनंद करणी।
(रागकल्पद्रुम, पृ० १०६, पद ३३)

२४२—यमुना के साथ अब फिरत हैं नाथ।
× × ×
यमुने पिय को वश तुम कीने। (परमानंद दास, रागकल्पद्रुम, पृ० १०७, पद ४१, ४२)

२४३—'सोयाते श्री जमुना जी की सखी हैं।' लीला में इनका नाम कृष्ण वेसनि है। (चौरासी वार्ता)

२४४—मैकडॉनल, वैदिक माइथॉलॉजी, पृ० ५८

२४५—ऋ० ७।३४।६

२४६—ऋ० १।१०३।७; ४।१८।३। संभवतः अहि का अनुकूल रूप शेष है। उसका संबंध भी जल से है। महाभारत में अहि बुध्न्य ग्यारह रुद्रों में से एक माना गया है (८.६६.२) यह शिव का भी एक नाम है (महा० १३.१७.१०३) शेष कुबेर के समान है (महा० ५।११४।४) लोक वार्ता में भी सर्प स्वर्ण के अधिपति कहे जाते हैं।

२४७—जे गोंदा, पूर्वोद्धृत, पृ० ३०

२४८—ऋ० १।१५६।४; मैकडॉनल, पूर्वोद्धृत, पृ० १५६

२४९—ऋ० १०।१८०।२; ६।६९।१,३,६ ।

२५०—ऋ० १।२२।१९

२५१—वही ४।८।११; ८।१००।१२

२५२—वही ४।१२।२७

२५३ – त्रेधात्मानं वि न्यू अधत्ता । तैत्तिरीय सं० २।४।१२।३

२५४—शतपथ० ५।२।५।२; पंचविंश ब्रा० २०।१५।६

२५५—महा० ३।१०१।९

२५६—महा० ५।१०।१२,३७; १२।२८१।३१; १३।२८२।१०

२५७—हॉपकिंस, एपिक माइथॉलॉजी, पृ० १४०, २०४

२५८—हॉपकिंस, एपिक माइथॉलॉजी, पृ० १४०, २०४

२५९—ऐतरेय ब्रा०, ३.५० । इन्द्र की भलाई के लिए 'नरक' बध भी विष्णु ने किया । महा० ३।१४२।२२

२६०—ऋ० १।१५६।५

२६१—ऋ० १०।११३।२; २।२२।१

२६२—महा० १३।१४६।८७; रामायण ६।१२०।१८

२६३—हरिवंश, ५०।२६

२६४—डी० सेन, द बंगाली रामायण (कलकत्ता, १९२०) पृ० २१

२६५—हरिवंश, २२२ (३.३७) २

२६६ - डा० सत्येन्द्र द्वारा, सूर की झाँकी; पाँचवें अध्याय में उद्धृत ।

२६७—ऋ० २।१२।११ सायण ने इस विशेषण की व्याख्या 'आहंतरम्' (आक्रामक) के रूप में की है ।

२६८--असुर इंडिया, (JBORS, vol. XII,) पृ० ३५३

२६९—१।५९।६० । कद्रू असुरों से संबंधित कश्यप की पत्नी थी ।

२७०—१०।२८, २९

२७१—महा० १।४९।४०

२७२—सोमश्रवा नाग पुत्र था (महा० १।३।१५) पौरव राजा ऋक्ष ने नाग कन्या से विवाह किया (महा० १।९०।२४, ३९) अर्जुन ने उलूपी से विवाह किया (महा० १।२०६।१८) आर्यक नाग ने भीम को डूबने से बचाया ।

२७३—Vogel, Indian Serpent Lore, P. 635

२७४—महा० ३।४१।३७

२७५—R. L. Mehta, Pre Buddhist India, P. 415

२७६ --रामायण ४।४१।३७

२७७—Fergussion, Tree and Serpent worship in India (2nd ed.) ने इन्हें तूरानियन कहा है।

२७८—Vogel, Indian Serpent Lor, P. 3

२७९—शतपथ० ३।६।२।२; २।१।४।३०।

२८०—महा० १।५९।६०

२८१—काली उरग रहै जमुना में (सू० सा० ११४०) कालीदह (वही, ११४१) संभवतः काली ह्रद से ही विकसित है।

२८२—सू० सा० ११४१

२८३—गरुड़ त्रास तैं जौ ह्याँ आयौ। वही ११९१

२८४—गर्ग संहिता, वृन्दाबन खंड, अध्याय १३

२८५ - धनि रिषि साप दियौ खग पतिकौं, ह्याँ तव रह्यौ छपाइ। सू० सा० ११९१; रह्यौ आनि इहिं ठौर गरुड़ कैं त्रास गुसाईं। वही १२०७

२८६ --अति गँभीर धीर करि जानत संकर्षण निज भाइ। सू० सा० ११९६

२८७—गर्ग संहिता, वृन्दाबन०, अध्याय १३

२८८—पाद्म संहिता (क्रिया०) १८।२४-२७

२८९ —विषधर झटकी पूँछ फटकि सहसौ फन काढ़ौ। सू० सा०, १२०७

२९०—एक फूँक विष ज्वाल की, जल डूँगर जरि जाइ। वही

२९१ —'पुरतः पुरुषाकारं नागाकारं च पृष्ठतः।' पाद्मसंहिता (क्रिया० १८।२४-२७)

२९२ —गर्गसंहिता, बृन्दावन०, अध्याय १३।

२९३—सू० सा० ११९१।

२९४ —तब काली कर जोरि, कह्यौ प्रभु गरुड़त्रास मोहिं। वही १२०७।

२९५—वही, पद ११९७।

२९६ —नाथत ब्याल बिलंब न कीन्हौ।
पग सौं चाँपि घोंच बल तोरयौ, नाक फोरि गहलीन्हौ। वही, ११७५।

२९७—नटवर बपु काछे रहे, सब देखे वह भाई। वही १२०७।

२९८—फनफन-प्रति निरतत नँदनंदन। वही, ११८३।

२९९—वैखानस परंपरा की मरीचि संहिता (पटल, ५९) में तथा पांचरात्र परंपररा की पाद्मसंहिता (क्रिया० १८।२४-२७) में इस तत्त्व की विस्तृति है।

३००—सू० सा०, पद ११८२-११८४।

३०१—पार्श्व में अलंकृत नाग-पत्नियाँ भी थीं। भृगु संहिता १९।१९२।

३०२—'कर जोरे अहि नारि बिनय करि कहति धन्य अबिनासी।' सू० सा० ११८६।

३०३—उरगद्वीप कौं करि बिदा, कह्यौ करौ सुख जाइ। वही, १२०७। यह भी पुराणों में उल्लेख है (गर्ग संहिता, वृंदा० अध्या० १३) कि ब्रह्मा ने 'रमण-द्वीप' बनाया था। हो सकता है, 'उरग-द्वीप' यही हो। रमणद्वीप' में कालिय का निवास बतलाया गया है।

३०४—तैत्तिरीय संहिता ५।२।८।७

३०५—महाभारत (१३।१४६।१०१) में विष्णु को न्यग्रोध, उडुंबर तथा अश्वत्थ कहा गया है। अश्वत्थ इनमें सबसे प्रमुख है। (कुमार स्वामी, यक्ष, स (वाशिंगटन १६२८-३१) खड-१ अध्याय-११) कठोपनिषद्, (तृतीयवल्ली) श्लो० १) में अश्वत्थ को ब्रह्म और उसके कार्य का प्रतीक माना गया है।

३०६—गीता, १०।२६—विष्णु सहस्रनाम (महा० १३।१४६) में विष्णु के वृक्ष परक नाम भी हैं।

३०७—जे० गोंद, आस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म, पृ० १२

३०८—शतपथ ब्रा० १।२।५।१०

३०९—साप दग्ध ह्वै सुत कुबेर के, आनि-भए तरु जुगल सुहाए। सू० सा० १००४

३१०—सौर पुराण ४३।४०: विल्व, अपामार्ग, शमी तथा दूर्वा।

३११ - शतपथ (५. २. ४. १४) के अनुसार अपामार्ग से राक्षस-नाश होता है।

३१२—शमी का प्रयोग यज्ञाग्नि-प्रज्वलन के लिए किया जाता था, (वही, ६ २।३ ।३७)

३१३—नवरात्र में शमी की पूजा का विधान है। भरतपुर के राजा दशहरे पर शमी की पूजा करते हैं।

३१४—J. Eggeling, Sacred books of the East, P. 187

३१५—ऋ० १४२।८; अथर्व ६।१०६; तैत्ति० आरण्यक ५।१०।६; शतपथ० ७।४।२।१५

३१६—सिर पर दूब धरि बैठे नंद सभा मधि⋯। सू० सा० ६४६

३१७—शतपथ ७।४।१०,१२

३१८—दूब संबंधी लोकवार्ता के लिए द्रष्टव्य, बी० ए० गुप्ता, हिन्दू होलीडेज, एंड सेरेमोनियल्स (कलकत्ता १६१६) पृ० ३३

३१९—हरिवंश (१।५४।५५) 'उद्यानवन संम्पन्ना'; पद्मपुराण (पातालखंड, अध्या० ६६) में १२ बनों का उल्लेख है।

३२०—वराहपुराण १५३।३६-४०; विष्णु० ५।८।१; ब्रह्म पुराण १८६:१-१२

३२१—पद्मपुराण, पातालखंड, अध्याय ६६; वराह पुराण १५३।३६। विष्णु सहस्र-नाम में 'कुमुद' विष्णु का एक नाम है।

३२२—वराह० १७।१-३; १५३।३६ ।

३२३—विष्णु० पु० ५।६।२; महा० २।५३।८; हरिवंश २।१९।२३ में भण्डीर नामक न्यग्रोध वृक्ष का उल्लेख है ।

३२४—वराहपुराण १५६।१०-१४; १५३।४८-४६ ।

३२५—गोंद: अर्ली आस्पेक्ट ऑफ विष्णुइज्ज, विष्णु सहस्रनाम में विष्णु का एक नाम न्यग्रोध भी है ।

३२६—वि० पु० ५।२५।४ ।

३२७—पद्मपुराण (पाताल०), श्लो० ६१, ६४-६५ ।

३२८—अग्नि पुराण (गर्ग संहिता) वृंदावन खंड, १।६-६ ।

३२६—इसे वैजयन्ती भी कहा जाता है ।

३३०—गोपाल उत्तरतापिनी० ५६।२४२ ।

३३१—मैकडॉनल, वैदिक माइथॉलॉजी (Strassburg, 1897) पृ० ८५ ।

३३३—वसंत ऋतु के दो महीनों का नाम माधव है । उर्वराशक्ति के देवता काम का सहचर मधुमास है ।

३३४—महाभारत १३।१४६।३१ ।

३३५—पद्मपुराण के पाताल खंड में परिगणित विष्णु की २४ मूर्तियों में से एक माधव है ।

३३६—सूरसागर, १७१० आदि ।

३३७—ऋग्वेद १-२२-२०; १।१५४।४-५ ।

३३८—वही ३-५५-२० ।

३३६—महाभारत ३।२६१।३७; ५।१११।७, विष्णु पु० १।२।५१ ।

३४०—कठोपनिषद् ३-६ ।

३४१—इसका प्रमाण है प्रसिद्ध—मधुराष्टक ।

३४२—वृहदारण्यक उप० अध्याय २, ब्राह्मण ५ ।

३४३—वीरेन्द्रसिंह, हिन्दी काव्य में प्रतीक वाद का विकास । पृ० १०१ ।

३४४—ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्ण जन्म खंड, अध्याय ११० ।

३४५—ब्रह्मण्यो देवकी पुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः । आत्म प्रबोधोपनिषत् १; नारायणोपनिषत् ४ ।

३४६—गीता १-३५; २-१; २-४; ६-३३; ८-२ ।

३४७—ब्रह्मांड ३-७२; ५२-२०८; मत्स्य—७-१५; विष्णु० ३-७ ।

३४८—शतपथ ४-३-१-१४; ७-४-२-२६; गीता १-१४; १-३७; भागवत १-१५-१८ और विष्णु पुराण ५-२०-३५ में यह नाम आया है । विष्णु सहस्रनाम में यह ७२वाँ, १६७वाँ, तथा ७३५वाँ नाम है ।

३४९—शांकर ने इसकी व्याख्या करते हुए महाभारत को उद्धृत किया है।

३५०—माया: विद्याया: (ब्रह्मविद्याया:) पति: माधव:। वि० सहस्रनाम के १६७वें नाम पर शांकर भाष्य।

३५१—वि० सहस्र० ७२वें नाम पर शांकर भाष्य। महा० (५-७०-४) में भी 'माधव' को मौन, ध्यान और योग से ज्ञेय कहा है।

३५२—हरिवंश २७१-४८। शंकर ने इसको भी अपने पक्ष में उद्धृत किया है।

३५३—ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्ण जन्म खंड, अध्या० १११।

३५४—मा नास्ति धव: यस्म समाधव:।

३५५—अमरकोश में यह शब्द वसन्त वाचक भी है और विष्णु वाचक भी।

३५६—शतपथ० ४-१-३-९।

३५७—वृहत् पराशर होरा (१-२६-३१) के अनुसार अवतारों का संबंध गृहों से है। इस योजना में कृष्ण को चन्द्र कहा गया है।

३५८—'कहूँ न देख्यौ मधुबन माधौ।' सू० सा० १७१०।

३५९—ग्वालनि बनफल रुचि सों खाए। बहुरौ वृंदाबनहिं सिधाए। सू० सा० ११९७।

३६०—ऋ० १।१८८।८।

३६१—सरस्वती समृद्धिदान करती है (मैकडॉनल, वैदिक माइथॉलॉजी, पृ० ८६) अग्नि श्रीदान करता है (श्रीणाम् उदारो धरुणो रयीणाम्, ऋ० १०।४५।५) ५ पूष और श्री का संबंध है (ऋ० ६।४८।१९); आश्विन+श्री (ऋ० १।१३९।५) सोम+श्री (वही ९/९४।४)।

३६२—ऋ० १।१६६।१०; ५।५७।६।

३६३—वही ७।७२।१।

३६४—वही ५।६१।१२; ७।१५।५।

३६५—ऋ० १।४६।१४; ४।४४।२; ५।२८।४; ६।६६।४।

३६६—मैकडॉनल, वैदिक माइथॉलॉजी, पृ० ४८।

३६७—ऋ० ४।१०।५; ८।७।७५; १०।११०।१६।

३६८—ऋ० ४।३६।७।

३६९—श्री शब्द जिन स्तुतियों में आया है, वहाँ 'दृश्' धातु से व्युत्पन्न शब्द आये हैं। इससे प्रकट-प्रकाशित होने का भाव सिद्ध है (ऋ० ७।१५।५; २।१।१२; १।१२२।२)।

३७०—अथर्व० १२।१।६३।

३७१—ऊर्ज (पौष्टिक भोजन), द्रविण (धन, द्रव्य) (अथर्व० १०।६।२६); आज्य

(=यज्ञघृत), बल, वर्चस् (लस्टर) भूति, वानिज, आदि (अथर्व० १०।६। ६-१७) दुग्ध, रस, स्फाति, प्रजा, पशु, कीर्ति, यश, तथा संविद् के साथ भी (वही, ६।६।३६)।

३७२— शतपथ० २।१।४।६।

३७३— शतपथ० १-२-२-३; सामविधान ब्रा० ३-२-६; जैमिनीय ब्रा० १-११७; गोपथ० १-५-४।

३७४ —शतपथ० १२-७-३"१३; ८-१-२०।

३७५—शतपथ० ६-१-१-४; ९-२-३-५१; ५-५-३-१, ६; ऐतिरेय० ८-५-४; शतपथ २-६-३-२।

३७६ – श्री=गाय (शतपथ १-८-१-३६); श्रीगाय, घोड़ा (ऐतरेय आरण्यक ५-१-६) श्री=लोमश (तैत्तिरीय उपनिषद्; मोनियर विलियम्स, सं० इंग० डिक्श०)।

३७७— शतपथ १२-४-१-११।

३७८—अश्वमेध से पूर्व घोड़े का लेपन यज्ञकर्त्ता की पत्नियाँ करती थीं, क्योंकि वे श्री के रूप हैं। (शतपथ० १३-२-६-७)।

३७९ – शतपथ० ४।१।३।९।

३८०— शतपथ० ११-१-६-२३।

३८१— शतपथ० १-४-३६।

३८२—शतपथ० १२-४-१-११; जैमिनीय ब्रा० १-११७।

३८३—शतपथ०; १२-४-१-११।

३८४—शतपथ० ८-६-२-१; लक्ष्मी=बृहतीछन्द (शांखायन ब्रा० २८-७।

३८५—गोंद, पूर्वोद्धृत, पृ० १८७।

३८६— शतपथ० ६-७-३-७; १३-२-९-१।

३८७—शतपथ० २-३-२-११ में दोनों साथ-साथ उल्लिखित हैं।

३८८—जे० गोंद, पृ० १८६।

३८९—शतपथ० १३-१-५-१; तैत्तिरीय ब्रा० ३-९-१४-१।

३९०—Dowson, A class. Dict. of Hindu Mythology (London, 1928) P. 176.

३९१— इससे सद्यता, हरीतिमा, सजीवता का द्योतन होता है। 'गंध द्वारा' में पृथ्वी का प्रतीकत्व है।

३९२—श्रीसूक्त, १७। हाथियों की चिंघाड़ को कड़कते बादलों का प्रतीक माना जाता है।

३६३—वही, २८।

३६४—ऋग् विधान, २।१७।६।

३६५—लक्ष्मी की व्युत्पत्ति 'लक्ष' से मानी जाती है : अर्थ—देखना, समझना, लक्षण बतलाकर बोध कराना।

३६६—जे गोंद, अर्ली आस्पेक्ट आफ विष्णुज्म, पृ० २१४; ऐतिरेय ब्रा० ८।५।४; शतपथ० १३·२·६·१६।

३६७—तैत्तिरीय आरण्यक, १०·१·४३।

३६८—अत्रि संहिता, २।३७; ४।२२; 'देवस्य दक्षिणे पार्श्वे श्रीयम वामे महीं तथा।'

३६९—भविष्यपुराण, २८।५८।

४००—महा० १३।११।१४।

४०१—कीर्ति, द्युति, पुष्टि, सरस्वती, नंदा, हरिद्रा, शष्टी, समृद्धि, जया, कामा आदि लक्ष्मी के रूप ही माने गये। अप्सरा=लक्ष्मी (रामायण, ५।२२।३२)।

४०२—विष्णु पुराण १।६।१००। पांचरात्र (नारदीय सं० २८।३८-३६ तथा विष्वकसेन सं० १८।४८-४६) में भी आविर्भाव इसी प्रकार है।

४०३—लक्ष्मी+अग्नि जातवेद (श्री सूक्त, १, १३) पुरुष-प्रिया (वाजसनेयी संहिता, ३१।२२) पुरुष=प्रजापति, ब्रह्मा, सूर्य। कुबेरप्रिया (महा० २।१०।१६; नारद पुराण ८४।१२) धमदेव प्रिया (विष्णु पुराण १।७।२१; महा० १।६६।१३) इन्द्र+लक्ष्मी (महा० १२।२२८।८२; १२·२२५·१) असुरों को छो छोड़कर और वलि को छोड़ कर वह इन्द्र के पास आती है।

४०४—रामायण ६।५०।२५।

४०५—महा० १।१६७।१; मार्कंडेय पुराण (५।२४) में भी इन्द्र-पत्नी के द्रौपदी बनने की बात मिलती है।

४०६—संतति की (अथर्व० १४·२·१५·२१), गाय-गव्य की (वही २·२६·१०) देवी के रूप में यह मान्य है।

४०७—विश पत्नी (ऋ० २।३२।६), स्कन्द पत्नी (महा० ३।२२६।५०; ६।४६।६४); वायु पत्नी कर्दम की विवाहिता, पीछे सोम के पास (मत्स्य० २३।२३) तथा इन्द्र पत्नी (अथर्व० ७।४६।३) है।

४०८—अथर्व ७।४६।३।

४०९ शतपथ १२।८।३।१८; कात्यायन श्रौत सूत्र १६।४।१४।

४१०—मानव गृह्य सूत्र १।११।१८; सरस्वती=विष्णु / कृष्ण की वाणी (महा० ६।६५।६१) पंचविंश ब्राह्मण (२।३।६४) में विष्णु प्रिया।

४११ पी० एन० श्री निवासाचारी, द फिलॉसफी आफ विशिष्टाद्वैत, (आड्यार, १९४६) पृ० १६६। इसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी का विवाह भी प्रति वर्ष होने की प्रथा थी।

४१२—महा० १३।१४९। विष्णुसहस्रनाम में श्रीमतामृवर, श्रीनिधि, श्रीधर, श्रीद, श्रीनिवास, आदि नाम भी हैं।

४१३—विष्णु पुराण १।९।१०४।

४१४—महा० २।६१।४४।

४१५—राय चौधरी, पृ० १७७।

४१६—अथर्व० १२।१।१०।

४१७—मानव गृह्य सूत्र, १२।१।१०।

४१८—महाभारत, ११·३·२१।

४१९—श्रीसूक्त, २५; महा० १३।१४९।११९।

४२०—विष्णु स्मृति १।४९; मत्स्य पुराण २४८।१२।

४२१ एम० एस० बोस, द पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट ऑफ बंगाल, (यूनीवर्सिटी आफ कलकत्ता, १९३०, पृ० १५८)।

४२२—एच० के० शास्त्री, साउथ इंडियन इमेजेज आफ गॉड्स एण्ड गॉडेसेज (मद्रास, १९१६) पृ० १३९; ईश्वर सं० (९।११६-१३८) पारमेश्वर सं० (११।११९।१४१) ईश्वर सं० (११।१४१-१७१) में भी देवियाँ हैं।

४२३—ईश्वर संहिता, ४।१००; परवासुदेव लक्ष्मी से अभिपूजित है, (विष्वकसेन संहिता, ११।२।

४२४ - वही, ४।१०२।

४२५—पाराशर संहिता १३।९९।

४२६ - विष्वकसेन संहिता, ११।१३। तुष्टि और पुष्टि विष्णु की आठ शक्तियों में से हैं।

४२७—मरीचि संहिता, पटल-६०; भृगु संहिता १९·२१४-२२०।

४२८—मरीचि संहिता, पटल-६०; भृग संहिता १९।२०३–२१३।

४२९—नारद संहिता, ३।२८९।

४३०—नारायण की मूर्ति (पाराशर संहिता, १३।१५,२६) तथा मधुसूदन की मूर्ति (वही, १३।४१-४२)हृषीकेश (पाराशर, १३।७४) के साथ भी श्री भू का द्वय संबंध है।

६३१—'तिष्ठतं रुक्मिणी सत्यभामाभ्यां सहितं प्रभुम्।' पाद्म संहिता, (क्रियापाद) १८।२; रुक्मिणी दक्षिणे पार्श्वे सत्यभामामथोत्तरे (वही, १८।७)।

४३२—विष्णु तंत्र १८।३।

४३३—नारदीय संहिता १३।२८६ ।

४३४—वही, १३।२६६ ।

४३५—मरीचि संहिता यां श्री विमानार्चनाकल्प : पटल ५६; भृगु संहिता (खिलाधिकार:) १६।१६२-१६६ ।

४३६—मरीचि संहिता, पटल ५६, भृगु संहिता १६।१७२, १७३ ।

४३७ लक्ष्मी के मूर्त सौन्दर्य का बिंब इन विशेषणों से बनाया जा सकता है : सर्व लक्षण संयुक्ता, पद्महस्ता, सर्वाभरण भूषिता, चारुकुंडला, हास्केयूर भूषिता, पीनोन्नत पयोधरा, प्रबुद्धोत्पल्न बिस्तीर्ण लोचना, सुस्मितानना, रमणीयालका, रक्ताधर पल्लवा, कृष्ण कुंचितकेशा, मुक्ताफलाद्विजा, अब्ज कर्णिकोदर मध्यगा, मेखलादाम मंडिता, पीनतुंग घनस्तनी, अर्द्धचन्द्र ललाटा, प्रथमेवयसस्थिता जैसे विशेषण पांचरात्र संहिताओं में मिलते हैं। दृष्टव्य विष्वकसेन सं० (२०।१८-२४), हयशीर्ष (आदि० १८।१-१७) विश्वामित्र सं० (२२।५७-५६), लक्ष्मी तंत्र (३८।२६-३५) ।

४३८—सत्यभामा और भू दोनों की स्थिति वाम पार्श्व में हैं (विश्वामित्र सं० २२।५७-५६) ।

५३६—अथर्व० ७।२६।८, वाजसनेयी सं० ५।१६, तैत्तिरीय सं० १.२.१३.२ ।

४४०—अथर्व० ७।२६–यह खंड यहाँ प्रजापति के लिए निवेदित है। पीछे विष्णु के लिए अभिप्रेत होगया। विष्णु और त्वष्टर से 'द्रविणं' की याचना की जाती है। अथर्व० ७।१७।७ ।

४४१—७।१००।२ 'सुमतिं विश्व जन्याम् ।'

४४२—ऋ० सूक्त ६७, ६६, तथा सूक्त १०० में इसकी प्रतिध्वनि है। कुछ मंत्रों में इन्द्र भी अभीष्ट है ।

४४३—तैत्तिरीय सं० १।६।४।१ ।

४४४—वही, ५।७।२।२ ।

४४५—जे० गोंद, पृ० २० ।

४४६—ऋ० १।२२।८ ।

४४७—महाभारत १३।१४६ ।

४४८—वही, १३।१४६।८७ ।

४४६—विष्णु पुराण, १।८।२५ ।

४५०—महा० १३।१४६।१०६ : 'स्वस्तिकृत' भी कहा गया है ।

४५१—महा० ५।१०७।१८ ।

४५२—महा० १३।१४६ ।

४५३—ऋ० २.१.१४

४५४—ऋ० १.५.११ (हस्ते दधानो)

४५५—ऋ० ३.३.३१ (आद्ये नवोधुनयतानु)

४५६—ऋ० ६.३.२७ (व्रलेगावो०); अथर्व० २०-९-१०९

४५७—ऋ० ५.५.२ (यद्गोपावदिति०)

४५८—वही १.२.२५

४५९—ऋ० २.२-२६ ('व्रजं च विष्णुः सखि वां०' तथा दाधार दक्षमुत्तमम्' पद इसके वाचक है)

४६०—ऋ० ८.८.२४; ४.६.२५



६ / युगल केन्द्रीय वस्तु दार्शनिक वस्तु संक्रमण

प्रास्ताविक

यदि आधिदैविक वस्तु का आरम्भिक संक्रमण-विंदु वेद में लक्षित किया जा सकता है, तो दार्शनिक वस्तु का प्रस्थान-विंदु मुख्यतः उपनिषद् में मिलता है। जहाँ वैदिक 'पुरुष', इन्द्र और विष्णु 'गोपाल' या 'गोपी कृष्ण' में संक्रमित होते हैं, वहाँ औपनिषदिक 'ब्रह्म' का रूपांतरण रसरूप कृष्ण में होता है। इस संक्रमण क्रिया के विधायक तत्त्व वेदांत, सांख्य, योग और तंत्र जैसी दार्शनिक पद्धतियों में प्राप्त होते हैं। इनके आधार पर 'रस' (=ब्रह्म/कृष्ण) विविध प्रक्रियाओं में होता हुआ निकुञ्ज-विलासी हो उठता है। 'गोपाल' और गोपी कृष्ण का लीला क्षेत्र 'ब्रज' था। इस अध्याय में दार्शनिक वस्तु के संक्रमण-क्रम पर विचार किया गया है।

१- दार्शनिक वस्तु का संक्रमण

१.१ एक, अद्वैत>दो, द्वैत

भारतीय दर्शन में तात्त्विक दृष्टि से 'एक' अथवा 'अद्वैत' की प्रतिष्ठा मिलती है। 'एक' या 'अद्वैत' की स्थिति से जागतिक 'वस्तु' या काव्य वस्तु का प्रस्फुटन संभव नहीं हैं। जब शांकर मत ने निर्विशेष अद्वैत की विचारधारा को बौद्धिक दृष्टि से चरमस्पर्शी[1] बना दिया, तब देश की दार्शनिक मेधा ने जीवन के रागात्मक संस्पर्शों का संबल लेकर 'एक' या 'अद्वैत' के दो या अनेक में परिणत होने की लीलात्मक स्थिति के यथार्थ की प्रतिष्ठा की। निर्विशेष अद्वैत के दार्शनिक 'आदर्शवाद' के प्रति लीलात्मक यथार्थ की प्रतिक्रिया से ही चतुस्संप्रदायों का उदय प्रेरित और अनुप्राणित है। यह प्रतिक्रिया ग्यारहवीं से तेरहवीं शती तक चलती रही।[2] इसमें शांकर अद्वैतवाद की स्पष्ट अस्वीकृति है। यही वैष्णव ब्रह्मवाद की स्थापना है।[3] इसकी प्रेरणा के बीजों का संधान उन्हीं स्रोतों में किया गया जिन पर शांकर अद्वैतवाद आधारित था। 'एक या 'अद्वैत' के रागात्मक विकास-क्रम पर संक्षिप्त दृष्टिपात ब्रजभाषा के भक्तिकाव्य की वस्तु की संक्रमण-प्रविधियों के बोध की दृष्टि से असंगत नहीं होगा।

एक या अद्वैत की स्थिति वैदिक साहित्य में पुरुष, उपनिषद् में ब्रह्म और वैष्णवागम में परविष्णु के रूप में मिलती है। इन्हीं का संक्रमण 'कृष्ण' में हुआ है।

१.२ 'पुरुष'>पूर्णावतार : अन्तर्यामी=कृष्ण

वैदिक साहित्य में मूलसत्ता की तात्त्विक एकता, अखंडता और पूर्णता का द्योतक शब्द 'पुरुष' है।[४] 'विराट' शब्द पुरुष की व्यापकता का द्योतक विशेषण है। 'कला' (=शक्तिमात्रा) शब्द के माध्यम से उसकी 'पूर्णता' का कथन किया गया: सोलह कलाएँ=पूर्ण स्थिति : 'पुरुष' सोलह कलाओं से युक्त।[५] उपनिषद् में जागतिक संदर्भीय विराट की झाँकी यह मिलती है : अग्नि=मस्तक; चन्द्र-सूर्य=नेत्र; दिशाएँ= कान; वेद=वाणी; वायु=प्राण; विश्व=हृदय; पैर=पृथ्वी[६]। इसकी व्याप्ति ब्रह्मांड के समान ही, 'पिंड' में भी है। वेद में देहस्थ ब्रह्म की प्राप्ति का भी संकेत मिलता है।[७] वह मानव शरीर में भी समाया हुआ है।[८]

पौराणिक कल्पना में, यही आद्यावतार है।[९] इसी का विराट रूप सृष्टि में परिलक्षित होता हैं।[१०] भक्ति के आचार्यों की विचार-पद्धति में भी विराट पुरुष का अस्तित्व मिलता हैं। श्री यामुनाचार्य जी की कृति 'महापुरुष निर्णय' में वैदिक पुरुषसूक्त का ही सार है। निंबार्क संप्रदाय में पुरुष-विकास की स्थितियों के द्योतक शब्द मिलते हैं : पुरुष=कारणार्णवशायी; गर्भोदशायी (=सर्वान्तिर्यामी) तथा क्षीरोदशायी (=अंतर्यामी)[११] वल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मजीव विचार में 'पुरुष' का समावेश किया।[१२] परवर्ती विचारकों में भी इस तत्त्व की स्थिति मिलती है।[१३]

इस विकास क्रम में 'अन्तर्यामी' और 'सोलह कला' शब्द सौन्दर्यतात्विक सम्भावनाओं से युक्त हैं। ब्रजभाषा के भक्ति साहित्य के नायक 'कृष्ण' में इन्हीं के आधार पर 'पुरुष' का संक्रमण मिलता है। पांचरात्र में पर, व्यूह, विभव, अर्चा और अन्तर्यामी की कल्पना मिलती है।

कुछ अवतार पूर्णावतार माने जाते हैं।[१४] कुछ अवतारों (वराह आदि) में क्रिया का प्राधान्य है और कुछ (व्यास आदि) में ज्ञान का।[१५] कृष्ण में इन दोनों का सहविलास है।[१६] इस प्रकार उनकी पूर्णता सिद्ध की जाती हैं। ब्रह्मा इसी पूर्णावतार के चरणों पर गिर पड़ता है।[१७]

पूर्णावतार कृष्ण के भी तरतम स्तर हैं : द्वारका, मथुरा और गोकुल के कृष्ण को क्रमशः पूर्ण, पूर्णतर तथा पूर्णतम कहा गया है।[१८] पुराणों में भी पूर्णतम अवतार की

कल्पना मिलती है।[१९] शंकर ने जिस कृष्ण को अंशावतार कहा था[२०], वह भक्ति-सन्दर्भ में पूर्णतम हो गया।

भागवत में मुख्यतः कलावतार का विस्तार है।[२१] कृष्ण की तुलना में अन्य अवतारों को अंश या कलावतार कहा गया।[२२] सोलह कलाएँ पूर्णता की द्योतक हैं। भागवत के अनुसार आविर्भाव के समय 'पुरुष' में सोलह कलाएँ थीं।[२३] कृष्ण भी सोलह कलाओं से पूर्ण अवतार मान्य हुआ। 'सूर' ने इसी रूप में कृष्ण का उल्लेख किया है।[२४] अन्य कवियों ने भी ऐसे उल्लेख किये हैं।[२५]

महाभारत[२६], गीता[२७] तथा भागवत[२८] में कृष्ण के जागतिक रूप की सूचना मिलती है। ब्रजभाषा के कृष्णभक्त कवियों ने विराट दर्शन के लिए अवसर निकाले हैं। सूर की यशोदा शिशु कृष्ण के मुख में ब्रह्मांड दर्शन करती है।[२९] कोटि ब्रह्मांडों को भी कृष्ण आत्मसात कर लेता है।[३०] उसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्मांडों का निवास है।[३१] गोवर्द्धन पूजा के समय सहस्रभुज कृष्ण का दर्शन हुआ।[३२] नन्ददास के कृष्ण में भी अखिल ब्रह्मांड की स्थिति है।[३३]

जहाँ भागवत ने यह कहा कि आविर्भाव के समय 'पुरुष में सोलह कलाएँ थीं[३४] वहाँ कृष्ण को भी सोलह कला वाला बतलाया गया। कृष्ण की तुलना में अन्य अवतार अंश या कलावतार हैं।[३५] इस विचारणा में कृष्ण पूर्णावतार हैं।[३६]

कृष्ण अन्तर्यामी रूप से घट-घट में व्याप्त हैं।[३७] अन्तर्यामी शब्द सूर ने अनेक बार प्रयुक्त किया है।[३८] इस अन्तर्यामी ने गोपियों के मन की बात जान ली।[३९] नंददास जी ने उसे सर्वान्तर्यामी कहा है।[४०] कृष्ण समझ गये कि गोपियाँ जल में क्यों खड़ी हैं, और वे जल में ही प्रकट हो गये।[४१] सबके अन्तरजामी हरि (पद, १६०२), तुम हो अन्तरजामी, कन्हाई, (पद १६४०) आदि से सूर ने इसी मत की ओर स्पष्ट संकेत दिये हैं। नन्ददास जी ने भी अन्तरजामी सामरो[४२] कहा है। अन्तर्यामी तत्व का लीला परक प्रयोग भी इन्हीं उद्धरणों से व्यक्त होता है।

१.२१२ ब्रह्म > कृष्ण

सूरदास ने कृष्ण को पूर्ण परब्रह्म कहा है।[४३] नन्ददास के कृष्ण स्वयं अपने को परिपूर्ण कहते हैं।[४४] यशोदा के घर इसी पूर्ण परमानन्द का जन्म हुआ।[४५] सूर ने कंसबध प्रसंग में 'ब्रह्म' और कृष्ण की एकता का अनेक बार कथन किया है।[४६] किंतु साहित्य में प्राप्त ब्रह्म औपनिषदिक ब्रह्म का लीला सन्दर्भीय ब्रह्म ही है। ब्रह्म के साहि-

त्यिक वस्तु के केन्द्र रूप में संक्रमित होने की कुछ प्रविधियों पर आगे विचार किया गया है।

१.३ निषेध > विधि, विधि + निषेध

औपनिषदिक निर्विशेष ब्रह्म का अभाव मूलक या निषेधात्मक विशेषणों के द्वारा निरूपण मिलता है : निर्गुण, निराकरण, निरुपाधि, अनादि, अनन्त, अगोचर आदि इसी प्रकृति के विशेषण हैं। 'सर्व' पर आधारित विधिपरक विशेषण भी इसके लिए प्रयुक्त मिलते हैं : सर्वात्मा, सर्वान्तर्यामी, सर्वकार्यअधिष्ठाता, सर्वसाक्षी, सभी को चेतना देने वाला।[४७] तीसरे प्रकार की विशेषण योजना विधि और निषेध परक विशेषणों को जोड़ कर सिद्ध की जाती है : बिना अंगांग के ही, वह गतिशील है; बिना इन्द्रियों के ही वह सब कुछ ग्रहण करता है।[४८] विषमान्वय की प्रविधि भी घटित हुई : वह चलता भी है और नहीं भी चलता, वह पास भी है और दूर भी है[४९]; वह है भी और नहीं भी है। इन विशेषण परक और क्रिया परक विषमान्वयों के द्वारा ब्रह्म की 'अप्रकृत' स्थिति और 'पूर्णता' प्रतिपादित की गई। अनन्वय शैली का भी प्रयोग किया गया : 'वह है तो सही, पर जैसा का तैसा।' अभावमूलक विशेषण जहाँ सौन्दर्यतात्विक और शैली-तात्विक दृष्टि से मूक हैं, वहाँ भाव मूलक विशेषण इन दृष्टियों से सवाक् ओर संभावना पूर्ण हैं। इस विचारणा के अनुसार अद्वैत सत् में सर्वभूत की सत्ता निहित है : सबका उसी से आविर्भाव और उसी में तिरोभाव है : ब्रह्म सर्वकारण है।

१.४ अकाम > सकाम

सम्पूर्ण सृष्टि काम (=इच्छा शक्ति) से ही सृष्ट और संचालित है। जगत के आरम्भ में काम शक्ति ही थी। इस प्रकार काम शक्ति का महिमा गान श्रौत साहित्य में मिलता है। अथर्व में काम-संकल्प का चरम है।[५०] एक और विचार विंदु यह है : प्रथम स्थिति में एक शक्ति (=मन का वीर्य) थी। उसी पर काम आरूढ़ हुआ। असत् का सत् से साहचार्य हुआ।[५१] इस प्रकार दो विषम पदार्थों की संयोग दशा 'मधुर' स्थिति है।[५२]

विराट पुरुष में इच्छा शक्ति का संचरण होता है।[५३] इसी इच्छा शक्ति का विलास 'लीला' है।

वेद ने ब्रह्म की 'इच्छा'[५४] और कामना[५५] का उल्लेख किया है। भगवान 'लीला रस समुत्सुक' है।[५६] अद्वैत ब्रह्म स्वेच्छा से दो होता है। इसीलिए युगलोपासक

हरिदास-संप्रदाय का दार्शनिक नाम इच्छाद्वैत भी रहा ।[५७] सृष्टि से पूर्व ब्रह्म एकाकी था । 'सत्' इस स्थिति को त्याग कर स्वेच्छा से द्विधा विभक्त हुआ ।[५८] पांचरात्र ने परवासुदेव की शक्ति, लक्ष्मी की दो इच्छाओं का कथन किया है : सिसृक्षा (अर्जटू क्रिएट) तथा सुषुप्सा (अर्ज टू स्लीप)[५९] पहली में सृष्टि का बीज है और दूसरी में शक्ति के नारायण में विलीन हो जाने का सिद्धान्त है ।

जहाँ इच्छा के विकास का प्रथम विंदु 'सिसृक्षा' है, वहाँ दो और इच्छा विंदु माने जाते हैं : युयुत्सा 'युद्ध की इच्छा' तथा रिरंसा 'आस्वादेच्छा ।' इन इच्छाओं का प्रतिफलन रक्षणपरक और रागपरक लीलाओं में हुआ । आस्वादेच्छा के साथ क्रीड़ा और आनन्द के तत्त्व[६०] संबद्ध हैं । लीला के लिए भी मूल तत्त्व में इच्छा होती है ।[६१] एक विचार यह है कि कृष्ण की रमणेच्छा ही राधा रूप में प्रकट हुई ।[६२]

परब्रह्म पुरुषोत्तम और अक्षर ब्रह्म[६३] के बीच विभाजन रेखा इच्छा तत्त्व को लेकर ही खींची जाती है । 'जब पुरुषोत्तम को इच्छा मात्र होती है, तब अंतःकरण में सत्त्व का समुत्थान होता है और उससे आनंदांश विरोभूतवत् हो जाता है । पुरुषोत्तम वस्तुतः लीला की इच्छा मात्र करता है, इच्छा में व्यापृत नहीं होता । अतः पुरुषोत्तम सदैव अतिरोहितानन्द है और अक्षर ब्रह्म, इच्छा में व्यापृत हो जाने के कारण सत्त्व समुद्भूत होने से तिरोहितानन्द हो जाता है ।[६४] इच्छा और कार्य व्यापृति से ही, वह लीलामय हो उठता है । भक्त इसी का गायन करता है । यही 'काव्यवस्तु' का केन्द्र है । श्रुति ने भी भगवान को लीला के लिए इच्छावान कहा है–'द्वितीयामैच्छत् सहैतावानास'।

१.५ अद्वैत>द्वैत

अद्वैत क्या है ?—इस पर भारतीय दर्शन में मतैक्य नहीं है ।[६५] 'एक' की स्थिति तात्त्विक है । तत्व के संबन्ध में अन्तिम रूप से कुछ भी कहना मानवीय सीमाओं में सम्भव नहीं है ।[६६]

औपनिषदिक 'अद्वैत' और वैदिक 'एक' में अन्तर है । वैदिक 'एक' का प्रत्यय जागतिक अनेकता के सन्दर्भ से ही प्रस्फुटित हुआ है । अनेक रूपात्मक जगत के परिज्ञान के पश्चात् प्रकृति की अनुकूल शक्तियों को देवत्व प्रदान करना, मनुष्य की चुनाव प्रक्रिया का सूक्ष्मांश है । इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप बहुदेव उठ खड़े हुए । अनेकता के पीछे 'एक' की कल्पना मनुष्य के चिंतन का परिणाम है । बहुदेव वस्तुतः उसी 'एक' के विविध नाम रूप हैं ।[६७] वही सर्वत्र व्याप्त है ।[६८] उसके साथ मानवीय सम्बन्ध घटित हुए : वह हमारा बन्धु, पिता आदि है । उसी मोक्षदाता के प्रति हमारी प्रार्थनाएं

भारत है।[६९] इस प्रकार 'एक' की कल्पना में कुछ गुण और सम्बन्ध भावनाओं का समावेश हुआ। इसी एक का शुद्ध ज्ञानपरक विकास औपनिषदिक अद्वैत ब्रह्म में माना जा सकता है और भावपरक विकास भक्ति दर्शन में।

भक्ति के सभी सम्प्रदायों में मूल अद्वैत की मान्यता तो मिलती है, किन्तु 'लीला' विलास की सिद्धि के लिए यह तत्व द्वैत हो जाता है। सृष्टिपरक और रागपरक लीलाएँ इसी विकरण की परिणाम हैं। भावित द्वैत और ज्ञेय अद्वैत में आध्यात्मिक दृष्टि से अभेद ही है। जहाँ परमात्म-ज्ञान से पूर्व का द्वैत भाव जीव के बन्धन का कारण बन जाता है, वहाँ इस ज्ञान के उदय के पश्चात्, भक्ति की परिणति के लिए भावित द्वैत अद्वैत से भी श्रेष्ठ माना जाता है।[७०] दूसरे शब्दों में, रस-साधना में गृहीत द्वैत ज्ञानवादी अद्वैत से भी श्रेष्ठ बन जाता है।

भक्ति मूलक द्वैत की चरम परिणति साधनात्मक और साध्यपरक कान्त-कान्ता भाव या मधुर भाव में हुई। यही दार्शनिक वस्तु की साहित्यिक वस्तु में संक्रमिति है। जो दाम्पत्यपरक अप्रस्तुत सूक्ष्म की अभिव्यक्ति की एक शैली थी, वही कालान्तर में भक्तिसाहित्य की 'प्रस्तुत' वस्तु में परिणत हो गई।

१.५१ द्वैत>दाम्पत्य (=अप्रस्तुत)

दाम्पत्य परक अप्रस्तुत की परम्परा बड़ी दीर्घ और व्यापक है। एक ओर तो इसके द्वारा साधक-साध्य-सम्बन्ध व्यक्त किया गया[७१], दूसरी ओर ब्रह्म और उसकी शक्ति के परस्पर विलास को इसके द्वारा स्पष्ट किया गया। सृष्टि दर्शन में दाम्पत्य अप्रस्तुत अधिक शक्तिशाली हुआ।[७२] रमणेच्छा के कारण ब्रह्म द्विधा विभक्त हुआ और दाम्पत्य रमण सम्पन्न हुआ।[७३] दाम्पत्य अप्रस्तुत की दार्शनिक परम्परा एक प्रकार से सार्वदेशिक है।[७४] पारमार्थिक संयोगेच्छा, मिथुन, संयोग सुख एवं आनन्द, जैसे दार्शनिक तत्व लौकिक कामसुख के अप्रस्तुत को लेकर अभिव्यक्त हुए। सभी भारतीय दर्शनों (सांख्य, योग, शैव, शाक्त, तंत्र आदि) में दाम्पत्य का अप्रस्तुत मिलता है। बौद्ध परम्परा में भी दाम्पत्य प्रविष्ट हुआ।[७५] सांख्य में प्रकृति-पुरुष दाम्पत्य की स्पष्ट झलक है। ब्रजभाषा के कवियों पर सांख्योक्त दाम्पत्य का प्रभाव रहा।[७६] इन दोनों के बीच प्रेमभाव माना गया है।[७७]

१.५२ द्वैत>दाम्पत्य (प्रस्तुत)

वेद-वेदांत तथा अन्य दार्शनिक परम्पराओं में जो दाम्पत्य भावना सामान्यतः

'अप्रस्तुत' वस्तु के रूप में मान्य है, वही भक्ति दर्शन और साहित्य में 'प्रस्तुत' वस्तु बन जाती है। भक्तिशास्त्र सम्बन्धी सभी ग्रन्थों[७८] में दाम्पत्य जन्य मधुर भाव को सर्वोपरि माना गया है। दार्शनिक प्रतीकत्व मधुर रस के विलास में कहीं बहुत गहरे खो गया। जहाँ, योग और शाक्त दर्शन का अप्रस्तुत दाम्पत्य, ब्रजभाषा साहित्य में मूर्त-प्रस्तुत हुआ, वहाँ सांख्य दाम्पत्य (प्रकृति+पुरुष) का रूप भी प्रस्तुत बना। सूरदास जी ने कृष्ण-राधा का वर्णन प्रकृति-पुरुष के रूप से किया है।[७९] इन दोनों की 'अभेदता'[८०] और इनकी 'पुरातन प्रीति'[८१] का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। इस शाश्वत दाम्पत्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है :

१. समुझि री नाहिं न नई सगाई।
सुनि राधिके तोहिं माधौ सों प्रीति सदा चलि आई।[८२]

२. राधा स्याम की प्यारी।
कृष्णपति सर्वदा तेरे, तू सदा नारी।[८३]

इस प्रकार सूर-दर्शन में सांख्य दांपत्य को प्रस्तुत किया गया है।

१.५३ सृष्टि लीला : एक>दो

सृष्टि क्यों और कैसे ?—उत्तर में कहा गया कि यह भी एक लीला है।[८४] सृष्टि के साथ प्रलय भी ईश्वर का सप्रयोजन लीला विलास है। इस लीला के मूल में भी शक्ति तत्त्व था। बहिर्लीला का प्रयोजन है—सृष्टि रचना। आरम्भिक दार्शनिक उन्मेष में ब्रह्म—सृष्टि=कारण—कार्य।[८५] पीछे ब्रह्म-जगत सम्बन्ध को कर्ता-कार्य न्याय में घटित किया गया।[८६] इस प्रकार ब्रह्म का सृष्टि परक कर्तृत्व (=लीला तत्व) उभरा। सृष्टि के कर्तृत्व में 'शक्ति' का समावेश हो गया। यह शक्ति त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही है।[८७] चिततत्व (=ब्रह्म) और शक्ति तत्व (त्रिगुणात्मिका प्रकृति) के मधुर मिलन से ही विविध रूपा सृष्टिलता खिलती है। इस सृष्टिपरक युग्म का अनेकविध कथन हुआ है।[८८] यह मिथुन-कल्पना पति-पत्नी के रूपक में संक्रमित हो गई।[८९] पीछे यौन-रूपक का स्वाभाविक विकास हुआ। मूल प्रकृति समस्त भूतों की योनि है। 'चेतन' के द्वारा इसी में गर्भाधान होता है।[९०] पांचरात्र में लक्ष्मी की इस रूप में भी कल्पना मिलती है।[९१] यह शाक्त प्रभाव भी हो सकता है।[९२] वैसे सृष्टि के मूल में मिथुन कल्पना की परम्परा सुदीर्घ और सार्वदेशिक है।[९३] सृष्टि के मूल में दिव्य-युगल का समागम यांत्रिक नहीं, आनन्दमय है।[९४] सृष्टि लीला बहिरंग लीला है जो माया शक्ति के साथ ब्रह्म की सृजनेच्छा के कारण सम्पन्न होती है। इसकी भूमिका में 'एकोऽहं बहु-

स्यामि' की इच्छा प्रेरणावत व्याप्त है। इस लीला का आरम्भ सृष्टि है और समाप्ति प्रलय है। सृष्टि लीला की ओर सूर ने संकेत किया है।[९५]

१.५६ रसमय लीला : एक>दो

विश्वात्मा में प्रीतिगुण की प्रतिष्ठा के कारण भी द्वयता आती है। प्रीति की मधुरिमा का आस्वादन करने के लिए वह अपने स्वरूपभूत चिन्मय धाम में, स्वयं ही 'प्रिया' और 'प्रियतम' के रूप में विद्यमान होता है।[९६] कान्तापरक भक्ति भाव का साध्य यही रसात्मक युगल है। इस द्वयता के होते हुए भी तात्विक एकता दृष्टि से ओझल नहीं हो जाती—'कहियत भिन्न न भिन्न।' श्रुति में भी रमणार्थ द्विधा विभाजन का संकेत मिलता है।[९७] ब्रह्म स्वयं आस्वाद्य (=रस, आनन्द) होने पर भी स्व-शक्तियों के द्वारा अपने ही रस-रूप का आस्वादक बनता है।

यह दार्शनिक सूत्र राधा-कृष्ण सन्दर्भ में विकसित हुआ। कृष्ण की रमणेच्छा ही राधा के रूप में प्रकट हुई।[९८] पुराणों में कृष्ण से राधा का प्रादुर्भाव बतलाया गया।[९९] दूसरी धारणा के अनुसार अव्यय सनातन पुरुष के शरीर के राधा कृष्ण नाम से दो विभाग हुए।[१००] 'अव्यय पुरुष' का सम्बन्ध पुरुष सूक्तोक्त 'पुरुष' से जोड़ा जाता हैं। यह 'कृष्ण' ही है, जिसके दाहिने अंग से कृष्ण और वामांग से राधा का आविर्भाव हुआ।[१०१]

१.५७ अद्वैत>लीलार्थ द्वैत—युगल भावना—अद्वय (अभेद)

एक औपनिषदिक रूपक यह है : सृष्टि से पूर्व ब्रह्म 'एकाकी' था। सत् इस एकाकी स्थिति से सन्तुष्ट न होकर द्विधा विभक्त हो गया।[१०२] इस विभाजन के मूल में सृजन सुख सन्निहित है। 'युगल तत्त्व' की पृष्ठभूमि में इसी प्रकार के दार्शनिक तत्व हैं।[१०३] 'युगनद्ध' की कल्पना में द्वैत के अद्वैत हो जाने का ही भाव है। युगनद्ध को स्त्री-पुरुष रूपक से ही स्पष्ट किया गया है।[१०४] भगवान और प्रज्ञा, पुरुष-स्त्री भाव से महासुख के लिए लीलारत रहते हैं।[१०५] इस सन्दर्भ में 'गुह्य' शब्द का प्रयोग भी हुआ है। शैव तन्त्रों में भी शिव-शक्ति का अद्वैत मूलक 'समरस' वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता हैं कि शैव, बौद्ध और सहजिया मतों की अद्वय युगनद्ध भावना पूर्वी अञ्चल में वैष्णवी-करण की प्रक्रिया में आ गई। वैष्णव सहजिया संप्रदाय ने ऐसे ही तांत्रिक तत्वों को आत्मसात किया। जिस प्रकार शाक्त तन्त्र में सभी स्त्री-पुरुष क्रमशः शक्ति और शिव के प्रकट रूप माने गये हैं, उसी प्रकार रस-रति प्रतीक कृष्ण-राधा की शाश्वत रस-रति लीला प्रत्येक मनुष्य-स्त्री में प्राकृत या अप्राकृत रूपों में चल रही है।[१०६] वैष्णव तंत्रों

में हरि-परमात्मा और श्री-शक्ति का अद्वय समरस रूपायित हुआ है। प्रकृति और केशव एक हैं। ये कभी पृथक नहीं हो सकते।[१०७] रसरूप कृष्ण और रतिरूपा राधा के समागम का अनुभव ब्रह्मानन्द का अनुभव है।

सहजिया दर्शन से चैतन्य सम्प्रदाय पहले प्रभावित हुआ। कृष्ण-राधा की आत्मा एक है : केवल देह दो हैं।[१०८] ये लीला रस के लिए दो हुए हैं।[१०९] सांप्रदायिक उपनिषदों में भी यह संधारणा मान्य है।[११०] वैष्णव सम्प्रदायों में भी अद्वैत—लीलार्थ धारणा बद्धमूल रही[१११] सूर ने स्पष्ट कहा—

सदा एक रस एक अखंडित, आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत युगल सरूप।[११२]

राधा कृष्ण के अद्वय/अभेद की परम्परा,[११३] प्रायः सभी भक्ति संप्रदायों पर छाई रही।[११४] वास्तव में युगलोपासना का केन्द्र विंदु ही राधा-कृष्ण अभेद/अद्वय है। यह युगल-अद्वय की भावना केवल शास्त्र में ही नहीं. लोक में भी प्रचलित है।[११५]

१.६ निर्गुण : सगुण-निर्गुण : सगुण

उपनिषद ने ब्रह्म को निर्गुण-निराकार भी कहा[११६] और सगुण साकार भी।[११७] यह भी कहा गया कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसी एक ब्रह्म के तीन नाम हैं।[११८] गुण की दृष्टि से इनका सम्बन्ध क्रमशः रज, सत् और तम से है। एक आदर्श गुण की ओर गीता ने संकेत किया : भगवान प्रेमी भक्तों का अविलंब उद्धार करते हैं।[११९]

पांचरात्र साहित्य में गीता के इस सूत्र को स्पष्ट किया गया : परविष्णु का प्रमुख गुण 'कृपा' है। विविध कारणवश समय-समय पर, विभिन्न स्थानों पर सृष्टि-स्थिति संहार लीला के सन्दर्भ में, कृपा विभिन्न रूप धारण करती है।[१२०] इस प्रकार सगुणता की ओर गति तीव्र होने लगी।

'निर्गुण' की व्याख्या भी प्रकाश में आई। परमतत्व के अप्राकृत या अलौकिक गुणों का निषेध इस शब्द से नहीं होता। इससे यही प्रकट होता है कि वह प्राकृत गुणों से रहित है। लीला के लिए परमतत्व अप्राकृत गुणों से विलसित हो उठता है। इस अर्थ में वह सगुण भी है। इसी दृष्टि से गुणों का कथन किया गया। उसको षडैश्वर्य पूर्ण कहा गया।[१२१] इन गुणों में श्री या शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य सभी गुण इसी के अङ्गभूत हैं।

भक्ति मूलक ज्ञानमार्ग[१२२] और शुद्ध उपासना मार्ग में निर्गुण-सगुण में अविरोध माना गया। भक्ति के सभी आचार्यों ने दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म सगुण-निर्गुण दोनों हैं। लीला के सन्दर्भ में वह सगुण हो जाता है।[१२३] भक्ति साधना का विषयालंबन यही सगुण ब्रह्म है, क्योंकि निर्गुण निराकार पर ध्यान केन्द्रित करना कठिन है।[१२४] इसीलिए जहाँ ज्ञानियों का साध्यब्रह्म, योगियों का ध्येय परमात्मा है वहाँ भक्त का इष्ट भगवान है।

भक्ति सम्प्रदायों में मुख्यतः दो गुणों की चर्चा की जाती हैं: 'ऐश्वर्य' और 'माधुर्य'। इन गुणों के माध्यम से रागात्मक साधना का विकास-विस्तार होता है। ब्रह्म जीव सम्बन्धी निरपेक्ष सत्य, एक रागात्मक सम्बन्ध में घटित होने लगता है। 'अभावमूलक' विचारणा 'भावमूलक होने लगती है। उपास्य निरपेक्ष न रह कर उपासक-सापेक्ष हो उठता हैं।

ऐश्वर्य और माधुर्य क्रमशः 'नाम' और 'रूप' के आधार बनते हैं। ऐश्वर्य ब्रह्म का विशेषणमय विस्तार करता है और माधुर्य रूप कल्पना का। इन गुणों के आधार पर अमूर्त आलंबन का लीलापरक, प्रतीकपरक या भावपरक संमूर्तन होने लगता है। 'भाव' उपासक का स्वभाव ही है। भाव और स्वभाव की मुख्यता के आधार पर विभाव का मांसल विस्तार होने लगता है। विभाव विविध सम्बन्धों में घटित होता है। 'प्रीति', 'वत्सलता' जैसे गुण असीम के लीलापरक या रागात्मक परिसीमन के धरातल प्रस्तुत करते हैं। माधुर्यमय भगवान मानवदेह धारण करके मानवोचित व्यवहार करता है और रसिक-भक्त अपनी भावना के अनुसार इस रूप को आलंबन बनाता है। दार्शनिक वस्तु के धार्मिक वस्तु और कलावस्तु में परिणत होने की ये ही सारणियाँ हैं। ब्रजभाषा तथा अन्य भाषाओं के भक्ति काव्य में इन्हीं सरणियों की अभिव्यक्ति मिलती है।

उपास्य कृष्ण परब्रह्म हरि हैं।[१२५] हरि के ब्रह्मत्व का पूर्ण विस्तार सूर ने किया है।[१२६] यही ब्रह्म सृष्टि का सर्जक है।[१२७] यह काल रूप, अतीव सुन्दर और अज्ञेय है।[१२८] यही अखिल विश्व का आधार और ब्रह्मादि का मूलरूप है।[१२९] ब्रह्मा, शिव, सनकादि भी उसका अन्त नहीं पा सके।[१३०] वही भक्तों के लिए अवतरित हुआ है।[१३१]

वास्तव में ब्रह्म का अवतार लीलाओं में उसका संक्रमण ही है। इस संक्रमण से सम्बन्धित दुरंगी शैली वाले पद कृष्ण भक्ति साहित्य में मिलते हैं।[१३२]

१.७ निराकार : साकार

जिस प्रकार निर्गुण को सगुण किया गया, उसी प्रकार निराकार को साकार रूप देने की प्रविधियों का विकास हुआ। भगवान के संमूर्तन के तीन रूप हैं: बुद्धि विनिर्मित साकार (जैसे ऋग्वेद का पुरुष[133] तथा गीता का विराट[134]), प्रतीकात्मक साकार (अर्चा विग्रह, या नाम प्रतीक) तथा भावित साकार। अन्तिम रूप में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावों के, आलंबन की कल्पना आती है। यही ब्रह्म की नराकार लीलाओं का विस्तार है। नाम-प्रतीकों की स्थिति 'सहस्र नामों' (विष्णु सहस्रनाम, गोपाल सहस्रनाम) तथा 'स्तोत्रों' से जानी जा सकती है। रूप-प्रतीक अर्चा-विग्रहों के रूप में स्थापित हुए।

१.८ ब्रह्म=रस=कृष्ण

'रसो वै सः' : पहले असत् था, फिर सत् हुआ। सत् का अभिव्यक्त रूप 'सुकृत' है और 'सुकृत'=रस।[135] 'वह' रस ही नहीं, रस से तृप्त होने वाला भी है।[136] इस रसास्वादन के लिए उसने एक आनन्दमयी कामना की—'एकाकी नैव रमते। सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्याम्।' जीवात्मा का आनन्द भी इस रस की प्राप्ति में सन्निहित है।[137] आनन्दित करने वाला 'रस' ही है—'एष ह्येवा नन्दयति।' सृष्टि के विकास का मूल कारण,[138] सभी प्राणियों का जीवन,[139] तथा स्वयं ब्रह्म,[140] आनन्द है। उपास्य का यही रसात्मक रूप सभी वैष्णव संप्रदायों में गृहीत है।

इस 'रस का प्रस्तुत-अप्रस्तुत रूप से विषयानन्द के साथ सम्बन्ध होता गया। उपनिषद् में इस रस-साधना का विषयानन्द संकेत सहित उल्लेख मिलता है: स्वप्न में आत्मा इन्द्रिय मात्रा रूप को लेकर पुनः जागरित स्थान में आता है। 'पुरुष' भी जहाँ 'वासना' होती है, वहाँ चला जाता है। देव स्वप्नावस्था में ऊँच-नीच भावों को प्राप्त होता हुआ अनेक रूप धरता है। स्त्रियों के साथ वह आनन्द मनाता हुआ, हँसता रहता है।[141] सुषुप्ति में वह आत्मरमण कौर बिहार करके जैसे आया था, वैसे स्वप्नावस्था में लौट जाता है।[142] जिस प्रकार प्रिया के मधु-आलिंगन में आबद्ध पुरुष को अंत-र्बाह्य ज्ञान नहीं रहता, इसी प्रकार परम पुरुष प्रज्ञात्मा से आलिंगित होने पर अंतर्बाह्य विषय से उपराम हो जाता है। यही उसी का आप्त काम, पूर्ण काम, अकाम और शोक शून्य रूप है।[143] ये ही रसात्मक संधारणाएँ तन्त्र से संपृक्त होती हुईं तांत्रिक वैष्णव-वाद या सहजिया साधना में उतर आईं। पीछे भक्ति साधनाएँ इन्हीं रस-परिकल्पनाओं से सजल होती गईं। बाउल या रसिक स्वप्न में ही इन रस-सिक्त आध्यात्मिक अनुभवों में लीन होता हैं।

शंकराचार्य ने 'रस' शब्द को 'राग' का वाचक माना।[१४४] इससे रागात्मक भक्ति सिद्धान्त को प्रेरणा मिली। भक्ति सूत्रों में भक्ति को 'परम अनुराग'[१४५] तथा 'परम प्रेम रूपा'[१४६] कहा गया। तापनीय उपनिषदों में भी राग का ही विलास है। पौराणिक परम्परा में रस-लीला अवतार-प्रयोजनों में सम्मिलित हो गई।[१४७] भक्ति सूत्रों, तापनीय उपनिषदों तथा पुराण की रसात्मक लीलाओं का अवतरण विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों और गीतगोविंद और श्रीकृष्णकर्णामृत जैसी काव्य कृतियों में हुआ।

इस सन्दर्भ में कृष्ण लक्ष्मी के कुच-मण्डल के आश्रित हो गए।[१४८] और शृङ्गार लीला के लिए ही उनका अवतार मान्य हो गया।[१४९] रसावतार कृष्ण विष्णु के अवतार नहीं, अपितु गोलोक के नित्य विलासी परब्रह्म ही हैं। यही तत्त्व अपनी शक्ति सहित, युगल रूप में, रसकेलि के लिए वृन्दाबन में अवतरित होता है।[१५०] ब्रह्म की सभी अवतरित ज्योतियाँ रसमय हैं।[१५१] यह भी मान्यता उगी कि श्रुतियों की प्रार्थना पर रसावतार की रम-लीलाओं का विस्तार हुआ।[१५२] यदि सूर ने श्रुतियों का अवतरित रूप गोपियों को माना,[१५३] तो ध्रुवदास जी ने सखियों को श्रुतियों का अवतार कहा।[१५४]

इस प्रकार एक ही अवतरित रूप विभिन्न प्रयोजनों के फलस्वरूप विविध रूपों में पुराणों एवं तत्कालीन साहित्य में प्रस्तुत किया गया जिनमें अन्तिम रसावतार, रसात्मक प्रयोजन के निमित्त विकसित श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा और युगल केलि से संबद्ध रसात्मक रूप है जो कालांतर में रसिक सम्प्रदायों में नित्य लीला के रूप में प्रचलित हुआ।[१५५]

संदर्भ संकेत

१—यह स्थिति ब्रह्म सूत्र के शारीरिक भाष्य में द्रष्टव्य है।

२—रामानुज : जन्म सं. १०७४; मध्व : जन्म सं० १२५६; (बल्देव उपाध्याय, भागवत संप्रदाय, पृष्ठ २०३) निंबार्क : १२१९ वि० के लगभग (भंडार कर, वैष्णविज्म, शैविज्म, पृष्ठ ८७) विष्णुस्वामी : १३ वीं शती के लगभग।

३—वैष्णव ब्रह्मवाद विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैत के रूप में विकसित हुआ। इसको 'इच्छाद्वैत', लीलाद्वैत जैसे नामों से भी पुकारा जाता है।

४—पुरुष कल्पना के लिए द्रष्टव्य ऋ० १०.९०; यजु० ३१.१-२२, अथर्व० १०.२; साम० पूर्व० ४.३-७। ब्राह्मण साहित्य के 'पुरुष मेध' में इसी का विस्तार हुआ (शतपथ० १३.६.१) उपनिषद् में भी रूपांतरण से पुरुषतत्त्व मिलता है (वृहद० उप० २.५.१; ४.३.२-६; छान्दोग्य १.७.५; ४.१५.१, कठ० 1.३.११–१२; प्रश्न० ६.२; मुण्डक० २.१.२-५।

५—शतपथ (१४.४.३.२२; ११.१.७.३६) तथा वृहदारण्यक उप० (१.५.१४) में प्रजापति को 1६ कलाओं से युक्त और छान्दोग्य० (६.७-१) तथा प्रश्न उप० (६.२, ६) में पुरुष को सोलह कलाओं से युक्त कहा गया है अग्नि की १०; सूर्य की १२ और चन्द्रमा की १६ कलाएँ प्रसिद्ध हैं।

६—मुण्डक उप० २.१.४; ऐतरेय उप० १.१-४

७—अथर्व० सं० ९.७.२५

८—ऋक् सं०, वामदेव सूक्त (४.२६) से यह स्पष्ट है। वृहद्० उप० (९.१०.१७) यजु० (३४.५५) अथर्व० सं० १०.२.२८-३६ भी द्रष्टव्य।

९—भागवत २.६.४१; १.३.५

१०—भागवत (३.६.८), और गीता (१०.१२; ११.३८) में इसी को आदि-देव, विराट और पुरुष पुरातन कहा गया है।

११—पुरुषोत्तमाचार्य, वेदान्त रत्न मंजूषा, (चौखम्बा) पृष्ठ ४८

१२—तत्वदीप निबन्ध, सर्व० नि० प्रे० श्लोक—११६।

१३—रूप गोस्वामी, लघु भागवतामृत पृष्ठ १६

१४—नारायण, राम, कृष्ण और नृसिंह=पूर्णावतार (भाग० ३.२८)

१५—वल्लभाचार्य, सुबोधिनी (भाग० १.३.६ पर व्याख्या)

१६—तत्वदीप निबन्ध, भा० प्र० पृ० २७

१७—जानि जिय अवतार पूरन, पर्‌यौ पाइन धाइ। सू० सा०, पृष्ठ ४२५, पद, ११०३

१८—भक्ति रस तरंगिणी, (नारायणभट्ट, कृष्णदास) पृष्ठ ५६, श्लो० १५; भक्तिरसामृतसिंधु पृ० १७६, श्लो० ७६-७८

१९—गर्ग संहिता, १.१.२३-२५

२०—अंशेन कृष्ण किल सम्बभूव। गीता [शांकर भाष्य, गोरखपुर] पृष्ठ १४

२१—भाग० १.३.२७; ११.४.२७ में विभिन्न कलावतार वर्णित हैं।

२२—एतेचांश कला पुंसः। भाग० ६.३.२८

२३—भाग० १.३.१

२४—बीस कमल परगट देखियत है, राधानंद किशोर।
सोरह कला संपूरन गह्यौ, ब्रज अरुनोदय भोर। सू० सा०, पृष्ठ ६८५
तथा—सोरह कला चंद्र जो प्रगटे दीन्हों तिमिरि विदारि। सूर सारावली, पद ३८३

२५—जसुमति उदर उदधि बिधु प्रगटे सकल कला सुखदाई। गोविंद स्वामी, पद संग्रह, सं० श्री ब्रजभूषण शर्मा; पृष्ठ ३

२६—महा० ५.१३१.५-१३; वन० अध्याय १८८; उद्योग० अध्या० १३१; भीष्म० ३५; आदि।

२७—गीता अध्याय ११

२८—भागवत १०.७.३६; १०.७.३७-३८। राम के विश्व रूप का भी परिचय मिलता है। वाल्मीकि (६.१२०)

२९—क—अखिल ब्रह्मांड-खण्ड की महिमा दिखराई मुख माँहि ।
सू० सा०८७३

ख—माटी के मिस मुख दिखरायौ, तिहूँ लोक रजधानी । वही ८७४

३०—कोटि ब्रह्मांड करत छिन भीतर हरत बिलंब न लावै ।
सू० सा० पृष्ठ ७४४

३१—इक इक रोम विराट किये तन, कोटि कोटि ब्रह्मांड । वही, पृ० ११०५

३२—सहस भुज धरि उत जेंमत हैं, इतहि करत गोपिन सों बात ।
[वही, पद, १४५६]

३३—अखिल ब्रह्मांड विश्व उनही में जाता । नं० ग्र० पृष्ठ १७५, पद, ११

३४—भागवत १.३.1

३५—एतेचांश कला पुंसः । भाग० १.३.२८

३६—पूर्णावतार ये हैं : नारायण, राम, कृष्ण और नृसिह (भाग० ३.२८)

३७—आदि सनातन परब्रह्म प्रभु घट घट अन्तरजामी । सू० सा० पद, ७०४

३८—सू० सा० पद ८७०; पद ८०७–८१४; पद ८८२; १५६९

३९—सूरदास प्रभु अन्तरजामी, ग्वालिन मन की जानी । सू० सा० पद ८८२

४०—ब्रह्मादिक कीटंत जीव सर्वान्तरजामी नं० ग्र० पृ० ३९, १७

४१—प्रभु अन्तरजामी यह जानी, हम कारन जल खोरे ।
प्रगट भये प्रभु जल ही भीतर देखि सबनि को प्रेम । सू०सा० पद,१३८६

४२—नं० ग्र० पृष्ठ १६५, पद, ६

४३—देह धरि प्रभु 'सूर' विलसत ब्रह्म पूरन सार । सू० सा०, ३४५४

४४—एहूँ हम परिपूरन रूप । नंद० ग्र. दशम स्कन्ध, पृष्ठ २२४

४५—नंद महर घर ढोटा जायौ, पूरन परमानन्द । गोविंद स्वामी, पद संग्रह, पृष्ठ २, पद २

४६—'ब्रह्म पूरन सकल स्वामी,' (३०६४) अखिल ब्रह्मांड नाथ (३६७४) ब्रह्म पूरन (३६७७) प्रभु ब्रह्मपूरन (३७०९) अखिल ब्रह्मांड इकरोम जाकैं (३७1९) आदि ।

४७—श्वेताश्वर, ६.११; गीता, १३.१४, १५

४८—वही, ३-१६

४९—ईशावास्योपनिषद्, ५

५०—क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्र मा निवेश । कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामं तत्ते ।
[अथर्व० ३.२९.७]

कामस्तदग्रे समवर्ततांधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन वृहता सयोनी रायस्पाषं यजमानाय धेंहि ।
[अथर्व, १९.५२.१]

५१—ऋ० १०.१२९.४

५२—ऋ० (१०.१२९.५) के अनुसार स्वधा और प्रयति के संयोग से ही ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई ।

५३—ऐतरेय उप० १.१.१-३

५४—छान्दोग्य उप० ६.२.३

५५—ऋ० १०.१२९.४

५६—अहिर्बुध्न सं० ४१.४

५७—नाहीं द्वैत अद्वैत हरि, नाहिं विशिष्टाद्वैत
बँधे नहीं मतवाद में, ईश्वर इच्छाद्वैत । भगवत रसिक, अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ, पृष्ठ ४३

५८—वृहदारण्यक उप १.४.३

५९—लक्ष्मी तन्त्र, २.२०-२५

६०—आनन्द, क्रीड़ा आदि के सम्बन्ध में श्रौत उल्लेख भी प्राप्त होते हैं । तैत्त० उप० २.९.३.६; प्रश्न उप० ३.६.२९; ब्र० सूत्र १.१.३२; मुण्डक उप० ३.१४ । ब्रह्मज्ञानी आत्म रूप के साथ क्रीड़ा करता है ।

६१—जब हरि लीला सुधि कीन्हीं प्रगट करन बिस्तार ।
[सूर सारावली, पृष्ठ १३]

६२—ब्रह्मवैवर्त पु० प्रकृति० ४८.२६-२९

६३—वल्लभ संप्रदाय में ब्रह्म के तीन स्वरूप मान्य हैं : परब्रह्म [आधिदैविक रूप] अक्षर ब्रह्म [आध्यात्मिक स्वरूप] तथा जगत [आधिभौतिक स्वरूप]

६४—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, परमानन्ददास, पृष्ठ ६६

६५—बौद्ध दर्शन के अनुसार 'शून्य' या विज्ञान, वैयाकरणों के अनुसार शब्द, शक्तिवादी के अनुसार 'शक्ति' 'शैव दर्शन के अनुसार शिव और वेदान्त के अनुसार वह आत्मा है।

६६—इसीलिए ब्रह्म निरूपण में प्रयुक्त उक्तियाँ अभाव मूलक हैं : 'वह ऐसा है' न कह कर 'वह ऐसा नहीं है' कहा गया।

६७—ऋग्वेद, १.१६४.४६

६८—यजु० ३२.११

६९—यजु० ३२.१५; ३२.१०; ४०.८

७०—त्रिपुर सुन्दरी रहस्य (ज्ञानकांड) मधुररस, पृष्ठ ३२ पर उद्धृत

७१—बुद्धि→इन्द्र=जाया→पति (ऋग्वेद संहिता, १०.४३.१

७२—प्रज्ञात्मा+पुरुष→सृष्टि; (ऋ० १.७३.३; १.६२.११) प्रकृति+पुरुष→ सृष्टि (गीता १४.३, ४); सांख्य सूत्र ६.५०

७३—वृहदारण्यकोपनिषद् १.४.३

७४—Swisher, Religion and the New Psychology, P. 7; Alban G. W. Widgery. The Comparative study of Religions. P. 101-2

७५—हेवज्र तन्त्र, तत्त्व पटल, पाँचवा अध्याय। द्रष्टव्य 'श्री संपुट' भी।

७६—संत सुन्दरदास, ज्ञान समुद्र, ३.५६.७। सूर ने भी सेश्वर सांख्य के आधार पर सृष्टि क्रम दिया है। (सू० सारावली, ३)

७७—"पुरुष और प्रकृति का यही शाश्वत मधुर भाव जड़ विषयक होने से लौकिक शृङ्गार रस तथा चिज्जगत का विषय होने से अलौकिक मधुर रस में परिणत हो जाता है।" डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुररस, भाग-१, पृष्ठ १६८।

७८—प्रमुख ग्रन्थ ये हैं : श्री मद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, विष्णु पुराण, वृहद्-गौतमीय तन्त्र, पांचरात्र संहिताएँ, ब्रह्म संहिता, सम्मोहन तन्त्र, गीता, शांडिल्य भक्ति सूत्र, नारद भक्ति सूत्र, भक्ति रसायन, भगवद् भक्ति चन्द्रिका, भक्ति संदर्भ, हरिभक्तिरसामृतसिंधु, उज्ज्वलनीलमणि, रसार्णव सुधाकर, चैतन्य चरितामृत, प्रीति संदर्भ आदि।

७९—सूर सागर १०.१६८८

८०—क—प्रकृति-पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ।
जल थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं, वेद उपनिषद् गायौ।

ख—राधा माधौ दोय नहीं।
प्रकृति पुरुष न्यारे नहिं कबहूँ, वेद-पुरान कहत सबहीं।
[सूर सा० परिशिष्ट, पद-५]

८१—सू० सा० १२९१, १३०१, १३३२, १३३३, १३५०।

८२—सू० सा० ३४३४

८३—वही, २४६३

८४—अहिर्बुध्न संहिता (४१.४) में सृष्टि=लीलास्पन्दन।

८५—न्याय के अनुसार ब्रह्म=निमित्त कारण; वैशेषिक के अनुसार, ब्रह्म= उपादान कारण। सृष्टि काल में ब्रह्म का कार्यवस्थ रूप और प्रलय काल में कारणवस्थ रूप रहता है।

८६—भारतीय दर्शन, पृष्ठ २६६, २९८, ३४१। भगवान ने शाश्वत काल तक यथार्थ भाव से अर्थों और पदार्थों को बनाया (ईशावास्योपनिषद्, ८)

८७—इस शक्ति का गायन ऋग्वेद के रात्रि सूक्त, देवी सूक्त तथा श्री सूक्त में मिलता है। अथर्व० में देवी शक्ति की भक्ति और पूजा के संकेत मिलते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् सरस्वती, गायत्री, सावित्री आदि के रूप में इसी शक्ति का गुणगान करते हैं।

८८—प्रज्ञात्मा+पुरुष (ऋ० १·७३.३; १.६२'११) प्रकृति+पुरुष (सांख्य-सूत्र ६.५०)

८९—वृहदारण्यकोपनिषद् १.४.३

९०—गीता, १४.३.४

९१—या च सा योनिर्लक्ष्मीस्तद्धर्म धर्मिणीं। अहिर्बुध्न्य संहिता ५९.७

९२—शाक्त ग्रन्थों में विश्वव्यापिनी आद्या शक्ति को योनिरूपा कहा गया है।

९३—Swisher, Religion and New Psychology, P. 7; Alban G. W. widgery. The Comparative study of Religions, PP–101-102.

९४—उपनिषद् के अनुसार, ब्रह्म, सृष्टि, लय सब कुछ आनन्दमय है।
[तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली, षष्ठोऽनुवाकः]

९५—खेलत खेलत चित्त में आई सृष्टि करन बिस्तार। सूर सारावली, ५।

९६—डा० रामस्वार्थ चौधरी, मधुररस, पृष्ठ ७।

९७—एकाकी नारमत आत्मान् द्वैषा, व्यभजत पतिश्च पत्नीचा भवत् (वेदोपनिषद्) सवै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत। (वृहदा० उप. १.४.३)

९८—ब्र० वै० पुराण, प्रकृति० ४८.२६-२९

९९—देवी भागवत, नवम स्कन्ध, ५०.१०-११

१००—भविष्य पु० प्रतिसर्ग, २५.१५६, १५७; २५.१६७-१७२

१०१—ब्र० वै० पुराण, प्रकृति० ४८.२६-२९

१०२—वृहदारण्यक उप० १.४.३

१०३—बौद्ध सहजिया मत का 'युगनद्ध' भी इसी प्रकार का सूत्र हैं (मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, पृष्ठ ३९२) प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करुणा आदि का अद्वय प्रसिद्ध है।

१०४—एस. बी. दास गुप्ता, ऑब्सक्योर रेलिजस कल्ट, पृष्ठ ३३

१०५—दास गुप्ता के इन्ट्रोडक्शन टू तांत्रिक बुद्धिज्म, पृष्ठ ११ (गुह्य सिद्धि) अवलोकितेश्वर और तारा के संयुक्त रूप में युगनद्ध कल्पना विकसित हुई।

१०६—दास गुप्ता, ऑब्सक्योर रेलिजस कल्ट, पृष्ठ १४८-१४९।

१०७—श्री हयशीर्ष तन्त्र, वही, पृष्ठ १४९ पर उद्धृत।

१०८—राधा कृष्ण आदि लीला दूई देह धारि। चै० च. आदि लीला।

१०९—लीलारस आस्वादितेधरे दुइ रूप (वही)

११०—'ये यां राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः कीड़नार्थं द्विधाऽभूत।'
[राधिकोपनिषद्] द्रष्टव्य राधातापिनी उप०, १२ भी।

१११—श्री राधा और कीकृष्ण रस सागर रूप एक ही शरीर से क्रीड़ा के लिए दो हो गये हैं। निंबार्क संप्रदाय की मान्यता है, [ब्रह्म विहारी शरण, महावाणी की भूमिका, पृष्ठ १८। डा० नारायण दत्त शर्मा, निंबार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि, पृष्ठ १३२]

११२—सूर सारावली, वेंकटेश्वर प्रेस, पृष्ठ ३८।

११३—यः कृष्णः सापि राधा, या राधा कृष्ण एवसः [वृहद् ब्रह्म संहिता] राधा कृष्णेति संज्ञाद्वयं राधिका रूप मंगलम्। (सनत्कुमार संहिता); स्कन्द-पुराण, वैष्णव खंड, भागवत माहात्म्य, २.१३; देवी भागवत, नवमस्कंध १३.१०३-१०५

११४—राधां कृष्ण स्वरूपां वैकृष्णं राधा स्वरूपिणम् [निबार्क संप्रदायी, महा-वाणी का आरम्भ] सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन बिलसत धाम [महावाणी, सिद्धान्त सुख, २६] एक रंग रुचि, एक वय एकै भाँति सनेह। [राधा वल्लभी ध्रुवदास, रति मंजरी] छिन इक कबहुँ न अन्तर होई [सेवक वाणी, ४.७] वल्लभ संप्रदाय में भी अभेद मान्य है [डा० द्वा० प्र० मीतल, हिन्दी साहित्य में राधा, पृष्ठ १७८]

११५—नर-नारी सब यहै चलावत, राधा मोहन एक। सू० सा० २३०१

११६—वृहद० उप० ३.८.८

११७—छान्दोग्य उप० ३.१४.१-४

११८—श्वेताश्वतर, तृतीय अध्याय।

११९—गीता १२.२, ६, ७।

१२०—सात्वत संहिता ४.८—११; ५.२२—२७; ५.८२—९२; लक्ष्मी तन्त्र १०.३९-४१।

१२१—चैतन्य चरितामृत, ७.१११ : ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य और तेज। ज्ञान=स्वप्रकाश, नित्य और सर्वस्व का अवगाहन करने वाला; शक्ति =जगत का उपादान कारण; ऐश्वर्य=जगत के कर्तृत्व में स्वतन्त्रता; बल=जगत के निर्माण में श्रम का अभाव; वीर्य=जगत का उपादान कारण होने पर भी अविकृत रहना; तेज=जगत की सृष्टि में सहकारी की आवश्यकता। [हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८०५।

१२२—गुण में निर्गुण, निर्गुण में गुण, बाट छाँड़ि क्यों बहिये'—[कबीर] यही नारदी भक्ति है—'भगति नारदी मगन कबीरा।

१२३—निर्गुन सगुन रूप धरि आये। सूर सारावली, पृष्ठ ३८८; सूर सा० पृष्ठ ३८८, पद १००४।

१२४—निरालम्ब मन चक्रत धावै
सब बिधि सुगम विचारहि, ताते सूर सगुन लीला पद गावै।
और भी द्रष्टव्य, गीता १२.५; लक्ष्मी तंत्र ४.२३-२४

१२५—सूर ने 'हरि' नाम का अपने पदों में सबसे अधिक प्रयोग किया है

१२६—अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनाशी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी।
जहँ वृन्दावन आदि अजर जहँ कुंजलता बिस्तार।
तहँ बिहरत प्रिय प्रीतम दोऊ, निगम भृंग गुजार।
सूर सारावली (मीतल) पृष्ठ १, पद १

१२७—खेलत खेलत मन में आई सृष्टि करन बिस्तार।
अपने आप करि प्रगट कियो है, हरी पुरुष अवतार। सू० सारा० वही

१२८—कोटि कालस्वरूप सुन्दर कोउ न जानत भेव। (सू० सा०)

१२९—सू० सा० पद ६३३ :

१३०—वही। पद, ६६३।

१३१—वही, पद ६८७।

१३२—सू० सा० पद ६२१; नंददास ग्रन्थावली, रास पंचा० पृष्ठ
२१, पृष्ठ ५७-५८; भ्रमर गीत पृष्ठ १७५, पद१ आदि द्रष्टव्य हैं।

१३३—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र पात्।
स भूमिं विश्व तो वृत्वात्यतिष्ठ दशांगुलम्। ऋ० १०-९०.१।

१३४—गीता ११.५, ६, ७।

१३५—तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्द वल्ली, २ ७

१३६—अथर्व० सं० १०.८.४४

१३७—तैत्ति० उप० २.७

१३८—वही, भृगुवल्ली, २.६

१३९—वृहदारण्यक उप० ४.३.३२

१४०—ब्रह्म सूत्र १.१.१२; ३.३:११

१४१—वृहदारण्यक, उप० ४.३.११

१४२—वही, ४.३.१५

१४३—वही, ४.३.२१

१४४—गीता २.५९ पर शांकरभाष्य।

१४५—सा परनुरक्तिरीश्वरे (शांडिल्य भ० सू० १.१.२)

१४६—सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा। नारद भ० सू० २

१४७—स्कन्द पुराण, अध्या० २, भा० म० १२९

१४८—गीत गोविंद, प्रथम सर्ग, द्वितीय प्रबन्ध, १

१४९—कृष्ण कर्णामृत, (सं० एम० के० आचार्य, पृष्ठ ४७, १, ९२

१५०—जा कारन बैकुण्ठ बिसारत, निज अस्थल मन में नहीं, भावत।
राधा-कान्ह देह धरि पुनि-पुनि, जा सुख कों वृन्दावन आवत।
सू० सा० २८०३

१५१—जो कोउ जोति ब्रह्ममय, रसमय सबही भाइ।
सो प्रगटित निज रूप करि, इहि तिसरे अध्याय। नं० ग्रं० भाषा दशमा-
स्कन्ध, पृष्ठ २३१।

१५२—सू० सा० १७०३, १७९३।

१५३—वेद रिचा ह्वै गोपिका, हरि संग किया बिहार। वही, १७९३

१५४—ध्रुवदास ग्रन्थावली, वृहद् वामन पुराण की भाषा, पृष्ठ १८४

१५५—मध्य कालीन साहित्य में अवतारवाद: पृष्ठ ४०३।

७ / वासुदेव : अवतार
आगमीय-पौराणिक वस्तु संक्रमण और ग्रहण

०- प्रास्ताविक

पिछले अध्यायों में वैदिक और दार्शनिक वस्तु के संक्रमण के संदर्भ में कृष्ण भक्ति साहित्य की वस्तु का निरूपण किया गया है। कृष्ण वासुदेव और कृष्ण के अवतरित रूप का विस्तार आगम और पुराण-परम्परा में मिलता है। आगम परम्परा की एक शाखा वैष्णवागम है, जिसमें वासुदेव की कल्पना का संमूर्तन हुआ है। चतुर्व्यूह कल्पना का संबंध भी इसी शाखा से है और अवतार-भावना का बीज भी इसी धारा में लक्षित किया जा सकता है। पुराण-साहित्य ने अवतार भावना को पूर्ण विस्तृति प्रदान की। इस विस्तृत अवतार-भावना ने साहित्य को विशद वस्तु दी।

वैष्णवागम की दो शाखाएँ हैं—वैखानस और पांचरात्र। वैखानस शाखा की प्रकृति अधिक वैदिक थी। पांचरात्र की निगमीय प्रकृति विवादास्पद रही। फिर भी कालान्तर में पांचरात्र दर्शन अधिक लोकप्रिय हो गया। वैष्णव मन्दिरों में वैखानस पद्धति की अर्चा के स्थान पर पांचरात्र पद्धति की स्थापना हुई। पांचरात्र दर्शन में वासुदेव की स्थिति केन्द्रीय है। इसके पाँच प्रकट रूपों—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा—का विस्तार ही इस आगम-शाखा में हुआ। वासुदेव कल्पना का यही मुख्य स्रोत कहा जा सकता है।

वैष्णवागम के समान ही वैष्णव पुराणों की भी परम्परा बनी। इन पुराणों ने विष्णु के अवतारों का भावात्मक गायन किया। पांचरात्र वस्तु का संक्रमण चाहे ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति साहित्य की वस्तु के रूप अत्यल्प ही हुआ हो, पुराण-परम्परा तो वस्तु स्रोत के रूप में उपजीव्य रही ही।

पौराणिक साहित्य के ग्रहण की प्रक्रिया स्पष्ट और ख्यात है। अतः इस प्रकरण को सूत्र रूप में ही देखा गया है।

१- वैष्णवागमीय वस्तु संक्रमण

१.१ परविष्णु : अपर विष्णु : अवतार

पांचरात्र पद्धति की मूल सत्ता सदा विष्णु है।[१] यह अखंड, अद्वैत और निराकार है।[२] यह नारायण और वासुदेव से अभिन्न है।[३] यह लक्ष्मी पति है : 'कृपा' से युक्त है : इसका लीला प्राकट्य भी होता है।[४] इस प्रकार वैदिक 'एक' और 'औपनिषदिक अद्वैत ब्रह्म से इसकी स्थिति भिन्न है। जब इसकी प्रतिष्ठा प्रतिमा में होती है, तो सदाविष्णु की संज्ञा विष्णु या महाविष्णु हो जाती हैं। महाविष्णु की सावयव आनुष्ठानिक मूर्ति की पूजा भी होती है।[५] जहाँ औपनिषदिक ब्रह्म की संमूर्त कल्पना नहीं थी, वहाँ परविष्णु का संमूर्तन होने लगा। परविष्णु में शक्ति परक, कृपापरक और अवतार परक सन्दर्भ-विकास के बीज अन्तर्निहित हैं।

परविष्णु का विकसित रूप 'अपर' विष्णु है। अपर विष्णु ही अवतार धारण करता है। यह 'विष्णु' का अवतारी रूप कहा जा सकता है। अपर विष्णु के साथ परिकर की कल्पना भी सजीव हो उठी। परिकर में अनंत, पन्नग, गरुड़, लक्ष्मी, सरस्वती, देव, ऋषि, मति, शान्ति आदि हैं। इनकी रूप सज्जा में कौस्तुभ और श्रीवत्स प्रमुख हैं।[६]

वैदिक 'पुरुष' और औपनिषदिक ब्रह्म के अवतरण की विधिवत् सरणियाँ निर्धारित नहीं की गई। आगमीय परवासुदेव की कोटियाँ निश्चित की गईं। इन कोटियों में अन्तिम कड़ी कृष्णवासुदेव की है। चतुर्व्यूह कल्पना की प्रथम कड़ी वासुदेव है। परविष्णु के प्राकट्य के चार स्तर हैं :

परविष्णु —
- चतुर्व्यूह [=सृष्टि मूलक अनेकता]
- अवतार [=रक्षा-रंजन परक अनेक रूपता]
- देवियाँ [=शक्ति रूप अनेकता]
- मूर्तियाँ [=अर्चापरक अनेकता]

आगम (=वैखानस और पांचरात्र) एवं पुराण साहित्य में इन्हीं सन्दर्भों का विस्तार है।

१.२ चतुर्व्यूह (एक>अनेक) : वासुदेव

विष्णु के 'पर' रूप का व्यूहात्मक अवतरण होता है और 'अपर' रूप का प्राकट्य अवतारों में होता है।

आगम वैखानस शाखा में विष्णु के चार रूपों की कल्पना मिलती है : पुरुष, सत्य, अच्युत तथा अनिरुद्ध ।[७] पांचरात्र शाखा[८] में इसी का विकास हुआ। एक स्रोत में चार नाम ये मिलते हैं : वासुदेव, अच्युत, सत्य तथा पुरुष।[९] इसी सूची में अनिरुद्ध का स्थान वासुदेव ले लेता है। महाभारत का चतुर्देव क्रम इस प्रकार है : नर, नारायण, कृष्ण एवं हरि।[१०] अधिक प्रसिद्ध चतुर्व्यूह यह बना : वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।[११]

मूल शक्ति के पश्चात् की पाँचरात्रोक्त चार अवस्थाओं[१२] में प्रथम विंदु वासुदेव है जिसमें मूल शक्ति (=परवासुदेव) की क्रियाशक्ति आभासित होती है। आगे के तीन विंदुओं पर छः गुणों के तीन युग्म केन्द्रित हो जाते हैं : ज्ञान-ऐश्वर्य= सकर्षण; शक्ति-बल=प्रद्युम्न तथा वीर्य-तेज=अनिरुद्ध। अनिरुद्ध का प्रकाशन ही भौतिक प्रपंच में होता है।[१३] इन्हीं तीनों से क्रमशः शिव, ब्रह्मा और विष्णु को भी आविर्भूत बतलाया गया है।[१४] इस प्रकार व्यूह के आदि विंदु वासुदेव से त्रिदेव का विकास बतलाया गया। इन्हीं की संज्ञा गुणावतार हो जाती है।

वैदिक सर्जक को चतुर्मुख माना गया है। पुरुष सूक्त के 'पुरुष' का ही यह चतुर्विध विकास प्रतीत होता है। इसी के आधार पर विष्णु/नारायण का चतुर्व्यूह रूप धर्म में समाविष्ट हुआ।[१५] चार की संख्या से पूर्णता द्योतित होती है।[१६] राम और उनके तीन भाइयों की कल्पना भी चार की है।

१.४ चतुर्व्यूह > अवतार और कृष्ण

चतुर्व्यूह-सन्दर्भ अवतार कल्पना से भी गर्भित हुआ।[१७] सबसे पहले सृष्टि मूलक अवतार कल्पना मिलती है। सृष्टि-सन्दर्भ में त्रिदेव-कल्पना महत्वपूर्ण है। चतुर्व्यूह से त्रिदेव के आविर्भाव का क्रम इस प्रकार रहा : सदा विष्णु (=परवासुदेव, अव्यक्त अवस्था) >महाविष्णु (=वासुदेव, अभिव्यक्त अवस्था)>वासुदेव+शक्ति(=शांति) >संकर्षण (=शंकर या शंकर प्रद्युम्न)—वामांग से प्रद्युम्न (=ब्रह्मा)—ब्रह्मा+ सरस्वती—अनिरुद्ध (=पुरुषोतम)—अनिरुद्ध+रति—सृष्टि।[१८] पालक रूप में वासुदेव की स्थिति बनी रही।

अनिरुद्ध से आगे सृष्टि विकास इस प्रकार हुआ : जलशायित अनिरुद्ध की नाभि से कमल; कमल से एक 'अंड' हिरण्यगर्भ (=ब्रह्मा), ब्रह्मा>संध्या>रुद्र (सत्य) तथा मरीचि आदि प्रजापति; दक्ष की मानसपुत्री 'सत्या'; सत्या का मानसपुत्र 'अच्युत'

(=प्रद्युम्न); अच्युत से अनिरुद्ध। इस मानसी सृष्टि क्रम पर वैखानस विष्णु कल्पना का प्रभाव है। व्यूह कल्पना का यह सूक्ष्म रूपांतरण है।[१९] मानसी सृष्टि और स्थूल सृष्टि को जोडने वाले त्रिदेव हैं।

अवतारों की पुजा और पूजा से विविध फलाशा की बात मिलती है।[२०]

ब्रजभाषा-काव्य में व्यूहावतार की अधिक मान्यता नहीं मिलती।[२१] कुछ छिट-पुट उल्लेख अवश्य प्राप्त होते हैं। सूर ने राम और उनके भाइयों की स्थिति व्यूहपरक मानी है।[२२] कृष्ण संदर्भ में यह धारणा लोकप्रिय नहीं हुई। कृष्ण-बलराम की प्रतिष्ठा व्यापक रही। भक्ति के चार आचार्यों की स्थिति व्यूहात्मक अवश्य मानी गई।[२३] नाभादास जी ने इस भावना को अभिव्यक्त किया है।[२४]

पांचरात्र में जहाँ त्रिदेव का विकास व्यूह से माना है, वहाँ त्रिदेव और अन्य देवों का अवतरण ब्रजभाषा में 'आदिदेव' के अंशों के रूप में स्वीकार किया गया है।[२५] पांचरात्र साहित्य में 'विभव' शब्द अवतारवाची रहा। पांचरात्र परम्परा में विभवाव-तारों का प्राधान्य है। गीता में विभूतिवाद का समावेश है।[२६] विभूति, विभव या ऐश्वर्य सयुक्त परमात्मा को इष्ट मानकर चलने वाले संप्रदाय भी थे। ब्रजभाषा साहित्य में ऐश्वर्य-विभव की अपेक्षा माधुर्य का प्राधान्य रहा।

२- पौराणिक संक्रमण

२.१ दशावतार में कृष्ण : अवतारी

अनेक शैव, शाक्त और वैष्णव पुराणों में कृष्णावतार का विवरण प्राप्त होता है।[२७] इस परम्परा में प्रमुख महाभारत और भागवत हैं जो परस्पर पूरक हैं। वैसे तो अवतारों की संख्या में मतभेद रहा, पर दशावतार-रूढ़ि अन्ततः प्रतिष्ठित हो गई।[२८] धर्म के क्षेत्र की यह रूढ़ि कला-क्षेत्र का प्रमुख अभिप्राय बनी।[२९] जैन, बौद्ध और वैष्णव साहित्य में भी दशावतार की मान्यता हुई।[३०] विद्यापति का दशावतार बोध प्रसिद्ध है।[३१] चंडीदास का भी दशावतार-पद मिलता है।[३२] इस प्रकार गायक भक्त कवियों में दशावतार प्रतीक गृहीत हुआ।

ब्रजभाषा के संगीतज्ञ कवियों में भी इस रूढ़ि का परिपालन मिलता है। बैजू बावरा का एक पद इस विषय का मिलता है।

सूरदास ने अवतार-क्रम तो ग्रहण किया है, पर दशावतार की संख्या का परि-

पालन अनिवार्य रूप से उन्होंने नहीं किया। उन्होंने कृष्ण पूर्व के अवतारों को बतला दिया है।[३४] कृष्ण पूर्व के अवतारों के परिगणन की प्रवृत्ति भागवत में भी दिखलाई पड़ती है।[३५] एक पद में सूर ने दस और चौदह अवतारों का उल्लेख किया है।[३६] सूर रचित, राग कल्पद्रुम में उद्धृत एक पद में दशावतार हैं। अवतार क्रम में कृष्ण के स्थान पर बलभद्र और बुद्ध के स्थान पर जगन्नाथ हैं।[३७] परमानन्ददास जी का भी एक पद इसमें उद्धृत है।[३८] इसके अनुसार पुरुषोत्तम कृष्ण अवतार ग्रहण करते हैं। तुलसी ने राम की दशावतार परक स्तुति की है।[३९] इसमें राम अवतार लीला विस्तार करने वाले हैं। कृष्ण के स्थान पर 'राधारमन' नाम दिया है।

तुलसी का एक दोहा रूपकला के भक्तमाल में मिलता है।[४०] उसमें दो वनचर, दो वारिचर, चार विप्र और दो 'राउ' के रूप में अवतारों को वर्गीकृत किया गया है।[४१] केशव ने राम चंद्रिका में दशावतार गिनाए हैं।[४२] इन्होंने भी राम को ही दशावतारों में अवतरित होने वाला कहा हैं। कान्हरदास जी की भी विचारधारा इसी प्रकार की है।[४३]

निम्बार्की परशुरामाचार्य ने अपने परशुराम सागर में 'दस औतारों को जोड़ौ' शीर्षक से एक पद दिया है। इसमें बुद्ध के स्थान पर जगन्नाथ हैं। रीतिकालीन देव ने दशावतार वर्णन रीति शैली में किया।[४४]

दशावतार कल्पना में कृष्ण का स्थान महत्त्वपूर्ण होता मिलता है। चंडीदास ने इनको श्रीकृष्ण हरि का अवतार कहा है। इस प्रकार कृष्ण ब्रजभाषा-काव्य में मात्र अवतार नहीं, अवतारी बन जाते हैं।

उपास्य होने के कारण कृष्ण अवतार ही नहीं, अवतारी भी हैं। अन्य अवतारों को कृष्ण का ही अवतार बतलाया गया है, विष्णु का नहीं।[४५] दानवों के प्रकट होने पर कृष्ण ही अवतार लेते हैं।[४६] चौबीस अवतारों उन्हीं के हैं।[४७] इनके ही अंश और कला अवतार होते हैं।[४८] ये ही अवतारी कृष्ण ब्रज में बिहार करते हैं।[४९] अवतारी कृष्ण विभूतियों के धारक और जगत के आश्रय हैं।[५०] ये ही असुरों के संहर्ता, विपत्ति के निवारक और ईशों से ईश हैं।[५१] अन्य अवतारों के द्वारा ये सेवित हैं।[५२] इस प्रकार अवतारी कृष्ण के ऊपर और कोई देव नहीं है।

कुछ लीला सन्दर्भों में भी यह तत्त्व अभिव्यक्त हुआ है।

कृष्ण स्वयं अपने अवतारी होने का परिचय गोपियों को देते हैं।[५४] गोपियाँ

कृष्ण की निष्ठुरता पर विचार करती हुई कहती हैं : राम रूप से इन्होंने ताड़का को मारा, वलि से दान माँगते समय वामन थे और दान लेते समय पर्वताकार हो गये, परशुराम के रूप में इन्होंने अपनी ही माता को मारा आदि ।[४४] कृष्ण अपने कृष्णावतार के कर्मों का भी स्वयं उल्लेख करते हैं ।[४६] इस प्रकार कृष्ण के अवतारों का परिचय कराया गया है । अपने अवतार की चर्चा करते हुए कृष्ण ने नन्द-यशोदा के वर की भी चर्चा की ।[४७] माधवदास के 'ग्वालिन झगरो' में भी इसी प्रकार के कथन हैं ।[४८]

३- संक्रमण संबंधी निष्कर्ष

पिछले अध्यायों में वैदिक, दार्शनिक एवं आगमीय पौराणिक वस्तु-सूत्रों के संक्रमणात्मक विकास पर विचार किया गया है । इस विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :—

१. ब्रजभाषा काव्य की वस्तु एक व्यापक और विविध संक्रमण का परिणाम है । संक्रमण-गति में आई हुई वस्तु को चार भागों में बाँटा जा सकता है : वैदिक, औपनिषदिक, आगमीय तथा पौराणिक ।

२. वैदिक वस्तु गो, गोप, गोपाल और गोपीनाथ संबंधी अभिप्रायों में संक्रमित हुई और अंततः कृष्णावतार से सम्बद्ध हो गई । औपनिषदिक वस्तु कृष्ण के परब्रह्म रूप में ढल गई और उसके रस रूप में आविष्ट हुई । वैष्णवागमीय वस्तु के तीन स्तर हैं : चतुर्व्यूह और अवतार से सम्बन्धित; नाम, रूप, गुण के सौंदर्य से संबंधित; तथा योग-तन्त्र परक माधुर्य से सम्बन्धित । पहला स्तर पौराणिक अवतार कल्पना में समा गया । दूसरा, वैष्णव सौन्दर्य तत्त्व के रूप में वस्तु के प्रत्येक स्तर पर व्याप्त रहा । और तीसरा सूत्र कुछ पुराणों और वैष्णव तन्त्रों में परिणति पाने लगा । संक्रमण की दृष्टि से पुराण-वस्तु के तीन स्तर हैं : १. वैष्णव और अवतारवादी तत्त्वों का प्राधान्य (विष्णु पुराण), २. वैदिक और औपनिषदिक तत्त्वों से कृष्णावतार को अभिमंडित करने वाले (भागवत) तथा ३. वैष्णव संहिताओं के योग-तंत्र परक माधुर्य से कृष्ण का मंडित करने वाले (पद्म पुराण आदि) ।

३. संक्रमण क्रम में बलनिक्षेप के बिंदु भी बदलते रहे : ब्रजभाषा काव्य की वस्तु में अवतारवादी, रक्षण कृपा-भक्तवत्सलता जैसे अभिप्राय पहले शिथिल हुए । परिणाम

स्वरूप मथुरा और द्वारका सन्दर्भ औपचारिक रह गये। तत्पश्चात् बल कृष्ण और गोपाल कृष्ण सन्दर्भों पर शिथिल होता हुआ गोपी-संदर्भ के रास माधुर्य पर केन्द्रित होने लगा। अन्ततः यह बल-केन्द्र भी शिथिल हुआ और सारा बल सखी भावापन्न युगल के नित्य निकुन्ज-विहार पर आ गया। साम्प्रदायिक आचार्यत्व और कवित्व इसी वस्तु में लीन हो गये। यह केन्द्र बल निक्षेप और घनत्व की दृष्टि से कृष्ण परक वस्तु में सर्वोपरि हो गया।

वस्तु संसृष्टि की प्रक्रिया में चार सूत्र प्रमुख हो गये: लीला; लीला के नायक और उसकी नायिका; सखी; और वृन्दावन (लीला धाम) समस्त लीलाएँ निकुन्ज लीला में संसृष्ट हुईं: पुरुष, ब्रह्म और विष्णु-वासुदेव की संसृष्टि लीला नायक कृष्ण मे हुई; गोपी, लक्ष्मी और शक्ति तत्व लीला नायिका राधा में घनीभूत हो उठे; उपासना संबंधी सभी भाव 'सखी' के व्यक्तित्व में समाविष्ट हो गये।

संदर्भ संकेत

१—सम्भवतः यह शब्द सदा शिव की शैली पर व्युत्पन्न हुआ है। पर, इनमें तात्विक साम्य प्रतीत नहीं होता।

२—सनत्कुमार सं० ब्राह्मरात्र, ६.१३८-४०

३—सनत्कुमार० ३.६३

४—सात्वत सं० ४.८-११; ५ २२-२७; ५.८२-६२ आदि।

५—सनत्कुमार० ब्राह्म० ६.१४१

६—परम संहिता, ४.७६-८१

७—भृगु संहिता (खिलाधिकारः) २१/१-२

८—पांचरात्रधर्म और चतुर्व्यूह का परिचय महाभारत में मिलता है।

६—जयाख्य संहिता ४.२-७

१०—महा० (बम्बई संस्करण) ७।२००।५७; JAB-Van, Buitenen, History uf Religion, Vot. I, No. 2 (1962) PP. 295–6.

११—सात्वत० २।२-७; ४।२-२० आदि। अधिकांश संहिताओं में यही रूप मिलता है।

१२—व्यूह (एमेनेशन), विभव (अवतार) अर्चा (—इमेज) तथा अन्तर्यामी (इमेनेंट) चार अवस्थाएँ हैं।

१३—लक्ष्मीतंत्र, ११।११

१४—वही, ५/७-१२

१५—J. Gouda, Visnuism and Sivism : A comparision (London, 1970) PP. 57-58.

१६—वही, पृष्ठ ५०, ५७

१७—सनत्कुमार-संहिता में अवतार कल्पना को अधिक विस्तार मिलता है।

१८—द्रष्टव्य सनत्कुमार० इन्द्ररात्र, अध्याय—६

१९—वही।

२०—विष्वक सेन० ११/३१२-३२३

२१—गीता में व्यूह नहीं है। महाभारत (१२।३५१।२२) में मिलता है। यही सांख्य समन्वित व्यूहवाद भागवत में (३.२६.२१-३०) उपलब्ध है।

२२—तीनों व्यूह संग लै प्रगटे पुरुषौत्तम श्रीराम। 'सूर सारावली' [मीतल] पृष्ठ १४ (१५८-१५९)

२३—संप्रदाय प्रदीप, पं० गदाधर द्विवेदी, मूल, पृष्ठ १५

२४—चौबीस प्रथम हरि बपु धरे, त्यों चतुर्व्यूह कलिजुग प्रगट (भक्तमाल) आचार्य=रामानुज, विष्णु स्वामी, मध्व और निंबार्क।

२५—बिधि-विष्णु संभु रवि ससि उदार। सब पावकाहिं अंसावतार। (केशव, रामचंद्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० ३७४)

२६—गीता अध्याय १०; भागवत ११ १६.६; महा० अनुशासन० १४।३१७—३२४

२७—भागवत, महाभारत, अग्नि पु० (अ० १२-१५); विष्णु० (अ० १-३३) ब्रह्म पुराण (अध्या० १८०-२१२); पद्म० (४।अ० ६६-८३ तथा ६।२७२-७९) देवी भागवत पु० ४।५, २३-२४) लिंग पु० (१।६८-६९) आदि।

२८—अग्नि, वराह आदि परवर्ती पुराणों में यही रूढ़ि है।

२९—देवगढ़ में दशावतार मंदिर (छटवीं शती ई०); लक्ष्मणसेन के काल में दशावतार की मूर्तियाँ बनी (प्रबोध चंद्र बागची, हिस्ट्री आफ बंगाल, पृष्ठ ४९३) लन्य स्थानों पर भी ये मूर्तियाँ बनीं (वासुदेव उपाध्याय, पूर्व कालीन भारत, पृष्ठ १६१)

३०—अमित गति (जैन) की 'धर्म परीक्षा' में दशावतार श्लोक है (भंडारकर, कलेक्टेड वर्क्स, १ पृष्ठ ३०१) काश्मीरी क्षेमेन्द्र (बौद्ध) ने 'दशावतार चरित्र' लिखा। जयदेव (वैष्णव) ने गीत गोविंद में दशावतार की वंदना

की है। पृथ्वीराज रासो में भी दशावतार का उल्लेख मिलता है। 'गोरखबानी' (पद, २००) में दशावतार को स्त्रैण कहा गया है। धर्म ठाकुर संप्रदाय के प्रवर्तक रमाई पंडित ने भी दशावतार की चर्चा की है (धर्म पूजा विधान)। 'कबीर बीजक' (पद, ८) में दशावतार भर्त्सना है। 'मलूक दास की बानी [पृष्ठ १५-१६] में दशावतार के मूल के प्रति संदेह है—'दस औतार कहाँ ते आए···।' 'रज्जब जी की बानी में अवतार संख्यां पर प्रश्न है [पद, ७७]—एक कहै औतार दस, एक कहै चौबीस।'

३१—'राजा सिवसिंह रूप नरायन एकादस अवतारे' [पदावली]

३२—श्रीकृष्ण कीर्तन, पृष्ठ ९२

३३—राग कल्पद्रुम, भाग १०, ४०, १७-२२ (इसमें एकादश अवतार कल्पना है)

३४—सूरसागर, पृष्ठ ३०४, पद, १०, १२७

३५—भागवत १०।२।४०

३६—सू० सा० पृष्ठ १२६, पद ३६

३७—रागकल्पद्रुम जी० १, पृष्ठ ४४३, पद, २

३८—राग क० जी० २, पृ० ८८

३९—विनय पत्रिका, पद, ५२

४०—भक्तमाल (रूपकला) पृष्ठ ४८

४१—भा० १०.२.४० पर सुबोधिनी। में वल्लभाचार्यजी ने जलजा, वनजा और लोकजा वर्ग दिये हैं।

४२—केशव कौमुदी, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ ३६०-३६१

४३—रागकल्पद्रुम, जी० १, पृ० ६७९ पर इनका पद

४४—देवग्रन्थावली, पृ० ६१ क ४४

४५—सू० सा० पद ७४५ बलदेव जी का कथन।

४६—सूर सारावली (मीतल) पृष्ठ २, पद, ३५-३६

४७—सो चौबीस रूप निज कहियत वर्णन करत विचार। वही।

४८—अंश कला अवतार श्याम के कवि पै कहत न आवै। वही, पृष्ठ १३, पद ३५४

४९- सदा बिहार करत ब्रज मंडल, नंद सदन सुखकारी। वही, पद ३६०

५०—अवतारी, अवतार धरन, अरु जितक विभूती।
इह सब आश्रय के अकार जग जिहि की ऊती। नं० ग्र० पृष्ठ ४४

५१—असुर संहारन, विपति विदारन, ईसन हू केईसा। महाकवि व्यासजी, पृष्ठ २००, पद, ३७

५२—चहुँ ओर वृन्दाबन सेवत सब औतार। ध्रुवदास ग्र० पृष्ठ १८४

५३—सुनहु 'सूर' ये हैं अवतारी, इन तैं प्रभु नहिं और बियो। (सूरसागर ३७२९)

५४—कुम्भनदास, संग्रह, दानलीला, पृष्ठ १३, पद ८

५५—नन्ददास ; भ्रमरगीत : ग्रन्थावली, पृष्ठ १८१, ३८-४१

५६—सूरसागर : (दानलीला) पृष्ठ ७६७, पद २०९७

५७—कुम्भनदास पद संग्रह, पृष्ठ १३, पद १०

५८—ग्वालिन झगरो लि० ना० प्र० सं०, पृष्ठ ५-६; पद १२



८ / वस्तु संसृष्टि
लीला, नायक, नायिका और धाम

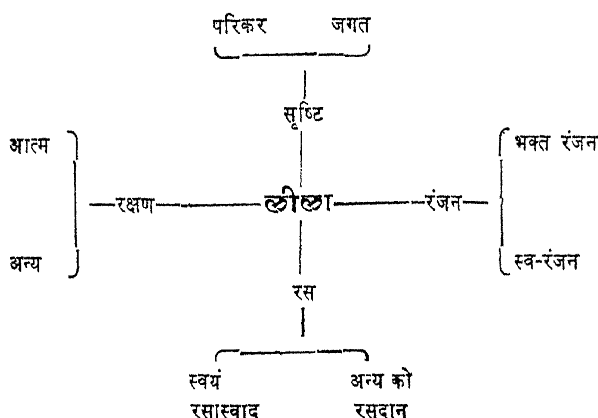
१- लीला

ऊपर ब्रजभाषा काव्य की 'वस्तु' के, आधिदैविक और आध्यात्मिक विराम-विंदुओं से संस्कार, आकार और प्रकार ग्रहण करते हुए, संक्रमण क्रम पर विचार किया गया है। सभी संक्रमणशील तत्त्व एक विंदु पर आकर केन्द्रित और संसृष्ट हो जाते हैं। यह विंदु है—'लीला'। लीला एक प्रकार से संसृष्ट वस्तु का ही नाम है।

'लीला' के माध्यम से ज्ञान-परक दार्शनिक वस्तु रस परक काव्य वस्तु में ढलती है। लीला का आधारभूत तत्त्व 'आनन्द' या 'रस' ही हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "भगवान ज्ञान से अगम्य हैं। · · · भगवान का स्वरूप आत्मा से जाना जाता है · · · भगवान सत् चित् आनन्द स्वरूप है····वह स्वयं आनन्द रूप हैं····फिर भी रहस्य यह हैं कि है कि वे रस पाकर ही आनन्दी होते हैं····क्योंकि यह उस अपूर्व लीला-धर की लीला की लीला है। लीला ही लीला का कारण है। लीला ही लीला का लक्ष्य है। केवल भगवत्साक्षात्कार बड़ी बात नहीं है। लीला बड़ी बात है और भगवान का प्रेम।[१]

यदि ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति साहित्य के वस्तु-संदर्भ का कथन एक शब्द में करना हो, तो वह शब्द होगा—'लीला'। विष्णु/ब्रह्म > कृष्ण की सभी अभिव्यक्तियाँ और क्रियाएँ 'लीला' ही हैं।[२] कृष्ण का यही लीलामय रूप भक्त रसिक का ध्येय, काम्य और उपास्य है। भक्त कवि का यही गेय है। परम रस-पुरुष अपने ही प्रतिबिंब/शक्ति रूपों के साथ लीला रचते हैं।[३] शक्ति रूप अनन्त[४] होने से लीलाएँ भी अनन्त हैं। इनमें से योगमाया लीलोपयोगिनी हैं।[५] सहस्रविध लीलाओं से सेवित, लीला सागर विष्णु ही वल्लभाचार्य के प्रणम्य हैं।[६] किन्तु लीला रस अपने अन्तिम बिंदु पर एक है।'[७] इसीलिए 'लीला' संसृष्ट काव्य वस्तु है।

रूपात्मक दृष्टि से अनन्त होते हुए भी, भाव/रस के बिंदु पर लीला-वस्तु की संसृष्टि होती है। लीलागत वैविध्य और संसृष्टि का चरम बिंदु कृष्ण के व्यक्तित्व में घटित होता है। लीलागत वस्तु संसृष्टि को इस प्रकार समझा जा सकता है :



इनमें से रक्षण' और 'रंजन परक' लीलाएँ अवतार लीलाएँ या ब्रज लीलाएँ कही जाती हैं और रसात्मक लीलाएँ नित्य-निकुञ्ज लीला है। सृष्टि लीला काव्य वस्तु की सम्भावनाओं से शून्य है। ब्रजभाषा काव्य से संबद्ध कुछ संप्रदाय और संप्रदायों के कवियों का संबंध, या तो अवतार लीला से है, अथवा रसलीला से।

१.१ प्रयोजन बनाम निष्प्रयोजन

ब्रह्म पूर्ण काम है। पूर्ण काम ब्रह्म की लीलाओं का कोई स्थूल प्रयोजन नहीं हो सकता।[९] लीला में निष्प्रयोजन आनन्द ही उद्दिष्ट है। प्राय: भक्ति के सभी आचार्यों ने लीला निष्प्रयोजनत्व का समर्थन किया।[१०] इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए, कृष्ण लीला को 'नटवत्' कहा गया है।[११] दूसरा उपमान बालक का दिया जाता है : जिस प्रकार बालक खिलौनों से खेलता है, उसी प्रकार कृष्ण, शिव, इन्द्रादि से क्रीड़ा करता है।[१२] 'सूर' के कृष्ण भी लीलानट हैं, जो अपनी चेष्टाओं से सबके मन को मोहित कर लेते हैं।[१३]

लीला शब्द का सामान्य अर्थ है—खेल या क्रीड़ा। खेल (प्ले) मनुष्य की एक अन्तर्प्रवृत्ति (इनेट टेंडेंसी) है। इसका कोई बाह्य उद्देश्य नहीं होता : वह अपने आप में

स्वयं लक्ष्य है—'लीलाया एव प्रयोजनत्वात्।[१४] इस सिद्धान्त की अभिव्यक्ति के लिए ब्रह्मसूत्र में 'कैवल्य' शब्द आया है।

१.२ लीला भेद

प्राकट्य के आधार पर लीला के दो भेद हैं : अप्रकट (माया विक्षेप के कारण सामान्य जीव के लिए अदृश्य) तथा प्रकट (=भगवान की कृपा से भक्त के सामने प्रकट। एक अन्य आधार पर दो भेद और : वास्तवी (=सभी प्राणियों के अंतर में निरंतर चलने वाली) तथा व्यावहारिकी (=वास्तवी लीला-बोध के लिए प्रथम सोपान)[१५]। बहिरंग और अंतरंग लीलाएँ—यह भेद भी किया जाता है। बहिरंग लीला माया तत्त्व के साथ, सृजनेच्छा से प्रेरित होकर मूलतत्व करता है। जब ब्रह्म अपनी स्वरूपभूता शक्तियों के साथ क्रीड़ा करता है, तो अन्तरंग लीलाएँ घटित होती हैं। उन लीलाओं को भी बाह्य कहा जायेगा जिसके उद्देश्य बाह्य—साधुओं का परित्राण, दुष्कृतों का नाश आदि[१६]—हैं। इसके विपरीत शुद्ध, अहैतुकी और सौन्दर्य परक लीलाएँ आंतरिक हैं। बाह्य लीलाओं को ऐश्वर्यमयी और अन्तरंग लीलाओं को माधुर्यमयी भी कहा जा सकता है। अन्तरंग लीलाएँ गोलोक की लीलाएँ हैं : इनका स्थानांतरण वृन्दाबन लीलाओं में हो सकता है। यही नित्य बिहार की दो स्थितियाँ हैं। बाह्य लीला का अनुभव अंतरंग लीला में प्रवेश का प्रथम सोपान है।

वैसे अप्रकट, अन्तरंग या नित्य लीलाएँ गोलोक धाम में होती हैं, तथापि भक्त के लिए उनका प्राकट्य ब्रज- वृन्दाबन में भी होता है।[१७] नित्य-अन्तरंग लीला के प्रकट रूप का गायन ही ब्रजभाषा-साहित्य में प्रायः हुआ है। श्रीकृष्ण का वैशिष्ट्य यह है कि वे माधुर्यमयी अन्तरंग लीला को गोलोकस्थ होकर भी करते हैं, और ब्रजस्थ होकर भी। वल्लभाचार्य जी ने सूर को 'लीला-भेद' ही विस्तार से बतलाया।[१८] सूर ने अपनी सारावली में लीला भेद की रूप रेखा इस प्रकार दी है : नित्य लीला[१९]→ सृष्टि लीला[२०]→हरि (=ब्रह्म) की अवतार लीला[२१]→श्रीकृष्ण (=वासुदेव) लीला =चतुर्व्यूहात्मक लीला तथा रसात्मक लीला। श्रीकृष्ण लीला के स्थलीय सन्दर्भों और 'गुणों' (=ऐश्वर्य, माधुर्य) के आधार पर, लीला की संरचना यह बनती है :

मथुरा लीला—	दास्य भाव→	ऐश्वर्य गुण
	सखा भाव→	ऐश्वर्य→माधुर्य

व्रज लीला-	सखा भाव	
	बाल भाव	
	दांपत्य भाव	→माधुर्य
	गोपी भाव	
	राधा भाव	
द्वारिका लीला-	सखा भाव—	माधुर्य—ऐश्वर्य
	दास्य भाव[२२]—	ऐश्वर्य ।

सूर की इस लीला संरचना के पश्चात् वृन्दाबन के नित्य विहार का भी भावन मिलता है[२३] जैसे 'लीला' की यही चरम परिणति हो ! जहाँ प्रकट लीलाओं का भावात्मक चरमोत्कर्ष गोपी लीला में मिलता है, वहाँ सखी भाव का संबंध कुन्ज की अप्रकट गुह्य लीला से होता है । यह स्तर गोपी भाव से उच्चतर है । इस स्तर की अनुभूतियों से आंशिक रूप से चैतन्य संप्रदाय का साहित्य, प्रमुख रूप से राधावल्लभ संप्रदाय का साहित्य तथा शुद्ध रूप में हरिदासी संप्रदाय का साहित्य संबद्ध और अनुप्राणित है ।[२४] इसे 'परोक्ष' या 'गुह्य' की संज्ञा दी गई है । सामान्य संधारणा के अनुसार गोलोक लीला का पूर्ण अवतरण वृन्दाबन के नित्य बिहार में हुआ है ।

१.३ निरोध लीला

भागवत के दशम स्कंध का सम्बन्ध निरोध लीला से है—ऐसी मान्यता पुष्टि मार्गीय आचार्यों और भक्तों की थी ।[२५] आचार्य जी ने इस स्कंध की वस्तु को पाँच प्रकरणों में विभाजित किया है । वस्तु विभाजन इस प्रकार है :

१. जन्म प्रकरण ।
२. तामस प्रकरण ———→
३. राजस प्रकरण ।
४. सात्त्विक प्रकरण ।
५. गुण प्रकरण ।

—स्नेह	(प्रमाण)
—आसक्ति	(प्रमेय)
—व्यसन	(साधन)
—फल	(फल)

१. स्नेह लीला—अध्याय ५ से ११ : नन्द महोत्सव, पूतना बध, शकटासुर बध, तृणावर्त बध, उलूखल लीला, यमलार्जुन उद्धार, वत्सासुर, बकासुर उद्धार ।

२. आसक्ति लीला—अध्याय १२ से १८ : धेनुकासुर बध, कालीनाग मर्दन, दावानल पान, प्रलंबासुर, वेणुवादन ।[२६]

३. व्यसन लीला—अध्याय २२ से २५ अथवा २८ तक : वस्त्रहरण लीला, विप्र पत्नियों पर अनुग्रह, गोवर्धन लीला, वरुण पाश से नन्द का प्रत्यानयन तथा गोपियों को वैकुण्ठ दर्शन।

४. फल लीला—अध्याय २६-३२ अथवा ३५ तक रास लीला से युगल गीत तक के प्रसंग।

ये चारों वर्ग तामस प्रकरण की लीलाओं के हैं। ये प्रकरण भागवत दशमस्कंध के ९० अध्याय हैं। इनमें से वत्सहरण वाले तीन अध्याय प्रक्षिप्त माने जाते हैं। इस प्रकार कुल ८७ अध्याय निरोध-मूलक भगवल्लीलाओं के हैं। इनको पाँच प्रकरणों में विभक्त किया गया है, जिनमें एक तामस प्रकरण है। तामस प्रकरण के कुल २८ (५वें अध्याय से ३२ तक) हैं।

तामस (=निस्साधन) भक्तों का निरोध दशम स्कंधीय लीलाओं में हुआ है।[२७] तामस लीलाएँ जन्म से लेकर द्वारका गमन तक विस्तृत हैं। गो० बिट्ठलनाथ जी की सुबोधिनी पर टिप्पणी का सार इन शब्दों में दिया जा सकता है : "त्रिविध जीवों में जो सात्त्विक जीव हैं वे ज्ञान मार्ग की ओर झुके हुए होते है। अत वे ज्ञान विहित मार्ग में रुचि रखते हैं। उनमें स्नेह का अभाव होता है। राजस प्रकृति वाले कर्मों की ओर रुचि रखते हुए, लौकिक कर्मों में भी आसक्ति रखते हैं। अतः उनके चित्त में विक्षेप बना रहता है।⋯ किन्तु जो तामस भक्त हैं, उनमें ज्ञानादि का अभाव रहता है। वे एक प्रकार से मुग्ध होते हे। लौकिक दृष्टि में वे मूढ़ होते हैं, अपनी बात के आग्रह के सिवाय वे कुछ समझते ही नहीं। अतः ऐसे तामस भक्तों के हृदय में भगवान के लिए सहज स्नेह होता है। उन पर बाह्य प्रभाव नहीं होता⋯अतः उनके भाव सहज, सरल और शुद्ध होते हैं। ऐसे भक्तों को निरोध सिद्धि एकदम हो जाती है।⋯यदिचेत् किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो भी जाये, तो वह भगवत् कृपा से स्वयमेव टल जाता है।⋯ ब्रजभक्त तामस भक्त थे।⋯ ये ब्रजभक्त निर्गुण और निस्साधन थे। पुष्टि मार्ग में साधन होते भी नहीं। मर्यादा मार्ग में साधनों का बल होता है।[२८]" इन तामस भक्तों को स्वर्ग, अपवर्ग, ऐश्वर्य, मुक्ति आदि में से किसी की भी इच्छा नहीं : इनका काम्य है प्रभु और प्रेम।

इस प्रकार वल्लभ संप्रदाय के अनुसार दशम स्कंधीय लीलाओं का लक्ष्य निरोध-सिद्धि के द्वारा आनन्द की सिद्धि करना है। भावों का भी उत्तरोत्तर क्रम इन लीलाओं में मिलता है : पहले वात्सल्य, फिर सख्य और तदुपरान्त माधुर्य या कान्ता भाव। यही भाव भक्ति का फल है।

निरोध की स्थिति भगवदनुग्रह से ही संभव है। इसीलिए आचार्य जी ने कहा—अनुग्रहो पुष्टिमार्गे नियामक इति सिद्धान्तः।'

१.४ ध्यान लीला

जहाँ ब्रज लीलाओं का संबंध वल्लभाचार्य जी ने 'निरोध' से जोड़ा है, वहाँ वृन्दावन की निकुंज लीलाएँ 'ध्यान' से संबंधित हैं। कुंजस्थ युगल के ध्यान को संहिताओं ने मोक्षप्रद कहा।[२९] ब्रह्म संहिता में वृन्दावन में स्थित गोविंद के भजन की बात कही गई है।[३०] गौतमीय तंत्र में निकुंजस्थ कल्पवृक्ष के नीचे सिंहासन और उस पर आसीन कृष्ण के ध्यान की बात कही गई है।[३१] वृन्दाबनस्थ युगल किशोर का ध्यान मोक्षदाता है। यद्यपि कृष्ण के नाम-जप और रूप-ध्यान का महत्व भी था, पर ध्यान की स्थिति में निकुंज लीला सर्व प्रमुख हो गई। वृहद्ब्रह्म संहिता में ध्यानानुष्ठान का कथन इस प्रकार है: 'दिव्यधाम गोलोक में स्वयं भगवान नित्य-विहार करते हैं। जो पट्टवस्त्र या कुड्य-मंडलादि पर इसे लिखकर पूजा करते हैं, वे परमपद को प्राप्त करते हैं। शरद् पूर्णिमा की रात्रि को लतापता—वृक्षावली से वृन्दाबन बनाकर वहाँ रासलीला का अनुकरण करते है, श्री राधा-कृष्ण एवं सखियों की प्रतिमा बना, रास लीला (विहार) उत्सव को प्रेम से देखते हैं या ध्यान करते हैं, वे इस प्राकृत शरीर को छोड़कर नित्य धाम गो-लोक को प्राप्त करते हैं।[३२] पूरे लीला परिकर के ध्यान का विधान भी मिलता है: बीच में तीन योजन विस्तीर्ण गोलाकार मंडल: मंडल में शोडशदल कमल: उस पर गौर श्याम, काम मोहक, विष्णु परिलक्षित राधा कृष्ण युगल—लीला आदि अष्ट सखियों से युक्त, सैंकड़ों गोपी यूथों से परिवेष्ठित।[३३]

ब्रह्म-शक्ति लीला का आनन्द ब्रह्मानन्द से भी ऊपर है। लीला का प्रयोजन ब्रह्मानन्द से निकालकर भजनानंद में मन को लीन करना ही है।[३४]

१.५ अवतार लीला—नित्य लीला

ऐतिहासिक साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अवतार लीलाओं का पर्यवसान नित्य लीलाओं में हुआ। नारदोक्त आदर्श गोपी प्रेम[३५] से भी ऊपर नित्य लीला से संबद्ध सखी भाव है।[३६] कुछ भक्ति संप्रदायों में अवतार लीलाएँ मान्य रहीं और कुछ में नित्य-निकुंज लीला।[३७] अवतार लीलाओं को लेकर चलने वाले संप्रदाय भी अन्ततः निकुंज लीलावादी होते गये।

अवतार लीलाधर कृष्ण को माता-पिता तथा अन्य संबंधियों के प्रति अपना

कर्तव्य पालन करना होता है। इसलिए माधुर्य की धारा अखंड, एक रस और अनवरत नहीं रह पाती। इसके विपरीत अनादि युगल किशोर की नित्य-निकुंज लीला-माधुरी निरन्तर प्रवाहित रहती है : यह अखंड रसास्वादन का ही उपक्रम है। इसमें अवतार लीला के भावों का प्रवेश नहीं : सखी भावापन्न रस-साधक ही इसमें प्रवेश पाते हैं।[३८] यहाँ तक कि ब्रजविलासी राधा-कृष्ण भी इस नित्य बिहार के लिए आकुल रहते हैं।[३९] और भक्त इस लीला दर्शन के लिए उतावला रहता है।[४०]

नित्य निकुंज लीला की भावना कुछ ऐसी बलवती और आकर्षक हो गई कि अन्ततः ब्रज से संबद्ध सभी संप्रदाय इसी भावना में मग्न हो गये। ब्रज लीलाओं को मान कर चलने वाले संप्रदायों के भी तीन भेद हैं : एक वह जिसमें वासुदेव, गोपाल और गोपी कृष्ण की साथ-साथ मान्यता है (निंबार्क संप्रदाय); दूसरा वह जिसमें गौण रूप से स्वीकृति तो वासुदेव की भी है, पर मान्यता गोपाल और गोपी कृष्ण की ही है : (वल्लभ सम्प्रदाय); तथा तीसरा वह जिसने प्राधान्य गोपी भाव को ही दिया (चैतन्य सम्प्रदाय)। अन्ततः इन सभी का पर्यवसान राधा-सखी भाव में हो गया। उदाहरण के लिए निंबार्क संप्रदाय तथा वल्लभसंप्रदाय के लीला भाव विकास को देखा जा सकता

१.५१ निंबार्क सम्प्रदाय

१.५११ वासुदेव व्यूहांगी

निंबार्क सम्प्रदाय के प्रेरक स्रोतों में सनत्कुमार और नारद का नाम आता है[४१] : भगवन्नारायण > सनकादि कुमारों ने उनसे गोपाल मन्त्र ग्रहण किया > नारद को उनसे मंत्र प्राप्त हुआ > फिर निंबार्क को प्राप्त हुआ।[४२] सांप्रदायिक अनुश्रुति के अनुसार उनको सुदर्शन चक्र का अवतार माना गया है।[४३] भाष्य में उन्होंने 'रमाकान्तः पुरुषोत्तमो ब्रह्म शब्दाभिधेयः' तथा 'सर्वभिन्नाभिन्नो भगवान वासुदेवः'[४४] जैसी इष्ट सम्बन्धी अभिव्यक्तियाँ की हैं। श्री निंबार्काचार्य जी की एक कृति 'प्रपन्न कल्पवल्ली'[४५] मानी जाती है जिसमें पांचरात्रोक्त शरणागति मंत्र की व्याख्या है। दशश्लोकी के चतुर्थ श्लोक में कृष्ण को 'व्यूहांगिन्' कहा गया है।[४६] अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूपी चतुर्विध व्यूह के अंगी वासुदेव कृष्ण माने जाते हैं। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जाता है कि श्री निंबार्काचार्य जी पांचरात्र पद्धति से प्रभावित थे और उनके उपास्य वासुदेव कृष्ण हैं।[४७] ब्रह्मसूत्र के 'भूमा सम्प्रसादात् अध्युपदेशात्' सूत्र की टीका में कहा गया है कि सनत्कुमारों ने नारद को 'भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः' इस छांदोग्य श्रुति के आधार पर भूमा की उपासना का उपदेश दिया था। यह भूमा

पुरुषोत्तम है : विष्णु है। और दशश्लोकी के छठे श्लोक में कहा गया है कि सनन्दनादि ऋषियों ने नारद को जिस तत्त्व का उपदेश दिया है, उसी की उपासना करनी चाहिए।[४८]

इस भूमा पुरुषोत्तम की उपासना अर्चिरादि पद्धति से की जाती है।[४९] अर्चिरादि पद्धति योगपरक है : "विद्वान साधक सुषुम्णा नाड़ी से निकालकर सूर्य रश्मियों का आरोहण करता है और प्रथम अग्नि को प्राप्त होकर बाद में शुक्लपक्ष के दिन को प्राप्त होता है।.....आदि।[५०]" इस साधना से 'पुरुषोत्तम हरि' प्राप्त होता है—'यह आदित्य वर्ण है, लक्ष्म्यादि युक्त है और सनंद, सुदर्शन आदि द्वारा सेवित है।' ग्रन्थकार ने लिखा है कि यह श्रुति प्रतिपादित है और सम्प्रदाय के अनुसार है।[५१] इस प्रकार साधना की संरचना श्रुति और योग के अनुसार है और पांचरात्र पद्धति के अनुरूप है।[५२] नारद और सनत्कुमार दोनों ही पांचरात्र पद्धति से सम्बद्ध हैं। पांचरात्रों की भाँति विष्णु के अन्यतम रूप 'हयग्रीव' की उपासना के प्रमाण भी मिलते हैं।[५३] इन सूत्रों से यह सिद्ध होता है कि निंबार्क सम्प्रदाय के प्रारम्भिक साहित्य में पांचरात्र पद्धति से वासुदेव कृष्ण की उपासना प्रचलित थी।

१.५१२ गोपाल मन्त्र

श्रीमद्भागवत के अनुसार विष्णु ने हंस रूप धारण करके सनकादिकों की जिज्ञासाओं को तृप्त किया।[५४] अर्थात् विष्णु के हंसावतार ने ज्ञान का प्रकाशन किया। फिर सनकादिकों से नारद, नारद से निंबार्काचार्य को ज्ञान प्राप्त हुआ। यह तत्त्व था गोपाल मंत्र (=अठारह अक्षर→अष्टादशाक्षर; पांचपद और पंचपदी विद्या) परम्परा के अनुसार आचार्य जी को इस मंत्र की प्राप्ति ब्रज में हुई।[५५] निंबार्काचार्य जी ने इस मंत्र की व्याख्या के लिए एक रचना की—'मंत्र रहस्य षोडशी।'[५६] इस मन्त्र की पूजन विधि भी निश्चित हुई।

केशव काश्मीरी जी ने इसकी पूजा विधि पर विशेष विचार किया।[५७] इस मंत्र से सम्बन्धित भूत शुद्धि, मातृकान्यास, शक्तिन्यास, तत्त्वन्यास, प्राणायाम प्रकार, पीठ शक्ति, पीठ मंत्र, कर शोधन आदि का वर्णन इसमें है। इसमें बाल गोपाल और गोपीजन वल्लभ का 'ध्यान' भी वर्णित है। प्रथम पटल के १५ से ३३ तक के श्लोकों में गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन वामन आदि की शक्तियों का भी उल्लेख है। किन्तु इसमें राधा नहीं है। प्रातःकाल बाल गोपाल की, मध्याह्न में चतुर्भुज रूप की, सायंकाल में वासुदेव रूप की और रात्रि में रास परिश्रान्त देवकी सुत' रूप के ध्यान की व्यवस्था पंचम पटल में दी गई है।[५८]

१.५१३ अंगे तुवामे वृषभानुजां....

दशश्लोकी का पाँचवाँ श्लोक युगलोपासना के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है :

अंगे तुवामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम् ।
सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम् ।।

इसमें युगलोपासना के सभी तत्त्व बीज रूप से वर्तमान हैं—कृष्णप्रिया राधा, राधा प्राधान्य और सखी तत्त्व । किन्तु यह रस-पद्धति पांचरात्र पद्धति से मेल नहीं खाती । 'वृषभानुजा' का संबंध नंदनंदन कृष्ण के साथ है; वासुदेव की पत्नी रुक्मिणी मानी जाती हैं ।' एक टीकाकार ने[५९], वृषभानुजा के स्थान पर 'श्री रुक्मिणी' पाठ मानकर वासुदेवोपासना को ही सिद्ध करना चाहा है ।[६०] 'देवीम्' का अर्थ 'श्रियं देवीमुपाह्वये' के अनुसार लक्ष्मी किया गया है ।[६१] सहस्त्रों सखियाँ इन्होंने रुक्मिणी की सहस्त्रों परिचारिकाएँ मानी हैं । 'सकलेष्ट कामदाम्' की व्याख्या से इसे सिद्ध किया है । रुक्मिणी की परिचारिकाएँ पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए सेवा करती है ।[६२] जबकि राधा की सखियाँ प्रेम की प्राप्ति के लिए सेवा-रत होती हैं । फिर वृषभानुजा को भी सम्मिलित करते हुए मूल पाठ यह निर्धारित करते है : 'अंगे तुवामे श्री रुक्मिणीं वृषभानुजां च स्मरेम् ।[६३]' वास्तव में यह हास्यास्पद है । अन्त में उपास्य के रूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा : रुक्मिणी, सत्यभामा और ब्रजस्त्री विशिष्ट भगवान पुरुषोत्तम वासुदेव ही सम्प्रदाय के द्वारा उपासनीय हैं ।[६४]

इस विवाद के संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि संप्रदाय में उपास्य 'वस्तु' के तीन स्तर थे : पांचरात्र वासुदेव-रुक्मिणी, बाल गोपाल और गोपीनाथ तथा राधा कृष्ण इन स्तरों में पांचरात्र पद्धति प्रथम पर बल देकर चली, किन्तु अन्य दो स्तर भी पांचरात्र साहित्य में उपेक्षित नहीं थे । आगे चल कर बल का स्थानांतरण होता गया और राधा-कृष्ण युगल सर्वातिशय हो गया । 'राधाकृष्णोपासना ने इस संप्रदाय में में बहुत बाद में प्रवेश पाया है,[६५] यह न कह कर यह कहना उपयुक्त हो सकता है कि संप्रदाय ने पांचरात्र से उपास्य के उपर्युक्त तीनों सूत्रों को ग्रहण किया और युगल-सूत्र सोलहवीं शती के मध्य से बल ग्रहण करने लगा ।[६६] पहले वासुदेव कृष्ण और अर्चिरादि पद्धति, फिर गोपाल और मंत्र पद्धति और फिर राधा कृष्ण और मधुर पद्धति, स्तरीकरण के तीन सोपान हैं ।

अन्ततः निंबार्क सम्प्रदाय में युगल मूर्ति की उपासना ही प्रचलित हुई । औद-

म्बराचार्य ने 'औदम्बर संहिता' में युग्म तत्त्व का विशेष स्पष्टीकरण किया है। युग्म संदर्भ में नित्य बिहार और नित्य वृन्दाबन को सम्मिलित कर लिया गया है। दोनों को समभावेन स्थित बतलाया गया है। इन्होंने कृष्ण के साथ राधा की प्रतिमा की प्रतिष्ठा अनिवार्य कही।[६७] दोनों में न्यूनाधिक भाव करना अपराध है।[६८] निंबार्काचार्य जी ने भी 'अनुरूप सौभगा' कह कर यही बात प्रकट की थी। इस संप्रदाय के कवियों ने भी अद्‍भुत जोड़ी के गीत गाये हैं।[६९] वे दोनों एक क्षण भी अलग नहीं दिखलाई देते।[७०]

हरिदास जी ने युगलोपासना का सभी भाव से प्रचार किया। इनके आराध्य हैं निकुंज बिहारी तथा विहारिणी। इनकी केलि ही लक्ष्य है (केलिमाल ग्रन्थ)। युगल-जोड़ी शाश्वत है --

प्रथम हूँ हुती, आज हू, नागे हूँ रहि हें न हरि हैं तैसें। [केलिमाल]

बस इसी जोड़ी के अनन्य उपासक हरिदास जी हैं--

ऐसें ही देखत रहौं जनम सुफल करि मानों।
प्यारे की भांवती के प्यारे, जुगल किशोरहिं जानों।[७१]

१ ५२ वल्लभ सम्प्रदाय

जिस प्रकार निंबार्क संप्रदाय की इष्ट वस्तु के तीन स्तर मिलते हैं—वासुदेव, गोपाल और युगल, इसी प्रकार न्यूनाधिक रूप से वल्लभ सम्प्रदाय में वस्तु का स्तरी-करण मिलता है। वल्लभाचार्य जी के अनुसार भगवान के माहात्म्यज्ञानपूर्वक जो स्नेह किया जाता है, वही भक्ति है।[७२] वल्लभ सम्प्रदाय के भाव-विकास में ऐश्वर्यपरक माहात्म्य ज्ञान माधुर्य में संक्रमित होता जाता है। 'वासुदेव: सर्व, मिति' में वासुदेव केन्द्रीय भक्ति की स्वीकृति है। अर्चा विग्रह का नाम भी 'श्रीनाथ' है। दशमस्कंध की सुबोधिनी' के मंगलाचरण में क्षीरशायी, लक्ष्मी सेवित विष्णु ही विराजमान हैं।[७३]

अन्य लीला विग्रह 'गोपाल' से सम्बन्धित हैं। इसमें बाल-गोपाल, ग्वाल गोपाल और गोपीनाथ सम्मिलित हैं। वास्तव में यही वस्तु वल्लभ संप्रदाय के भक्त कवियों को इष्ट थी। इसकी अमित विस्तृति सूर और परमानन्ददास जैसे कवियों में मिलती है।

अंतत: इस संप्रदाय की गोपालपरक वस्तु का पर्यवसान भी मधुर युगल-भावना में हो जाता है। अपने अन्तिम समय में, भक्तों के द्वारा यह पूछे जाने पर कि सूर

तुम्हारी 'वृत्ति' इस समय कहाँ है, उन्होंने 'युगल रूप' में ही वृत्ति के केन्द्रित होने की बात कही थी।[७४] इसी प्रकार परमानन्ददास जी का मन भी युगल-स्वरूप लीला में हिलग रहा था। साथ ही गोपी-भाव भी इनके साथ संलग्न था।[७५]

यह पर्यवसान आचार्य मानस की मान्यता का ही परिणाम था। आचार्य बल्लभ में ही माधुर्योपासना का समावेश हो गया था।[७६] श्री बिट्ठलनाथ जी ने स्पष्ट रूप से निकुंज सेवा में सखी/किंकरी भाव से उपस्थित होने की कामना की है।[७७] प्रियतम के समागम के क्षणों में राधा के मन में जो उल्लास प्रस्फुटित होता है, उसके देखने की कामना गोस्वामी जी ने की है।[७८] इस प्रकार विट्ठलनाथ जी ने वल्लभसम्प्रदाय में राधावाद की ही नहीं, सखीवाद की स्थापना भी कर दी। यही राधाभावापन्न सम्प्रदायों का प्रभाव हो सकता है।[७९]

प्राय: इसी प्रकार का विकास चैतन्य मत का हुआ। ब्रजभाषा साहित्य से सम्बद्ध अन्य भक्ति संप्रदाय तो आद्यन्त नित्य लीलावादी रहे ही।

१-६ लीला के आयाम

लीला तत्त्व के तीन आयाम हैं : युगल, सखी और लीलाधाम। तात्त्विक दृष्टि से सखी और लीलाधाम भी युगल से अभिन्न हैं। लीला की क्रियान्विति के लिए ये दोनों आयाम युगल से ही निष्पन्न हुए हैं। इनकी संसृष्टि पर आगे कुछ विचार किया गया है। इसकी पृष्ठभूमि में 'यामल' और 'युगनद्ध' की स्थिति महत्त्वपूर्ण है।

१.६१ युगल

पीछे यह देखा जा चुका है कि 'अद्वैत' लीला संदर्भ की सिद्धि के लिए 'दो', 'तीन' या 'बहु' में संक्रमित हुआ। शक्ति और शक्तिमान के विलास की भावना 'युगल' में मांसल हुई। युगल तत्त्व का विकास भी क्रमशः हुआ है। भक्ति साहित्य में तीन युगल मिलते हैं : लक्ष्मी नारायण, कृष्ण रुक्मिणी तथा राधा कृष्ण।

१.६११ लक्ष्मी-विष्णु युगल

विष्णु-लक्ष्मी युगल की कल्पना विष्णु पुराण में विस्तृत मिलती है।[८०] परवर्ती पुराणों में इस युगल का भावात्मक संस्कार मिलता है। पांचरात्र आगम में भी लक्ष्मी की प्रतिष्ठा है : परवासुदेव की प्रथम परिणति लक्ष्मीपति के रूप में ही होती है। प्रत्येक जीव कोटि में पुरुषवाची विष्णु और स्त्रीवाची लक्ष्मी मानी गई है।[८१] दोनों

साथ ही अवतार (युगलावतार) लेते हैं।[८२] प्रत्येक अवतार-युगल इन्हीं का प्रतिरूप है।[८३]

पांचरात्र साहित्य में वासुदेव (=नारायण) लक्ष्मीपति हैं।[८४]

वासुदेव पुराण और पांचरात्र से प्रेरणा और सामग्री ग्रहण करके श्री संप्रदाय में लक्ष्मी-नारायण युगल प्रतिष्ठित होता गया।

'श्री' शब्द लक्ष्मीवाचक है। श्री संप्रदाय में लक्ष्मी संबंधी अनेक स्तोत्र ग्रन्थ मिलते हैं।[८५] फिर भी इस संप्रदाय की दोनों शाखाओं में लक्ष्मी का प्राधान्य समान रूप से मान्य नहीं है। तिगलइ शाखा में लक्ष्मी तत्त्व की स्थिति यह है: लक्ष्मी की प्रकृति अणु प्रमाण है। उसकी स्थिति भगवान से निम्न, पर महत्त्वपूर्ण एवं अद्वितीय है। लक्ष्मी का स्तर सान्त जीव के रूप में है। उसका व्यावहारिक रूप जीव के संबंध में प्रकट होता है: जगत के जीवों की वह सहायता करती है। परलोक में नित्य मुक्त जीव भी लक्ष्मी से उपकृत होते हैं। जगत की सृष्टि, पुष्टि और प्रलय में लक्ष्मी का हाथ नहीं है। मोक्ष का एक मात्र उपाय भगवान ही है। वड्गलइ शाखा में लक्ष्मी का माहात्म्य बढ़ जाता है।

श्री यामुनाचार्य की कृति 'स्तोत्ररत्नम्' में श्री और नारायण की भक्ति प्रतिपादित है। किन्तु उनकी 'चतुःश्लोकी' लक्ष्मी की स्तुति में ही संलग्न है। इसमें लक्ष्मी विष्णु प्रिया के रूप में प्रतिष्ठित हैं। आत्मा की विमुक्ति लक्ष्मी के योगदान से ही सम्भव है। श्री वेदांतदेशिकाचार्य जी ने भी 'श्री स्तुति' नाम से लक्ष्मी स्तोत्र लिखा। इस पर आलवंतार की चतुःश्लोकी, कुरत्तल्वन के 'श्रीस्तव' तथा पाराशर पत्तार के 'श्री गुणरत्न कोश' का प्रभाव है। श्री भूदेवी स्तोत्र भी इन्होंने लिखा।

श्री लोकाचार्य जी ने 'सार संग्रह' में द्वयमंत्र की जो दस सूत्री व्याख्या की है, उसमें उपासना के महत्त्वपूर्ण भाग के रूप में लक्ष्मी के चरणों की पूजा स्वीकार की गई है। इनकी लक्ष्मी संबंधी धारणा[८६] बहुत महत्त्वपूर्ण है। मोक्ष के सम्बन्ध में लक्ष्मी चेतना और ईश्वर के बीच मध्यस्थता करती है। लक्ष्मी के तीन गुण हैं: अनन्यरहत्व, पारतन्त्र्य (विष्णु पर) तथा कृपा। इन तीनों की समन्विति और क्रियान्विति सीता में देखी जा सकती है। 'कृपा' से प्रेरित होकर, सीता भक्त की ओर से क्षमा याचना करके ईश्वर से उसे क्षमा दिलवाती है।[८७] एक ओर तो वह भगवान की 'इच्छा' को प्रेरित करती है और दूसरी ओर उसकी कोमलता को देखकर भक्त का हृदय द्रवीभूत हो जाता है। पतित की पाप भावना से उनकी 'कृपा' सक्रिय होती है।

लक्ष्मी जीव की भाँति 'मकर' नहीं 'अकर' है। पांचरात्र प्रमाण[८८] के आधार पर लक्ष्मी को भगवान का अविभाज्य अंग माना गया है। वह ईश्वरवत् अनन्त है। रामायण-प्रमाण के आधार पर लक्ष्मी से स्वतंत्र ब्रह्म-धारणा को ही असम्भव माना गया।[८९] वह अणु नहीं 'विभु' है अर्थात् वह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।[९०] भगवान् के समान ही लक्ष्मी समाराध्या है। वस्तुतः उपासना अद्वय युगल को ही समर्पित होती है। सृष्टि, पुष्टि और प्रलय में ही नहीं, भगवान के प्रत्येक कार्य में लक्ष्मी का योग-दान रहता है। वह 'शेषी' है। किटम्बीआच्चान ने नंजियार से कहा कि श्री रामानुजा-चार्य ने जहाँ विष्णु का नाम लिया है, वहाँ उस नाम में लक्ष्मी को भी समाविष्ट मानना चाहिये।[९१] रामानुजाचार्य के एक शिष्य राममिश्र के अनुसार लक्ष्मी और विष्णु मिल कर ही ब्रह्म हैं।[९२] इस प्रकार इस शाखा में लक्ष्मी की स्थिति विष्णु के समकक्ष हो जाती है। विष्णु और लक्ष्मी परस्पर पूरक तत्त्वों के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

लक्ष्मी की इस शक्ति की ओर दोनों ही शाखाओं ने संकेत किया है कि वह ईश्वरीय-न्याय-विधान को कृपा में बदल सकती है। पाराशर पट्टान ने लिखा है कि कि पहले मैं लक्ष्मी की शरण में जाऊँगा और पीछे भगवान की शरण में। लक्ष्मी सहित विष्णु को ही ये अपना कैंकर्य समर्पित करते हैं।[९३] इस प्रकार युगलोपासना का तत्त्व ही अन्ततः मान्य रहा।

श्री वेदान्तदेशिकाचार्य जी ने 'भू स्तुति' और 'गोदास्तुति' की भी रचना की है। इनकी प्रतिष्ठा लक्ष्मी की सखियों के रूप में भी मिलती है।[९४] विष्णु पूजा-विधान के साथ साथ लक्ष्मी की पूजा का विधान पांचरात्र साहित्य में विस्तार से मिलता है।[९५]

यद्यपि कहीं कहीं, पौर्वापर्य में विष्णु से पूर्व लक्ष्मी की स्थिति दिखलाई पड़ती है, तथापि दाक्षिणात्य आचार्य मानस विष्णु को और लक्ष्मी को समान धरातल पर रखता है। श्री यामुनाचार्य ने चतुःश्लोकी में जहाँ लक्ष्मी का स्तवन किया है, वहाँ अपने 'महापुरुष निर्णय' में विष्णु की महिमा का गान किया है।

आल्वार साहित्य में 'गोपाल' वस्तु की तो झाँकियाँ मिलती हैं, जिसमें गोपी-भाव भी सम्मिलित है, किन्तु राधा-कृष्ण का शुद्ध युगल रूप इसमें प्रतिष्ठित नहीं हो पाया है। दक्षिण में उद्भूत निबार्काचार्य और वल्लभाचार्य जी ने अपना प्रचार क्षेत्र ब्रज और वृन्दाबन को बनाया। इन दोनों के द्वारा प्रवर्तित संप्रदायों की लीला वस्तु का पर्यवसान युगलाश्रित माधुर्य में हुआ।

लक्ष्मी विष्णु युगल का यत्किंचित सौन्दर्यतात्त्विक रूपांतरण कृष्ण-रुक्मिणी युगल में हुआ।

१.६१२ कृष्ण-रुक्मिणी-युगल

आगम साहित्य ने मानुष वासुदेव के दक्षिण पार्श्व में रुक्मिणी को परिकल्पित किया।[६६] चतुर्व्यूह के अन्य विंदु भी शक्ति सहित युगल रूप में कल्पित हैं।[६७] किन्तु यह युगल भी पूर्णतः माधुर्यमय नहीं हो पाया।

ब्रजभाषा के काव्य में लक्ष्मी-नारायण युगल तो प्रायः उपेक्षित ही रहा। ब्रज के साहित्य और लोक साहित्य में कृष्ण-रुक्मिणी युगल अवश्य मिलता है। पर, यह भी माधुर्यपरक राधा-कृष्ण युगल के सामने हतप्रभ हो जाता है।

१.६१३ राधा कृष्ण युगल

लक्ष्मी-नारायण एवं कृष्ण-रुक्मिणी युगल ऐश्वर्यमय होकर प्रतिष्ठित हुए। लक्ष्मी नारायण की सौन्दर्यतात्विक सीमा कृष्ण-रुक्मिणी में पहुँच गई। इसके विपरीत माधुर्याश्रित राधा-कृष्ण युगल शक्तिवादी और तांत्रिक दर्शन से प्रेरणा और सामग्री लेकर मुख्यतः पूर्वी भारत में उदित हुआ। इस युगल की सौन्दर्यतात्विक संभावनाएँ अमित और अद्भुत है, जो आज तक भी नहीं चुकी हैं। विष्णु-लक्ष्मी और कृष्ण-रुक्मिणी युगल भी इसमें पर्यवसित हो गये। पूर्वी भारत तथा ब्रजभूमि में विकसित सभी भक्ति संप्रदाय राधा-कृष्ण युगल की रसकेलि से आप्लावित हो उठे। संसृष्ट निकुञ्ज लीला में नायक और नायिका का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा : दोनों की मधुर और दार्शनिक परिणति युगल में हो जाती है। युगल के दोनों केन्द्र पहले पृथक-पृथक संसृष्ट हुए, फिर दोनों परस्पर समन्वित होकर अद्वय युगल में संसृष्ट हो गये। युगल तत्व के विनिश्चय के लिए तीन तत्वों की कसौटी निर्धारित की जा सकती है :

१. तात्विक क्षद्वैत > लीलार्थद्वैत > लीला में अद्वय युगल > लीला में भावात्मक अद्वय।

२. शक्ति (राधा) और शक्तिमान (कृष्ण) के युगल में शक्ति के प्राधान्य की दृढ़ धारणा।

३. युगल के ऐश्वर्य विलास की अस्वीकृति और माधुर्य की एकान्त प्रतिष्ठा।

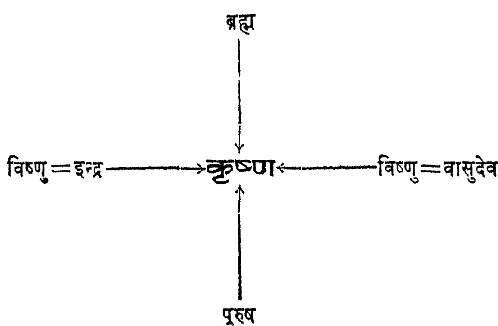
इस कसौटी पर कसने पर लक्ष्मी-विष्णु और कृष्ण-रुक्मिणी युगल पारिभाषिक रूप से इस कोटि में नहीं आते। दोनों में प्रथम तत्व तो मिलता हैं, पर शेष दो तत्व

नहीं मिलते। लक्ष्मी और रुक्मिणी को विष्णु ओर वासुदेव से अधिक महत्ता प्रदान नहीं की गई। साथ ही ये दोनों ऐश्वर्य गुण से संबद्ध रहे। उपर्युक्त तीनों दृष्टियों से राधा-कृष्ण युगल ही अपने समस्त अर्थों में युगल है।

वैष्णव सहजिया और चैतन्यमत में, राधा-कृष्ण युगल की एकान्त प्रतिष्ठा है। अन्य रसिक संप्रदायों में भी युगलावतार की स्वीकृति[९८] और अंश-कला पर आधारित अवतार भावना की उपेक्षा है। अंश-कला अवतार भी इस भावना की कामना रखते हैं।[९९] युगल भावना के केन्द्र वृन्दाबन धाम का सेवन अंश-कला रूप करते हैं।[१००] राधा वल्लभ युगल से ही अंश-कला अवतार प्रादुर्भूत होते हैं।[१०१] सूरदास जी ने युगलावतार का कथन स्पष्ट रूप से किया है।[१०२]

राधापरक पुराणों और उपनिषदों ने राधा की अलौकिकता और प्रधानता के स्पष्ट कथन किये हैं।[१०३] स्वयं कृष्ण राधा की दिव्यता का कथन करते हैं।[१०४] नारद के द्वारा राधा स्तुत्या है।[१०५] राधा सम्बन्धी अनुष्ठानों का भी विधान मिलता है।[१०६] ब्रजभाषा साहित्य में यह परम्परा चलती मिलती है। हरिदासी कवियों में राधा की अलौकिकता के स्पष्ट और प्रभूत उल्लेख मिलते हैं।[१०७] सूर ने राधा को शेष, महेश, गणेश के द्वारा स्तुत्या कहा है। उमा, रमा, सची आदि उनके दर्शन के लिए आती है।[१०८] वेद भी राधा की स्तुति करते हैं।[१०९]

जिस प्रकार समस्त आधिदैविक और आध्यात्मिक वस्तु का संक्रमण, लीला-वस्तु की संसृष्टि में हुआ, उसी प्रकार लीलानायक का व्यक्तित्व भी संसृष्ट हो उठा। लीला नायक के व्यक्तित्व की संसृष्टि को इस प्रकार समझा जा सकता है।



पुरुष की, (विराट और अन्तर्यामी में होती हुई) ब्रह्म की, (सविशेष, सगुण, साकार में होती हुई), इन्द्र की ('गोप' में होती हुई) और विष्णु की (वासुदेव में होती हुई) संक्रमिति कृष्ण के संसृष्ट व्यक्तित्व में हुई।

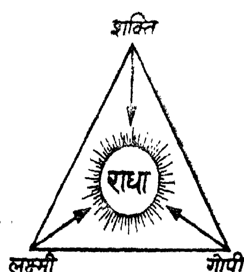
संसृष्टि की एक झाँकी चैतन्य संप्रदाय में प्राप्त है। श्रीमद्भागवत के अनुसार अद्वय ज्ञान तत्त्व के तीन नाम हैं: ब्रह्म, परमात्मा और भगवान। जीव गोस्वामी ने कहा: श्रीकृष्ण=स्वयं भगवान; ब्रह्म=श्रीकृष्ण की चिन्मात्र सत्ता; परमात्मा (माया को वशीभूत करके अपने अंश समूह द्वारा वैभव प्रकाश करने वाला)=श्रीकृष्ण का अंश; नारायण (परम व्योम निवासी)=श्रीकृष्ण का एक रूप विशेष।[११०] रूप गोस्वामी के अनुसार भी वैकुण्ठनाद षडैश्वर्यपूर्ण लक्ष्मीकांत भगवान श्री नारायण श्रीकृष्ण की विलास-मूर्ति हैं।[१११]

निंबार्की हरिव्यासदेवाचार्य जी भी ब्रह्म को कृष्ण के पदनख की आभा मात्र मानते हैं।[११२] इन्होंने वैकुण्ठनाथ को श्रीकृष्ण का विलास कहा है।[११३]

२ लीला नायिका : (=राधा) का संसृष्ट व्यक्तित्व

कृष्ण की भाँति राधा का व्यक्तित्व भी संसृष्ट है। मोटे रूप से तीन विंदु संक्रमित होते हुए राधा के व्यक्तित्व में संसृष्ट हुए हैं।

राधा के व्यक्तित्व की संसृष्टि को कुछ विस्तार से नीचे स्पष्ट किया गया है।



३.१ श्री (=लक्ष्मी)=राधा

श्री=राधा कल्पना ब्रज में मिलती है। बरसाने में राधा को 'श्रीजी' कहा जाता है। एक व्याख्या के अनुसार लक्ष्मी > रुक्मिणी तथा श्री > राधा, यह क्रम सिद्ध होता है [११४] राधा का प्रतीकात्मक सम्बन्ध पहले इन्द्र से ही हुआ, इसीलिए उसका नाम 'राधानां पते' हो गया।[११५] पूर्वोक्त संक्रमण विधि से कृष्ण राधापति हो गये : राधापति=इन्द्र>विष्णु>कृष्ण। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्ण ने राधा को 'श्री' कहा है : 'त्वं च श्रीस्त्वं।' साथ ही उसे संपत्ति भी कहा गया है।[११६] मूर्द्धाम्नाय तन्त्र में कहा गया है कि कोई तुमको श्री कहता है और कोई गौरी या परेशी।[११७]

रांसान्तर्गत ब्रह्म शक्ति 'राधास्' (=लक्ष्मी) ने राधा में प्रवेश किया। इसीलिए कृष्ण ने उनके साथ विशेष रमण किया।[११८] इस प्रकार लक्ष्मी और राधा में अभेद है।[११९] वृन्दाबन में राधा में ही लक्ष्मीत्व है।[१२०]

३.२ राधा=एक प्रधान गोपी

विष्णुपुराण में राधा नाम नहीं मिलता, पर एक विशेष प्रेम मात्र सखी का उल्लेख मिलता है।[१२१] भागवत भी इसी परम्परा में आती है। भागवत में 'राधा' शब्द अन्य अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।[१२२] आगे के आचार्यों ने प्रधान गोपी के स्थान पर राधा को प्रतिस्थापित कर दिया। वल्लभ सम्प्रदाय में भी राधा प्रधान गोपी ही है।[१२३] नन्ददास ने यही कहा है।[१२४]

किन्तु रसिक या सखी संप्रदाय में राधा गोपी नहीं है। वह तो परिपूर्णतम सागर है।[१२५] इस आधार पर वल्लभ सम्प्रदाय को रसिक सम्प्रदायों से अलग किया जा सकता है। वैसे वल्लभाचार्य जी के पश्चात् वल्लभ सम्प्रदाय में भी राधा=प्रधान गोपी की भावना शिथिल होती मिलती है। चैतन्य सम्प्रदाय के अनुसार कृष्ण कान्ताओं में राधा श्रेष्ठ है।[१२६] क्षेमेन्द्र के अनुसार, जैसे भौंरे को सभी फूलों से अधिक जाती फूल प्रिय होता है, उसी प्रकार गोपांगना यूथ में कृष्ण को राधा प्रिय है।[१२७]

राधा का गोपियों में प्रधान होना सकारण भी कहा गया है। वल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार, गोपियाँ रसात्मक सिद्धि करने वाली हैं और राधा स्वयं रसात्मक सिद्धि है।[१२८] गोपियाँ स्वयं राधा को प्रधान मानती हैं क्योंकि वे अनन्त और पूर्ण हैं : गोपियाँ अधूरी हैं।[१२९] राधा-गोपी की इस प्रधानता के कारण ही, कृष्ण राधा-गृह में

सदेह निवास करते हैं तथा अन्य गोपियों के यहाँ उनका प्रकाश भाव ही रहता है।[१३०]

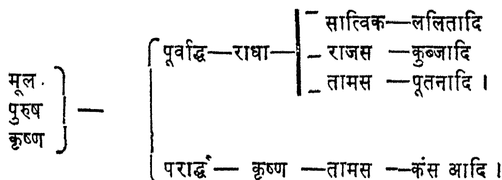
मनोवैज्ञानिक और नैतिक कारणों ने भी गोपियों के स्थान पर एक प्रमुख गोपी (=राधा) की कल्पना अनिवार्य कर दी।[१३१] सादृश्य की दृष्टि से जिस प्रकार विष्णु 'श्री' (=लक्ष्मी) के आधार पर 'एक प्रिया' बन गये, उसी प्रकार कृष्ण राधा-प्रिय हो गये।

केन्द्र और परिधि में मूल अन्तर नहीं है। केन्द्र की स्फीति ही परिधि है। राधा केन्द्र है : चारों ओर गोपी दल हैं। चंद्रावली राधा की प्रधान सखी है। विशाखा, ललिता, श्यामा आदि विभिन्न दलों की नायिकाएँ हैं।[१३२]

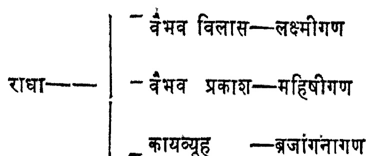
३.३ राधा गोपी तात्विक अभेद

राधा और गोपियों में तात्विक अन्तर नहीं रहा।

पुराणों में राधा के शरीर से गोपियों के उद्भव की बात कही गई है।[१३३] गोपियाँ ही नहीं, कृष्ण की पटरानियों और कृष्ण लीलाओं से संबद्ध तामस शक्तियों का जन्म भी राधा से हुआ। क्रम इस प्रकार रहा :[१३४]



इस प्रकार राधा मूल शक्ति है। गोपियाँ इस मूल शक्ति की लीला परक विस्तृतियाँ हैं। देह-जीव न्याय से सूर ने इसका कथन किया है।[१३५] चैतन्य सम्प्रदाय में राधा>गोपी भावना को इस प्रकार दिखलाया गया है :[१३६]



इस प्रकार कृष्ण कांताओं के माध्यम से अकेली राधा ही कृष्ण को विचित्र लीलास्वादन कराती है।

इस प्रकार अनन्त केन्द्रीय वस्तु एक केन्द्रीय वस्तु में परिणत हो गई। भागवत में यह भी संकेत है कि भगवान अपने ही प्रतिबिंब रूप अनन्त शक्ति रूपों के साथ विलास करते हैं।[१३७] सभी का समाहार एक महाबिंब में हो जाता है।

३-४ राधा=शक्ति

३.४१ त्रिकेन्द्रीय वस्तु > राधा केन्द्र

पांचरात्र पद्धति में जहाँ पर वासुदेव के साथ एक ही शक्ति लक्ष्मी परिकल्पित है, वहाँ व्यूह वासुदेव की तीन शक्तियाँ हैं : श्री, भू, लीला।[१३८] सम्भवतः 'लीला' विष्णु की सृष्टि लीला का ही प्रतीक है।[१३९] तीन शक्तियों की कल्पना अन्य दर्शनों में भी 'त्रिक् सिद्धान्त' के रूप में मिलती है।

पाशुपत शैव सिद्धान्त में जहाँ त्रिदर्शन,[१४०] त्रिपक्ष,[१४१] तीन अवस्थाएँ[१४२] तथा तीन वाचाएँ मानी गई हैं, वहाँ तीन शक्तियों की भी मान्यता है : इच्छा, ज्ञान और क्रिया। वैष्णव परम्परा में भी शक्ति का त्रिधा विभाजन मिलता है : माया शक्ति, तटस्थ शक्ति और स्वरूप शक्ति। इनमें से प्रथम का संबंध जगत के आविर्भाव से और द्वितीय का संबंध जीव के आविर्भाव से है। स्वरूप शक्ति का स्तर भेद इस प्रकार है :[१४४]

सच्चिदानंद
- सदंश —संधिनी शक्तिः सत्ता धारण करना / कराना
- चिदंश —संवित शक्तिः स्वयं को जानना / जनाना
- आनंदांश—ह्लादिनी शक्तिः स्वयं आनन्दित होना / करना

प्रायः स्वरूप शक्तियों--और विशेष रूप से आह्लादिनी शक्ति—के आश्रय से ब्रह्म अन्तरंग लीला-विलास में तत्पर होता है। लीला-विलास के सम्पादन में सहायिका, चिच्छक्ति की मूर्त, विग्रह रूप 'योगमाया' भी एक शक्ति है। यही लीला रस का आस्वादन कराती है।

ब्रजभाषा साहित्य में कहीं-कहीं सृष्टिकारक शक्ति के रूप में राधा की मान्यता मिलती है।[१४५]

उपर्युक्त ३ शक्तियों में से भी अंततः ह्लादिनी शक्ति की ही एकांत प्रतिष्ठा हो गई।

इसी का सौन्दर्यतात्विक विकास राधा के रूप साहित्य और कला में होता रहा। अन्य शक्तियाँ सहायिका या आश्रिता हो गईं।

३.४२ द्विकेन्द्रीय वस्तु > राधा केन्द्र

जैसा कि पहले देखा जा चुका है, पांचरात्र साहित्य में श्री-भू, श्रिय-पुष्टि (=तुष्टि) नामों से मूल सत्ता के द्विकेन्द्रीय शक्ति-लीला विलास को मूर्तित किया गया है।[१४६] पांचरात्र और पौराणिक परम्परा में रुक्मिणी-सत्यभामा के रूप में दोनों केन्द्रों का विकास हुआ : श्री=रुक्मिणी (कनकाभ); भू=सत्यभामा (श्यामला)। प्रायः इसी सादृश्य पर राधा-चन्द्रावली युग्म बना।

वल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य में चन्द्रावली को स्वामिनी कहा गया है।[१४७] कभी-कभी स्वामिनी राधा भी कही गई हैं।[१४८] चंद्रावली की स्थिति कृष्ण के दक्षिण भाग में बतलाई जाती है : 'श्री ठाकुरजी के दक्षिण भाग में चन्द्रावली जी विराजत हैं।'[१४९] श्री वल्लभाचार्य जी में चन्द्रावली जी का आवेश था। इसीलिए आचार्य जी संप्रदाय में स्वामिनी के रूप में भावित रहे।

ये दोनों वस्तु केन्द्र ही नहीं, भाव केन्द्र भी हैं। राधा में स्वकीया रमणी की झाँकी मिलती है और चन्द्रावली जी में परकीय सतीत्व की।[१५०] अन्त में चन्द्रावली केन्द्र भी राधा केन्द्र में समाविष्ट हो गया ; वह राधा की प्रिय सखी बन गई। चैतन्य मत में यद्यपि कृष्ण-प्रियाओं में राधा एवं चन्द्रावली को प्रमुख माना गया है,[१५१] तथापि गुणों की दृष्टि से राधा ही सर्वाधिका है।[१५२]

३.४३ राधा : आह्लादिनी शक्ति

सच्चिदानन्द की आनन्द शक्ति का विलास सौन्दर्यतात्विक संभावनाओं से युक्त है। यह रागात्मक केन्द्र का ही विकास विलास है। राधा इसी शक्ति का प्रतीक

तात्विक दृष्टि से राधा ह्लादिनी शक्ति है।[१५३] वैसे अन्य शक्ति में रूपों में भी राधा मान्य है,[१५४] फिर भी सबसे प्रमुख रूप ह्लादिनी का ही है[१५५] और इसमें प्रायः सभी प्रमुख रूप समाविष्ट हो जाते हैं। निरतिशय आनन्द का नाम ही राधा है।[१५६] शक्तिवादी दर्शनों में राधा का यही रूप मिलता है।

३.५ राधा कृष्ण : समतुल्य

जिस दार्शनिक संधारणा के अनुसार राधा का आविर्भाव कृष्ण से होता हैं, उसके अनुसार कृष्ण की कुछ मुख्यता व्यंजित हो जाती है। जब कृष्ण और राधा दोनों को किसी मूल तत्व (प्रेम या अव्यय पुरुष कृष्ण) से आविर्भूत कहा जाता है, तो राधा कृष्ण में स्वतः ही समतुल्यता आ जाती है। इस समतुल्यता को अनेक ब्रजभाषा कवियों ने अभिव्यक्ति दी है। राधावल्लभ संप्रदाय में आरम्भ में समतुल्यता मान्य रही।[१५७] हरिदास जी ने भी सर्वथा समतुल्यता की बात कही है।[१५८] सूर के अनुसार दोनों में से किसी को 'घटि-बढ़ि' कहना संभव नहीं।[१५९] ये दोनों परस्पर एक दूसरे के वश्य हैं।[१६०] इस प्रकार दार्शनिक समतुल्यता भावात्मक समतुल्यता में संक्रमित होती है। यहाँ तक कि कोक कला में भी दोनों समतुल्य हैं।[१६१] रतिरण में भी कोई किसी से पीछे नहीं।[१६२] राधा अपने यौवन को भी कृष्ण के यौवन से तौलती है।[१६३]

दोनों की समतुल्यता काव्य वस्तु के स्तर पर आकर अधिक रसमय हो जाती है : दोनों का रूप सौन्दर्य अनिवर्चनीय है। दोनों के शरीर पर काम की एक सी झलक है। दोनों का प्रेम एक से एक अधिक है। रस लंपटता में दोनों समान हैं। केलि की चाह भी दोनों में समान बनी रहती है। एक दूसरे के कामपरक मनोरथ पूर्ण करने में दोनों ही समान उदारता से भरे हैं। इस प्रकार दोनों दंपति रस में 'संमतूल' हैं।[१६४] चातुर्य, रूप और गुण सभी में दोनों समान हैं।[१६५]

३.६ राधा प्राधान्य

३.६१ प्रेरणा स्रोत

शाक्त और तंत्र साहित्य में शक्ति का प्राधान्य स्वीकृत है। तंत्र में सखी संप्रदाय के राधा प्राधान्य को कुछ विद्वान शाक्त-तन्त्र दर्शन से जोड़ना चाहते हैं।[१६५] कुछ विद्वान इस संबंध का विरोध भी करते हैं।[१६६] कुछ वैष्णव तंत्रों की भी रचना हुई।[१६७] चाहे शाक्तों की पद्धति सखी भाव का स्रोत नहीं हो, पर राधा के प्राधान्य पर शक्ति के प्राधान्य का प्रच्छन्न प्रभाव स्वीकार कर लेने से अनर्थ नहीं होगा।

साथ ही कुछ वैष्णव उपनिषदों की रचना भी हुई। इनमें राधा-प्राधान्य के संकेत मिलते हैं। राधातापिनी में 'मासा यस्याः कृष्ण देहोऽपि गौरो जायते'[१६८] मिलता है। इसकी झलक बिहारी की 'स्याम हरित दुति होइ' उक्ति पर है। इस उपनिषद् में अन्यत्र भी राधा के प्राधान्य का कथन है।[१६९]

पौराणिक साक्ष्य भी इसके संबंध में प्राप्त है। राधा का नाम पहले लेना चाहिए।[१७०] राधा कृष्ण के द्वारा पूज्या है।[१७१] देवी भागवत के अनुसार महाविष्णु की उत्पत्ति चिन्मयी राधा से हुई।[१७२] पांचरात्र साहित्य में राधा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी है।[१७३] इन कतिपय सूत्रों से राधा प्राधान्य की प्रेरणा-स्रोत का संकेत मिल जाता है।

जो शक्ति सृष्टि लीला या रस लीला की संपादिका है, उसके गुण गान की परम्परा मिलती है।[१७४] यही महाशक्ति है। इसके बिना सब कुछ निष्क्रिय है। शाक्त मत में तो शक्ति की प्रधानता स्वयं सिद्ध है। आत्मा और परमात्मा के बीच पुष्ट होने वाला दाम्पत्य प्रेम, त्रिगुणात्मिका प्रकृति या शक्ति के ही आधीन है।[१७५]

३.६२ साम्प्रदायिक स्थिति

रसिक संप्रदायों में तो राधा का प्राधान्य असंदिग्ध है। वल्लभ संप्रदाय की स्थिति यह है : "वल्लभ संप्रदाय में स्वयं भगवान कृष्ण अंशी हैं। गोपियों में स्वामिनी तथा प्रमुख होने पर भी राधा कृष्ण का अंश है। राधा कृष्ण की अंश स्वरूपा शक्ति तथा उनसे अभिन्न है।"[१७६] एक और वक्तव्य यह है: "भगवान रस-शक्तियों के बीच पूर्ण रसशक्ति स्वरूपा राधा के वश में रहते हैं।"[१७७] इतना अवश्य है कि आरम्भ में चाहे राधा का प्राधान्य वल्लभ संप्रदाय में न रहा हो, पर पीछे अवश्य यह मान्य हो गया। इसका स्रोत भागवतेतर होगा।[१७८] निष्कर्ष यह है कि कृष्ण भक्ति से संबंधित प्रायः सभी प्रमुख सम्प्रदायों में न्यूनाधिक रूप से राधा का प्राधान्य मिलता है। राधा वल्लभ संप्रदाय में आलंबन कृष्ण नहीं, राधा हैं। राधा की उपासना ही रसोपासना है।[१७९] निंबार्काचार्य का ध्येय यदि पर ब्रह्म कृष्ण हैं,[१८०] तो वे श्री कृष्ण के वामपार्श्व में स्थित, अनेक सखियों से संसेवित और भक्तों के सभी अभीष्टों को पूर्ण करने वाली 'वृषभानुजा' का निरन्तर स्मरण करते हैं।[१८१] हरिदासी संप्रदाय में उपास्या शुद्ध रूप से राधा हो जाती हैं।[१८२] राधावल्लभ संप्रदाय में युगलोपासना के नाम पर राधा की ही उपासना मिलती है।[१८३] राधा ही इस संप्रदाय की इष्ट, आचार्या, मन्त्रदात्री गुरु तथा स्वयं मंत्र हैं।[१८४] राधा पद रस में डूबे रहने की अभिलाषा हित जी की है।[१८५]

३.६३ भोगी : भोग्या

राधा कृष्ण के बीच भोग-भोग्या संबंध की स्थापना भी की गई है। सूरदास ने अलंकृत शैली में इसका कथन इस प्रकार किया है :

'वै मधुकर ये कंजकली, वै चतुर एउनहिं भोरी ।'[१८६]

नित्य बिहार में राधा आलंबनाश्रया हैं। कृष्ण आश्रय हैं। इसी को भोगी भोग्या संबन्ध कहा जा सकता है।[१८७] इस सम्बन्ध में भोग्या का महत्व बढ़ जाता है।[१८८]

३·६४ : राधावश कृष्ण—

ब्रज कवियों ने कृष्ण को राधा के वशीभूत कहा है। राधा की कला के कारण कृष्ण उनके वश में हो जाते हैं।[१८९] चैतन्य संम्प्रदाय में कृष्ण को राधा प्रेम के कारण उन्मत्त और विह्वल कहा गया है। प्रेमगुरु राधा के प्रेम से शिष्यनट (कृष्ण) नाचते हैं।[१९०] ब्रजभाषा कवियों ने भी कृष्ण को राधा के प्रेम के वशीभूत कहा है।[१९१] जैसे जैसे राधा कृष्ण को नचाना चाहती है, वैसे ही वैसे वे नाचते हैं।[१९२] कुछ उक्तियों में 'अलौकिकता' का संकेत करके, राधावश कृष्ण को और भी चमत्कृत किया गया है। वह राधा महाभागा है, जिसने त्रिभुवन पति को वश में कर लिया।[१९३] कहीं केवल राधा को बड़भागिनी कहकर अलौकिकता को व्यंजित किया गया है।[१९४] कृष्ण को वश करने की कला में लक्ष्मी राधा की तुलना नहीं कर सकती।[१९५] इस प्रकार राधा को लक्ष्मी से व्यतिरिक्त बतलाया गया है। हरिदासी संप्रदाय में कृष्ण की राधावश्यता प्रेम और रूप दोनों के कारण है।[१९६] वह वश्यता रतिकौशल के कारण भी है।[१९७]

युगलोपासकरसिक संप्रदायों में कृष्ण की कामपरक राधावश्यता बहुत मांसल हो गई है।

३·६५ : राधाधीन कृष्ण—

कृष्ण राधा के अधीन रहते हैं।[१९८] जो कृष्ण सबका ठाकुर हैं, उसकी ठकुरानी राधा है।[१९९] सर्वोपरि रानी राधा की प्रजा कृष्ण हैं।[२००] कृष्ण क्षण-क्षण राधा की 'अधीनी' करते रहते हैं।[२०१] कृष्ण की अधीनता, राधा के गुणों के कारण है।[२०२] राधा-चरण-शरणागत कृष्ण की अलौकिकता की ओर संकेत करके सूर ने राधातत्व को और भी भास्वर बनाया है।[२०३] राधा-शरणागत कृष्ण की बात अन्य कवियों ने भी कही है।[२०४]

हरिदासी संप्रदाय की भावना के अनुसार कृष्ण राधा की कृपा की वांछा करते हैं।[२०५] कृपालु राधा कृष्ण का पोषण-तोषण करती हैं।[२०६]

३·६६ : राधा कृष्ण: पौर्वापर्य—

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार पहले राधा का नाम लेना चाहिए फिर कृष्ण का। जो इस क्रम में उलट-फेर करता है, वह पाप का भागी होगा।[२०७] इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए वल्लभीय हरिराय जी पहले राधा का चिंतन करने के लिए कहते हैं। इसी से कृष्ण का साक्षात्कार संभव है।[२०८] श्री हित हरिवंशजी ने भी यह बात कही है।[२०९]

३·६७ : राधा: आराधिका > युगल परापर आराधक आराध्य > राधा आराध्या ।

३·६७१ : राधाः आराधिका—

एक व्याख्या के अनुसार राधा पवित्र, पूर्णतम, तथा प्रेममयी आराधना की प्रतीक है।[२१०] भागवत में भी इसका कुछ संकेत मिलता है।[२११] कृष्णयामलतन्त्र की राधा कृष्ण के नाम की आराधना करती है।[२१२] श्री हरिरामजी तथा श्री बिट्ठलनाथ जी ने राधा को कृष्णपरायणा कहा है।[२१३]

राधा के आराधिका रूप का तात्विक स्पष्टीकरण करते हुए उपनिषद् ने कहा—'पुरुष' स्वयं अपनी आराधना में तत्पर हुआ और आराधक के रूप में स्वयं प्रकट हुआ—यही रूप राधा का है।[२१४]

चैतन्य संप्रदाय में यह मान्यता हो गई कि श्री कृष्ण की वांछाओं को पूर्ण करना ही राधा की कृष्णाराधना है।[२१५] इस कल्पना के अनुसार राधा के आराधिका होते हुए भी, उनका रूप महत्वपूर्ण हो जाता है।

३·६७२ : राधा कृष्ण: परस्पर आराधक आराध्य—

'आराधना' का यह द्वितीय स्तर है। युगल में परस्पर आराध्य-आराधक भाव राधिकोपनिषद् में ज्ञापित है।[२१६] ब्रह्मवैवर्त में भी इस प्रकार का कथन मिलता है।[२१७]

३·६७३ : राधा: आराध्या—

ब्रह्मपुराण के अनुसार, जिह्वा, नेत्र, हृदय तथा सर्वांग में व्याप्त राधा की कृष्ण आराधना करते हैं।[२१८] निंबार्क संप्रदाय की भावना के अनुसार, कृष्ण राधा की आराधना करते हैं।[२१९]

३·६७४ : कृष्ण की उपास्या राधा—

राधा वल्लभ संप्रदाय में, राधा कृष्ण की उपासिका या आराधिका नहीं, वरन् वे कृष्ण की उपास्या हैं।[२२०] स्वयं हित हरिवंश जी ने राधा को कृष्ण की आराधनीया कहा है।[२२१] राधा के चरणों में बिलुंठित कृष्ण अपने को कृतकृत्य मानते हैं। कृष्ण के योगी रूप को श्री हित जी ने रसात्मक मोड़ दिया—यमुना तट के निभृत निकुंज में बैठ योगीन्द्रों के समान, राधा की चरण-ज्योति के ध्यान में लीन हो, कृष्ण राधा नाम का जप करते रहते हैं।[२२२] हरिदासी संप्रदाय के कृष्ण भी सदा राधा के ध्यान में लीन रहते हैं। ध्यान-समाधि में राधा रस के अखण्ड प्रवाह में थोड़ा भी व्यवधान हो जाने पर कृष्ण व्याकुल हो उठते हैं।[२२३]

सूर ने अलौकिकता के संस्पर्श से इस सिद्धान्त को और भी चमत्कार पूर्ण बना दिया है। जिनके चरण मुनि-वंद्य हैं, वे कृष्ण भी राधा का ध्यान धरते हैं।[२२४]

गिरधर लाल के मन में राधा का ध्यान निरंतर रहता है।[२२५] राधा के बिना कृष्ण को धैर्य कहाँ[२२६] —

ब्रह्मवैवर्त में राधा को कृष्ण पूज्या कहा गया है।[२२७]

इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि राधा-प्राधान्य का तत्व क्रमश; और निरंतर बल ग्रहण करता गया। राधा प्राधान्य का सौन्दर्यतात्विक विस्तार ब्रजभाषा काव्य में बहुत अधिक मिलता है।

३·६७५ : युगल पूजा—

राधावादी उपनिषदों और पुराणों में अकेले कृष्ण की आराधना को निरर्थक बतलाया गया है। राधिकोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है—एतामवज्ञाय यः कृष्ण या राधयितु मिच्छति, स मूढ़तमो मूढ़तमश्चेति।'[२२८] पद्मपुराण में स्वयं कृष्ण कहते हैं कि —जो मेरा भजन तो करता है, पर राधा का नहीं, वह मुझे कभी प्राप्त नहीं कर सकता है।[२२९] राधा की पूजा के बिना कृष्ण की पूजा के लिए मनुष्य अनधिकारी नहीं है।[२३०]

तन्त्र साहित्य में इस बात पर बल दिया गया है। सम्मोहन तन्त्र में एकाकी पूजा अपराध मानी गई है।[२३१]

हरिरामजी (बल्लभ संप्रदाय) ने कृष्ण-चिंतन के लिए राधा के चिंतन को अनिवार्य माध्यम कहा है (श्री मत्प्रभोश्चिन्तन प्रकारः, १०,११) श्रीहित हरिवंशजी ने कहा :राधा के चरणों का सेवन छोड़कर कृष्णसङ्ग प्राप्त करने की चेष्टा विना पूर्णिमा पूर्ण चन्द्र का परिचय प्राप्त करने के समान है।[२३२] तात्पर्य यह है कि राधा के बिना कृष्ण और कृष्ण के बिना राधा अधूरी है।[२३३]

रुद्रयामलतन्त्र में भी युगल-ध्यान का उल्लेख है—स्वाधिष्ठान चक्र (=जल-यत्व प्रधान, किंवा पद्म)=षड्दलकमल इसकी कर्णिका में अर्द्धचन्द्राकार वरुण मण्डल; इसमें वरुण बीज 'व' इसमें पकराधिष्ठित द्विभुज वरुणदेव; उनके अङ्क में राधा कृष्ण युगल।[२३४]

४ : सखी—

४·१ : तत्व बोध—

'लीला' नामक वस्तु को सुगठित और संयोजित करने वाला सखी तत्व है। बिना इस तत्व के लीला के उपकरण स्थित रहने पर भी निस्पंद रहेंगे। जिस प्रकार सम्बन्ध तत्व अर्थ तत्व के उपकरणों को जोड़कर एक सुगठित और सार्थक वाक्य को संभव बनाता है, उसी प्रकार सखी तत्व लीला के उपकरणों को समीप लाकर एक विशेष भाव-सापेक्ष स्थिति में उनको क्रियान्विति प्रदान करता है। सखी का भी अपना एक राग-संकुल व्यक्तित्व है—लीला की क्रियान्विति के पश्चात् जहाँ लीला-युगल स्वयं रमण-रस में लीन हो जाता हैं, वहाँ सखी का व्यक्तित्व भी युगल-केलि रस के दर्शन और आस्वादन में निरत हो जाता है।

आस्वाद्य के आस्वादक बनने की चाह[२३५] 'रमण' क्रिया में प्रतिफलित होती है। इस क्रिया की सिद्धि के लिए परम रस अपने को द्विधा विभक्त[२३६] कर लेता है। रमणशील युग्म के साथ-साथ एक तीसरी शक्ति प्रेरिता (क्रीड़ाशील की इच्छाशक्ति) भी स्वीकृत हुई हैं।[२३७] यही शक्ति प्रतीक रूप से सखी है।[२३८] भाव क्षेत्र में त्रिधारूप की स्थिति उसी प्रकार की है जैसे ज्ञाता–ज्ञेय-ज्ञान, कर्ता-कार्य-क्रिया आदि की है।[२३९] इस तीसरे प्रेरिता रूप में प्रेम तत्व ही अपने को प्रकट करता है। यह लीला का अनिवार्य तृतीय आयाम है। रसरूप परमात्मा से उसका अंश-अंशी सम्बन्ध है।

साथ ही प्रेम से भी ऊपर स्थित महाभाव रूपा राधा से सखियों की अभिन्नता भी संप्रदायों में स्वीकृत है।[२४०] निम्बाकाचार्य जी ने—'सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा' कहकर राधा और सखियों का घनिष्ट सम्बन्ध ज्ञापित किया है चाहे यहाँ सखी शब्द मधुर संप्रदायों की परिभाषिकता को लिये हुए न हो।

'युगल-केलि' के तीन आयाम (लाल, लाड़िली और सखी) कहने के लिये ही भिन्न हैं वास्तव में एक हैं।[२४१] हरिदास जी ने सखियों को कृष्ण मूर्ति तक कह दिया है।[२४२] चौथा आयाम निकुंज भी वास्तव में इनसे अभिन्न है। साथ ही सखियों को राधा की कायव्यूह रूपा भी कहा गया है।[२४३]

मधुर संप्रदायों में सखी का कार्य "युग्म को प्रेम की लीला के लिये प्रेरित करना, उन्हें प्रेम की गहन अचेतनता में से पुनः सावधान कर, 'अद्वय' को क्रीड़ा के लिए दो बनाए रखना" है।[२४४] राधावल्लभ संप्रदाय में सखी जीव के निजरूप की पारमार्थिक स्थिति का ही प्रतीक है।[२४५] सखी राधा का रूप वर्णन करके उसे केलि-विलास के लिए प्रेरित करती है—

राधे देखि तेरौ रूप।

× × ×

ज्यौं कही त्योंही मिलाऊँ, दै दयालुहि बाँह।[२४६]

४·२ : अनन्त सखियाँ > अष्ट सखी > ललिता—

जिस प्रकार गोपी यूथ की अनन्तता की रूढ़ि ब्रजभाव से आविष्ट संप्रदायों में है, उसी प्रकार सखियों की अनन्त संख्या के संकेत सखी भावापन्न संप्रदायों में मिलते हैं। कहीं-कहीं कोटानिकोटि सखियाँ कही गयी हैं।[२४७] आदि पुराण (१०।१) में सखियों की संख्या तीन सौ बताई है। राधा की सखियों का वर्णन भी है। किन्तु अनन्त संख्या की रूढ़ि की अपेक्षा अष्ट सखियों वाली रूढ़ि अधिक क्षिप्र और दृढ़ है।[२४८] एक प्रमुख गोपी या प्रमुख सखी की कल्पना दोनों ही प्रकार के संप्रदायों में है। भागवतानुसारी कवियों ने भी भागवतोक्त प्रमुख गोपी को राधा मान लिया

है। मधुर संप्रदायों में राधा की स्थिति तो इससे विशिष्ट है किन्तु एक प्रमुख सखी की मान्यता अवश्य प्रचलित है। यह प्रमुख सखी ललिता है।

जैसा कि पीछे देखा जा चुका है सूर ने भी राधा संदर्भ में ललिता का ही नामोल्लेख किया है। राधावल्लभ संप्रदाय में भी इन्हीं का प्राधान्य है।[२४९] हरिदासी सम्प्रदाय में ललिता की ही मान्यता है।[२५०] स्वयं हरिदास जी में ललिता का आवेश माना जाता है।[२५१] हरिदास जी ने 'भोजन सैन विहार करै ललिता की गोदी' तथा विन श्री ललिता और वरन सकै को केलि' जैसी उक्तियाँ की हैं।

इसका कारण एक परंपरा है। यह एक प्रकार से शाक्त तन्त्र के वैष्णवीकरण का प्रमाण है। ललितोपासना की एक दीर्घ परम्परा तन्त्रों में भी मिलती है। काम-कला-विकास श्री विद्यार्णव ब्रह्माण्ड पुराण, ललितोपाख्यान, षोडशी तन्त्र, त्रिपुरा रहस्य, वरिवस्था, नित्योत्सव आदि आगम एवं पुराण ग्रन्थों में ललिता (महात्रिपुर सुन्दरी) के स्वरूप एवं उपासना के रहस्यसूत्र बिखरे पड़े हैं। ललिता को उपर्युक्त उपासना ग्रन्थों में सौन्दर्य, माधुर्य, संगीत की अधिष्ठात्री महाशक्ति माना गया है।[२५२]

जिस युगल-लीला रस का विस्तार निकुंज-स्थली में होता है, उसमें ललिता की कृपा के बिना किसी का प्रवेश ही संभव नही है-- भगवत रसिक (हरिदासी) के शब्दों में—

सहज प्रेम माधुर्य, रहत अनुरागे दोऊ।
ललिता सखी प्रसाद बिना तहँ जातन कोऊ।[२५३]

युगल लीला के संदर्भ में पुष्टि मार्गीय नन्ददास जी भी युगल को झुलाने और झुलाते समय गाने के सन्दर्भ में ललिता को मुख्यता देते हैं।[२५४]

गर्ग संहिता में उल्लेख है कि राधा की दोनों भुजाओं से विशाखा, और ललिता सखियाँ उत्पन्न हुईं।[२५५] वज्जालग्ग में राधा और विशाखा को कृष्ण की दो प्रियाओं के रूप में लिया गया है।[२५६]

चन्द्रावली भी राधा की प्रिय सखी है। श्री कृष्ण के चरण नख रूपी चन्द्रभाओं की सेवा में आसक्त रहने के कारण ही उनका चन्द्रावली नाम हैं।[२५७] किन्तु रसिक संप्रदायों में चन्द्रावली की गणना अष्ट सखियों में नहीं की जाती। वल्लभ संप्रदाय और उसके साहित्य में चन्द्रावली की प्रतिष्ठा है।[२५८]

४.३ : अष्ट सखी—

अष्ट सखी की कल्पना महाभारत में भी मिलती है। जब असुरों को छोड़कर लक्ष्मी इन्द्र के पास जाती है, तब उसके साथ आठ सहचरियाँ भी आती हैं : जया,

आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, बिजित, संनति, और क्षमा।[२५९] विष्णु में भी आठ शक्तियों का परिगणन मिलता है : श्री, भू, सरस्वती, प्रीति, कीर्ति, शांति, तुष्टि, और पुष्टि। इन्हीं के द्वारा विष्णु की रक्षात्मक प्रवृत्ति प्रकट होती हैं।[२६०] आदि पुराण में श्रीकृष्ण (=विष्णु) की सखियों के यूथ की संख्या तीन सौ बतलाई गई है।[२६१] इसी पुराण में राधा की आठ प्रधान सखियों का उल्लेख है। इन परम पवित्र सखियों को देवता परम पदार्थ मानते हैं। ये आठ सखियाँ यूथों में श्रेष्ठ उत्तम प्रतिष्ठा वाली, स्वेच्छया कुंज भ्रमण करती हैं।[२६२]

तंत्र पुराण और वाणी साहित्य में अष्ट सखियों का विस्तृत विवरण मिलता है। एक संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है।

सखी	कुंज;[२६३]	वर्ण[२६४]	वस्त्र	सेवा
ललिता	अनंग सुखदा : उत्तर दल विद्युतवर्णा	गोरोचन आभा	मयूर पिच्छवत् चित्र-विचित्र	तांबूल सेवा
विशाखा	आनंद कुंज ईशानदल मेघवर्णा	बिजली के समान	तारावली सदृश	वस्त्र सेवा [ऋतुओं के अनुसार]
इंद्रलेखा	पूर्णेन्दु कुंज स्वर्ण वर्णा	हरिताल वर्ण	अनार के पुष्प के समान	केलि कलाओं की राशि एवं सकल विद्यानिधि
चंपकलता	कामलता कुंज : तप्त स्वर्णवत् : दक्षिणदल	चंपा पुष्प के समान	नीलवस्त्र	षटरस भक्ष्य-भोज सेवा
रंगदेवी	सुखदा कुंज : श्याम वर्ण वैॠत्य दल	विकसित कमल केशरवत्	जपा पुष्पवत् अरुण वस्त्र	रत्नाभरण आदि की सेवा
तुंगविद्या	आनददा कुंज : अरुण वर्ण : पश्चिम दल	तप्त स्वर्ण सदृश	पांडु २ वर्ण के	नृत्य, गीत, वाद्य आदि की शिक्षा विधियों को जानने वाली
सुदेवी	वसन्त सुखदा : हरित वर्ण : वायु दल	कदंब किंजल्क वर्ण	कसूम्भी फूल के समान रक्त वर्ण	गंध चंदन सेवा
चित्रा	पद्मकिंजल्क कुंज : चित्रवर्णा	उज्ज्वल कुंकुम के समान	हल्दी के वर्ण के	जल सेवा

मोहन महल के आस-पास सखियों की आठ कुंजें बनी हुई हैं। मोहन महल

के बीच मोहन मंडल है। उसके ऊपर अष्ट कोंण सिंहासन है। इन कोंणों पर सखियाँ स्थित हैं। केलि शैया पर श्यामाश्याम की सुरति-केलि चलती है। इस स्थल पर प्रिया-प्रियतम के अतिरिक्त किसी सखी का भी प्रवेश नहीं होता। वे केवल झरोखों या रंध्रों से केलि-दर्शन कर सकती हैं।

४-४ : व्यक्तित्व—

४-४१ : भावात्मक स्थिति—

मूलतः सख्य या मैत्री भाव से इनका व्यक्तित्व परिचालित है किन्तु यह मैत्री भाव इतना शक्तिशाली है कि इससे सम्प्रक्त होकर कोई भी भाव युगलोन्मुख हो सकता है। ये चार प्रकार के भावों से युगल को लाड़ लड़ाती हैं : पुत्र भाव, मित्र भाव, पति भाव और आत्म भाव[२६५] सखी के आश्रय से ये सभी भाव माधुर्य-मंडित हो जाते हैं। क्योंकि माधुर्य भावराट है जिसमें सभी भावों की अवस्थिति संभव है।[२६६] इस बात को एक और प्रकार से कहा गया है : सखी भाव सभी भावों में प्रविष्ट होकर उनके स्वानुरूप बना सकता है किंतु सखी भाव में अन्य भावों का प्रवेश संभव नहीं।[२६७] इस प्रकार गोपियों की भावात्मक संरचना बड़ी विशद है।

४·४२ : तत्सुख भाव

सखियों की सारी सेवाएँ तत्सुख भाव से प्रेरित रहती हैं। वे स्वयं मिलनोत्सुक नहीं हैं अपितु मधुर प्रेम की प्राप्ति के लिए राधा-कृष्ण का मिलन कराती हैं। विहार राधा और माधव का होता है और तृप्ति सहचरी वर्ग को। राधा-माधव भी साहचर्य सुख के लिए लीलाशील हैं। सखियों में कृष्ण के प्रति रति भाव नहीं होता। यदि श्रीकृष्ण की कृपा होती भी है, तो वे वासना से आकुल नहीं होतीं। यह तत्सुखभाव सिद्धांत सखी भाव को गोपी भाव से उच्चतर स्थिति प्रदान करता है।[२६८] जहाँ गोपियों और राधा को तनसुख प्राप्त होता है, वहाँ गोपियाँ केवल मनसुख लेती हैं। उनके मन में केवल गुप्त केलि के साक्ष्य की लालसा रहती है। उनकी आँखों में तेजोदीप्त निकुंज की छवियाँ उल्लसित रहती हैं। वे सदैव सिद्ध देह की प्राप्ति तथा वृंदावन निवास की कामना से युक्त हैं।[२६९]

४·५ : सखी भाव और गोपी भाव—

बल्लभ संम्प्रदाय में गोपी और सखी परस्पर पर्याय रूप में रही हैं क्योंकि यहाँ ब्रजलीला मान्य है और ब्रज अथवा गोलोक की लीलाधारिणी शक्ति गोपी सखी भी है। इसीलिए सूरदास जी के राधा मिलाप संदर्भ में सखियाँ कृष्ण की ओर कान्ताभाव से आकर्षित प्रतीत होती हैं।[२७०] गारुड़ि लीला के पश्चात्

सखी/गोपी भाव विवश हो जाती हैं, और कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए शिव की साधना की योजना बनाती हैं।[२७१] गोपियों और कृष्ण का अंग संग भी इन संप्रदायों में कहीं-कहीं व्यंजित है। गोपियों के स्वकीया परकीया भेद भी स्वीकृत हैं।

मधुर संम्प्रदायों की स्थिति इससे भिन्न है। जो कांता भाव गोपियों में मिलता है वह सखियों में नहीं। संभोगेच्छा पूर्ण कांता भाव के कारण गोपियों में सकामता की गंध है।[२७२] किन्तु सखी भाव में सकामता का पूर्ण साहित्य होने के कारण वह गोपी के कांता भाव या मधुर भाव का भी अतिक्रमण कर जाता है : यह 'महामधुर' रस है।[२७३]

जिन संप्रदायों में गोपी भाव की मान्यता है, उनमें अवतार सिद्धांत के अनुसार नित्यधाम गोलोक में घटित नित्य लीला के ब्रजलीला के रूप में अवतरित होने की बात मानी जाती है। मधुर संप्रदायों में यह भावना अस्वीकृत है, जहाँ गोपी का संबंध अवतरित नैमित्तिक लीला से है, वहाँ सखी का संबंध नित्य लीला से। सखी परात्पर तत्व को प्रेम या रस के रूप में लेकर चलती है। लोकान्तरण अथवा अवतरण का सिद्धांत उसे अमान्य है। नित्य क्रीड़ा में 'ऐश्वर्य' और गोपियों का 'विलास' निरर्थक है।[२७४] सखियों का उपास्य नित्य लीला ही है।

संभवत: पुराण साहित्य में गोपी और सखी का पारिभाषिक अन्तर स्पष्ट नहीं था। जहाँ एक स्थान पर सखी भाव से राधा-कृष्ण की उपासना पर बल दिया गया है।[२७५] वहाँ उसी पुराण में कृष्ण अपने को गोपी भाव से प्राप्य कहते हैं।[२७६] चैतन्य सम्प्रदाय में सखी तत्व का पर्याप्त विस्तार हुआ। किन्तु ब्रजलीला और नित्य लीला एवं गोपी और सखी के बीच पारिभाषिक अन्तर इतना स्पष्ट नहीं हो पाया, जितना कि राधावल्लभ संप्रदाय और हरिदासी संप्रदाय में हुआ।

४-६ : लैंगिक स्थिति—

मधुर सम्प्रदायों में सखियों को स्त्री पुरुष लिंग विवर्जित कहा गया है।[२७७] ये लिंग देह तथा सूक्ष्म देह से भी परे हैं।[२७८]इनकी देह है सिद्ध। इस देह को प्राप्त करके ही ब्रज लीलाओं का ध्यान परक रसास्वादन और श्रवण कीर्तन आदि बाह्य सेवाएँ सार्थक रूप से संपन्न होता हैं।[२७९] सिद्ध देह को प्राप्त करने की साधना राधा की कृपा से ही सफल होती है। यही निर्विकार अवस्था है।[२८०]

राधा की सहचरी के रूप में वह अवश्य ही स्त्री है। किंतु स्त्रियोचित विकारों से वह आंदोलित नहीं है। पुरुष भाव का परित्याग तो अत्यंत आवश्यक है।[२८१] युगल सेवा रस की प्राप्ति के लिये स्त्री भाव में संक्रमित हो जाना अनिवार्य है।[२८२] चाहे प्राकृतिक रूप से स्त्री देह प्राप्त न हो और चाहे स्त्रीवेश धारण भी न किया जाये, तब भी साधक को भावत: स्त्रीदेह स्वीकार करनी होती है

किन्तु यह स्त्री-रूप भी लौकिक नहीं, क्योंकि सखी भाव स्त्री-पुरुष के लौकिक भावों से परे है।[२८३] इसी तात्त्विक भूमिका में सखीभाव को भाव-शिरोमणि कहा गया है।[२८४] ललिता का भाव सिंहनी का दूध है,[२८५] जो साधक रूपी स्वर्ण पात्र में ही अविकृत रह सकता है।

४.७ दम्पति केलि दर्शन : परम पुरुषार्थ : महासुख

रसपरक हाव-भाव में निमग्न राधा-कृष्ण युगल का छवि दर्शन ललिता करती है।[२८६] सभी सखी युगल छवि का पान करती हैं।[२८७] कामदग्धा सखियाँ युगल रस से इतनी अभिभूत हो जाती हैं कि उन्हें ग्रहकाज भी विस्मृत हो जाता है।[२८८]

मधुर सम्प्रदाथों में सखी को युगल प्रेम लीला के आस्वादन के साक्ष्य का अधिकार है।[२८९] जब शैय्या भवन में रति विलास घटित होता है, तब सखियाँ कुंज भवन के गवाक्षों या रंध्रों में होकर उसका दर्शन कर सकती हैं।[२९०] इस अधिकार का उल्लेख वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में नहीं मिलता। हित हरिवंश जी ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है : 'राधा केलि कलासु कदा वृन्दावने पावने।'[२९१] यही सखी का परम पुरुषार्थ है।[२९२]

'युगल केलि' का दृश्य आस्वादन चित्त वृत्तियों को चरम सुख में केन्द्रित कर देता है। दर्शन के साथ इस सुख का स्मरण और चिंतन सखियों का उपास्य है। एक प्रकार से रस-केलि का एक उद्देश्य सहचर्य-सुख भी है।[२९३]

रास-सुख में सखियाँ प्रत्यक्ष रूप से भी सम्मिलित हो सकती हैं। यहां अप्रछन्न रूप से गोपी-भावता का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। रास का वर्णन इसी पद्धति से किया है।[२९४]

नित्य युगल लीला का आस्वादन गौड़ीय भक्त आचार्यों ने भी सभी भावों के द्वारा ही माना है।[२९५] तांत्रिक विलास साधना से इसका पर्याप्त साम्य है : "भगवान की आनन्दमयी क्रीड़ा का मानसी ध्यान, सहयोग और गायन करना वैष्णव मोक्ष दर्शन का स्वरूप माना गया है। इसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान् की आनन्दमयी नित्य-क्रिया का अधिकारी होना ही तांत्रिक मोक्ष दर्शन का चिर साध्य है :"[२९६] तांत्रिक भैरवी चक्र के समान ही भगवान के 'रतिचक्र' का विधान किया गया है। इस विधान

में शारीरिक रतिक्रीड़ा का परित्याग है। शक्ति और शक्तिमान के रतिचक्र की भावना में निमग्न रहना ही 'महासुख' है। वैष्णव रसिक सम्प्रदायों ने आगमों के रति-विधान के रहस्य को उद्घाटित किया है। भगवान की काम-क्रीड़ा का मानसी ध्यान ही युगलोपासना का केन्द्रबिंदु है। इस दिव्य रति को लौकिक रति की संरचना में परिकल्पित और अभिव्यक्त करना मधुर रस साधना से संबद्ध कवियों (= सखियों) का प्रमुख कार्य है।

४.८ सखी सेवा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सखियाँ राधा की अंतरंगा हैं। उनका कर्त्तव्य यह है कि प्रिया जी के मनोरथों को स्वयं जानकर बिना कहे तदनुसार सेवा करनी चाहिए।[२६७] सखियों का मुख्य दायित्व यह है कि दिव्य युगल की विहार रुचि को पहिचान कर विहार की योजना करें। सेवा का क्रम सुरति क्षण के पूर्व और पश्चात् चलता हैं। सुरतानन्द का वे केवल दर्शन कर सकती हैं। इस समय उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति वर्जित है। इस समय में या तो वे गवाक्षों से झाँकती है अथवा लताओं की ओट से।[२६८] सेवाएँ प्रमुखतः प्रिया जी को निवेदित रहती हैं, किन्तु कभी-कभी वे कृष्ण की सेवा में भी संलग्न मिलती हैं।

सखियों की सेवाएँ तीन प्रकार की है : औपचारिक, कलात्मक और रस परक। औपचारिक सेवाओं में व्रीड़ा खिलाना, चँवर डुलाना, इत्र देना आदि कही जा सकती हैं। रास के क्षण में संगीत और वाद्य की संगत सम्पन्न करना. कलात्मक सेवा के अन्तर्गत आती हैं। 'राधातापिनी उपनिषद्' (१०) में कहा गया गया है कि सखियाँ स्वर, ग्राम और मूर्च्छनाओं से राधा का गुणगान करती हैं। रस परक सेवाएँ साहित्यिक दृष्टि से सौन्दर्य तात्त्विक हैं। रस केलि के लिए शैय्या बनाना, प्रिया जी का केलि पूर्व शृङ्गार करना, मान के क्षणों में मानिनी राधा को मनाना और शैय्या-विलास के लिए तैयार करना, युगल में कामोद्दीपन करना और एक दूसरे के लिए संदेश वहन करना रस परक सेवाएँ हैं। 'माहेश्वर तन्त्र' (११/३१/४६) में सखी के दौत्य की सूचना है। और भी १२/४, १५, १६, २७, ३२, ३५, ३८—इसमें विरही कृष्ण है। इसी प्रकार सुरतांत सेवाएँ भी सभी प्रकार की हो सकती हैं।

सखी राधा को विहार-विधि भी सिखलाती हैं।[२६६] मान की स्थिति में सखियों की सेवा और चतुरता अधिक सक्रिय हो जाती है। कभी मानिनी में कामोद्दीपन करके कभी प्रियतम की विरह-कातरता का वर्णन करके[३००] और कभी

व्यक्तिगत रूप से कृतज्ञ होकर[३०१] मान मोचन कराया जाता है। इस प्रकार की सेवाओं का बिस्तार वल्लभ सम्प्रदाय के कत्रियों में नहीं मिलता। किन्तु सखी संप्रदायों में इनका अत्यन्त सरस विस्तार किया गया है।

जहाँ तक सखियों की सेवा की रचना का प्रश्न है, इस पर काम-शास्त्रीय और काव्य-शास्त्रीय प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। काम शास्त्र में काम सहायका सखियों की स्थिति इसी प्रकार की है।

५. लीलाधाम : वृन्दाबन

'धाम' की धारणा विविध और सुदीर्घ है। वैदिक साहित्य में परमपद, परमव्योम, ब्रह्मपुर, ब्रह्मलोक जैसे धामपरक नाम मिलते हैं। पद्मपुराण में धामों की एक लम्बी सूची मिलती है : मोक्ष, परमपद, नाक, अमृत, विष्णु मन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुंठ, शाश्वतपद, नित्यधाम, परमव्योम, सर्वोत्कृष्ट, सनातनी।[३०२] भागवत में भगवद्धाम को ब्रह्मलोक कहा गया है।[३०३] भागवत में भक्ति और अद्वैत ज्ञान का समन्वय है।[३०४] भागवत में धाम-संसृष्टि का स्पष्ट कथन मिलता है : ज्ञानियों के ब्रह्म, योगियों के परमात्मा, और भक्त के भगवान का समन्वित रूप धारण करने वाला धाम ही 'विष्णु का परमपद' है।[३०५] इसका दर्शन गोपों को कृष्ण ने कराया।[३०६] उपनिषद् के ब्रह्मपुर[३०७] का संक्रमण विष्णु के परमपद में दिखलाई पड़ता है। गीता में भी परमधाम की चर्चा है।[३०८] इन धामों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थिति 'गोलोक' की है, जिसका बीज वैदिक साहित्य में मिलता है। इसका संक्रमण ब्रज-गोकुल में हुआ। मथुरा और द्वारका भी ऐश्वर्यमय धाम के संक्रमित रूप हैं। अन्ततः सभी धामों की संसृष्टि 'वृन्दाबन' में हो गई : (गोलोक, ब्रह्मलोक, महाशून्य) > वृन्दाबन।

५.१ गोलोक बनाम वृन्दाबन

वैदिक साहित्य में गोपरूप विष्णु[३०९] से संबद्ध, गायों से भरपूर,[३१०] गोलोक का संकेत मिलता है।[३११] साथ ही ब्रज[३१२] और गोपों[३१३] का उल्लेख भी है। इस प्रकार प्राचीन काल से ही गोलोक विष्णु से सम्बन्धित था और ब्रज सामान्य लौकिक अर्थ में प्रयुक्त शब्द था। विष्णु से सम्बद्ध परमपद,[३१४] परमव्योम[३१५] जैसे नाम भी ध्यान आकर्षित करते हैं। इन शब्दों के पीछे त्रिविक्रम का संदर्भ हो सकता है। एक विचारधारा के अनुसार गोलोक सर्वोच्च लोक है।[३१६] चैतन्य संप्रदाय की विचारधारा

भी प्राय: यही है। इसी गोलोक में राधाकृष्ण का निवास बतलाया गया है।[317] साथ ही इसको कृष्ण के समान नित्य-सत्य भी कहा गया है।[318] इसकी सर्वोच्च स्थिति को ज्ञापित करने के लिए तरतम निश्चित किया गया : पाताल से ऊपर ब्रह्मांड, ब्रह्मांड से बाहर वैकुंठ, और उससे पचास कोटि योजन विस्तृत गोलोक।[319] एक और तरतम यह है : प्रकृति का संप्रसार [पृथ्वी—महर्लोक—जनलोक—तपलोक—सत्यलोक—कौमारलोक—उमालोक—शिवलोक] → महावैभव = महाविष्णुलोक → महावैकुंठ (वासुदेवादि चतुर्व्यूह का विहारस्थल) → स्वयं प्रकाश (प्रकृति से परे) गोलोकधाम।[320] यह गोलोकधाम अप्रकट है।

ऊपर के धामगत तरतम में दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं : वैकुंठ और गोलोक। फिर अवतरित लीला-संदर्भ में मथुरा, द्वारका और गोकुल धाम आये। ब्रह्म संहिता में द्वारका और माथुर मंडल नाम आये।[321] यह भी ज्ञापित किया गया कि द्वारका में वैकुंठ का और गोकुल में गोलोक का वैभव है। इस प्रकार गोकुल का स्थान द्वारका से उच्चतर रहा। किन्तु मथुरा मंडल या ब्रज का कोई स्थान इस स्थिति तक गोलोक से ऊँचा नहीं कहा गया।

मथुरा और गोकुल के पश्चात् 'वृन्दाबन' का अभ्युदय हुआ। यह गोलोक का प्रबल प्रतियोगी बना। ब्रह्म संहिता ने वृन्दाबन को गोलोक के समान भी कहा।[322] ब्रह्मवैवर्त में गोलोक के अवतरित रूप वृन्दाबन का उल्लेख है।[323] गौड़ीय आचार्यों का मत भी इसी प्रकार का है। इनके मंतव्य को इस प्रकार समझा जा सकता है।[324]

प्राकृत राज्य — १. भूलोक से ऊपर भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक
२. ब्रह्मा का सत्यलोक
३. पृथ्वी, अप, तेज, वायु, एवं आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति के आवरण।

कारणार्णव — चिन्मय जलपूर्ण : अन्तर्यामी, प्रथम पुरुष श्री महाविष्णु का निवास [योगियों के आराध्य]

ब्रह्मलोक — ब्रह्म का निवास : ज्ञानवादियों के आराध्य। ज्योतिस्वरूप। कोई लीला नहीं। सिद्धलोक।

परव्योम — श्रीकृष्ण की विलासमूर्ति चतुर्भुज स्वरूप श्री नारायण द्वितीय चतुर्व्यूह के साथ विराजमान । [यहीं शिवलोक, साकेतलोक, अयोध्या, श्रीनृसिंहादि के अनन्त वैकुन्ठधाम । नित्यसिद्ध, चिन्मय । अनंतलीलाएँ और लीला उपकरण । ऐश्वर्य+माधुर्य : प्रधानता ऐश्वर्य की शुद्ध भक्ति के साधकों को गम्य ।

द्वारका — वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध-चतुर्व्यूह विराजमान । ऐश्वर्य मिश्रित माधुर्य । प्रधानता ऐश्वर्य की ।

मथुरा — श्री वासुदेव तथा संकर्षण विराजमान । ऐश्वर्य मिश्रित माधुर्य ।

ब्रजधाम — १. सहस्रदल पद्माकृति कार्णिका स्थान पर कृष्ण का अंतःपुर—नन्द, यशोदा, राधा आदि के साथ निवास कमल किंजल्क स्थान पर प्रेम-भाजन गोपगण [यह भाग गोकुल]

२. गोकुल के बाहर कमल पत्रों के स्थान पर गोपसुन्दरी गणों के उपवन—यही वृन्दाबन या केलि वृन्दाबन ।

३. गोलोक—गोकुल, वृन्दाबन, तथा गोष्ठमंडल के बाहर चारों ओर चतुष्कोंणधाम - यही श्वेतद्वीप या गोलोक ।[३२५]

गोलोक [अप्रकट वृन्दाबन] प्रकट वृन्दाबन का अप्रकट लीलानुगत है ।[३२६] इस प्रकार दोनों एक हैं ।[३२७] प्रकट वृन्दाबन में कृष्ण की नरलीला घटित होती है । दास्य, साम, वात्सल्य, और माधुर्य चारों प्रकार के परिकरों सहित इसमें श्री लीला विहारी कृष्ण विलसित हैं ।

इस विवरण में यद्यपि गोलोक से ऊपर वृन्दाबन नहीं जाता, फिर भी इस गतिदिशा की सँभावनाएँ जग जाती हैं ।

द्वारका, मथुरा, गोकुल से वृन्दाबन का वैशिष्ट्य यह है कि वृन्दाबन में ब्रह्म-ऐश्वर्य का विलास है ।[३२८] वैकुन्ठ और गोलोक का सम्बन्ध जहाँ विष्णु और चतुर्व्यूह से था, वहाँ वृन्दाबन में ब्रह्म-ऐश्वर्य का विलास माना गया । वृन्दाबन को उच्चतर स्थिति प्रदान करने में एक तर्क यह रहा कि गोलोक, 'गोकुल' (वृन्दाबन) का वैभव है ।[३२९] लगभग इसी आधार पर श्री प्रबोधानंद सरस्वती ने वृन्दाबन को गोलोक से उत्कृष्ट कहा ।[३३०]

जहाँ वृन्दाबन का सम्बन्ध ब्रह्म के ऐश्वर्य से जोड़कर उसकी महनीयता सिद्ध की गई, वहाँ योग और तन्त्र की भूमिका प्रदान करके भी वृन्दाबन की महत्ता ज्ञापित की गई। पद्मपुराण में वृन्दाबन की योगाश्रित कल्पना मिलती है : वृन्दाबन=सहस्रदल की कर्णिका; यमुना=सुषुम्णा नाड़ी।[331] संहिता–साहित्य और तन्त्र साहित्य में योगपीठ के रूप में वृन्दावन अथवा इसके अन्तर्गत प्रधानपुर (योगपीठ) का विस्तृत निरूपण मिलता है। इस वैष्णवीकृत योगपीठ का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

५·२ योगपीठ

परिकर सहित युगल के नित्य विहार का अधिष्ठान ही योगपीठ है।[332] भक्ति के आचार्यों ने भी वृन्दाबन के योगपीठ परक संकेत दिये हैं। निंबार्काचार्य जी ने वृन्दाबन को सब शून्यों (परव्योमों) महावैकुन्ठादि से परे कहा है।[333] इनके अनुगामी श्री हरि व्यास देवाचार्य जी ने योगपीठ का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।[334] आरम्भ महा-विराट (महाविष्णु=कारणार्णव शायी) के विराट-वर्णन से है।[335] यह महाविराट प्रथम शून्य है [विरजानदी या कारणार्णव समुद्र शून्य : तृसरेणुवत] फिर 'याते दश-दश गुनी सहस्र शत शून्य पुनि' हैं। अर्थात् कारणार्णव शून्य से दश-दश गुने अधिक क्रमशः पाँच लोक हैं—मुक्तिपय अनिरुद्ध लोक, प्रद्युम्नलोक संकर्षण लोक तथा वासुदेव लोक। अन्तिम चार लोक चतुर्व्यूह के हैं।[336] चतुर्व्यूह के अङ्गी कृष्ण हैं। इनके पश्चात् 'तिनमें लख सहस्र महाशून्य अवतंस' हैं ये तीन महाशून्य हैं—द्वारका, मथुरा तथा गोलोक।[337] इनका भी साहित्यिक क्रम निश्चित है।[338] इन महाशून्यों के शिखर पर गोलोक के ऊर्ध्व में कोटि गुनों से कई गुने अधिक तेज का विस्तार है—'तिन महा शून्य के शिखर पर तेजकौ'।[339] वहीं अनन्त वैभवशाली नित्य वृन्दाबन है। इसके पश्चात् श्री हरिव्यास देवाचार्यजी ने योगपीठ वृन्दाबन का विस्तार से वर्णन किया है। कनक भूमि, मणि-रत्नमय द्रुम पल्लव, उसके भीतर कुंज भवन आदि का वर्णन है।

इस वृन्दाबन के पक्षी युगल नाम का उच्चारण करते रहते हैं।[340] 'युगल' वर इस वृन्दाबन की शोभा से स्वयं लुब्ध-मुग्ध हैं लौर यहाँ से कभी एक क्षण भी वे अलग नहीं होते।[341]

यमुनाजी के बीच की भूमि अमित दल कमलाकार है।[342] इसके मध्य अष्टदल कमलों की पंक्ति है। उन पर अष्ट शक्तियों की कुंजें हैं। कमल के मध्य कर्णिका है। उसके चारों ओर चार सरोवर है : मधुर, मान, स्वरूप तथा रूप। चारों सरोवरों के बीच आठ द्वारों का महल है।[343] इस महल के चतुर्दिक आठ मोहनी कुंजें हैं।[344]

इनके बीच, कल्पवृक्ष की छाया में एक मणि जटित चबूतरा है। अष्टकुँजों में निवसित सखियाँ अष्टयाम सेवा में निरत रहती हैं। चबूतरा के मध्य में कनक-रचित, मणि-जटित केलिस्थान है। इस पर प्रिया प्रियतम सुरत-केलिरत रहते हैं। वहाँ दोनों के अतिरिक्त किसी अन्य सखी का प्रवेश नहीं है। मोहन महल के आँगन में मोहन-मंडल है। उसके ऊपर अष्टकोंण का एक लाल सुखद सिंहासन है। इन कोनों पर अष्ट यूथेश्वरी सखियों के स्थान हैं। कुंजों के अनेक भेद हैं। इन्हीं में निरन्तर नित्य अखंड विहार होता रहता है। इन कुंजों के अशांश के भी लघुअंश के रूप में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है।[३४५]

पद्म पुराण में वृन्दाबन का योग पीठ रूप बहुत स्पष्ट है। वृन्दाबन सहस्रदल कमल की कर्णिका है। यह पिंड ही वृन्दाबन है। इसके बीच बहने वाली कालिन्दी सुषुम्णा नाड़ी है। यह श्रेष्ठ अमृत को धारण करती है। यहाँ देवता लोग सूक्ष्म रूप से विराजते हैं।[३४६]

तन्त्र साहित्य में भी तन्त्र-योग प्रतीक के रूप में वृन्दाबन वर्णित है। अलौकिक प्रकृति से वृन्दाबन विलसित है। अष्टदल सिंहासन पर विराजमान युगल के ध्यान का विधान मिलता है।[३४७] तन्त्रों में सखियों का प्राधान्य तो है, पर गोपी तत्व भी इससे मिलकर उपस्थित है। नित्य बिहार का सरस वर्णन तन्त्रों की विशेषता है।[३४८]

वृन्दाबन श्री गोविन्द के विग्रह से अभिन्न है।[३४९] स्कन्द पुराण में वृन्दाबन के ध्यान का भी विधान किया गया है।[३५०]

५३. आचार्य परम्परा और वृन्दाबन

आचार्य शंकर द्वारा रचित कहे जाने वाले ग्रन्थों में कहीं-कहीं कृष्ण प्रेम छलक आता है।[३५१] सुना जाता है कि अन्तिम दिनों में वृन्दाबन निवास की कामना उनमें जगी थी।[३५२] अद्वैतवाद से प्रकांड विद्वान श्री मधुसूदन सरस्वती में भी कृष्ण-भक्ति संचरित हुइ।[३५३] यमुना के पुलिन पर क्रीड़ा शील कृष्ण उनके ध्यान-केन्द्र थे।[३५४] रामानुज संप्रदाय के प्राचीन आचार्य श्री शठकोप ने 'सहस्रगीति' के प्रथम शतक में स्तुति रूप में कृष्ण की द्वारका, मथुरा, और ब्रज-वृन्दाबन की लीलाओं का चित्रण किया है।[३५५] नारायण नाम स्मरण का फल कृष्ण की प्राप्ति उन्होंने कहा है।[३५६] व्यूरेश स्वामी के पुत्र पराशर भट्ट और व्यास भट्ट की वृन्दाबन निष्ठा प्रसिद्ध है।[३५७] श्री रामानन्दजी ने भी अपने कुछ अनुवर्तियों को ब्रजधाम जाकर गोपीजन वल्लभ के

चरण-ध्यान का आदेश दिया था। उनकी वृन्दावन निष्ठता कुछ पद्यों में स्पष्ट है।[३५८] आचार्य वल्लभ ने गोकुल और वृन्दावन में अपने मन लगे रहने की कामना की है।[३५९] भक्ति के अन्य आचार्यों की वृन्दावन निष्ठा स्पष्ट है ही।

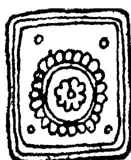
निंबार्कीय आचार्यों ने गोपाल तापिनी उपनिषद् को माना है। इसमें गोलोक का नाम नहीं केवल वृन्दावन का नाम है।[३६०] श्री हरिव्यास देवाचार्य के अनुसार वृन्दावन ही निजधाम है, जो गोलोक का भी गर्व हरण करता है—

कालगुन रहित निजधाम वृन्दा विपिन, परम अभिरामता को सुदेशा।

× × ×

कोटि कंदर्प के दर्प दलमल करैं, गर्व गोलोक के सर्व साजैं।[३६१]

इस प्रकार संसृत लीलावस्तु का घनीभूत रूप सखी प्रेरित युगल-केलि, जो वृन्दावन-निकुंज में घटित हुई, में मिलता है। इसी के आधार पर ब्रजभाषा काव्य की वस्तु की संरचना हुई।



संदर्भ संकेत

१—मध्यकालीन धर्म साधना, पृष्ठ १३२, १३६

२—भागवत १.३.३८

३—वही, १.३३.१७

४—ब्रह्मै वेदं सर्वम् । [नृसिंह तापिनी, ३०.७.३] भागवत में शक्ति अथवा माया के बारह रूप मान्य है :—

श्रियां पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्यया विद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥(१०.३९.५५)

५—वल्लभ० सुबोधिनी, दशमस्कंध, जन्म प्रकरण । बैकुण्ठवासी नारायण की तीन पत्नियों में से एक 'लीला' भी है ।

६—नमामि हृदये शेषे लीला क्षीराब्धिशायिनम् ।
लक्ष्मी सहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् । सुबो० १

७—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, कविवर परमानन्ददास, पृष्ठ १८४

८—आगमीय रूप कल्पना में यह बात रूढ़ि-बद्ध हो गई : 'कृष्ण रूपाण्य संख्यानि वक्तुं न शक्यानि तस्माद्यथेष्ट रूपं कारयेत (मरीचि संहिता, पटल, ५९) अनन्त लीला ललित, कृष्ण रूपाणि कारयेत (भृगु संहिता, १९.१९३)

९—ब्रह्मसूत्र २.१.३३ (लोक लीलावस्तु कैवल्यम्) पर शांकर भाष्य ।

१०—श्री संप्रदाय के लोकाचार्य के अनुसार (तत्त्वत्रय, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, पृष्ठ ८९) 'अस्य प्रयोजनं केवल लीला' । मध्व संप्रदाय के अनुसार अवतार फल के लिए नहीं, लीला के लिए या मोहन ने लिए होता है ।

(पद्मनाभाचार्य, मध्व सिद्धान्त सार संग्रह, पृष्ठ ५) निम्बार्क संप्रदाय की दृष्टि में सभी अवतार लीलावतार ही होते हैं (पुरुषोत्तमाचार्य, वेदान्त रत्न मंजूषा, चोखम्बा, पृष्ठ ४८-४९) वल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र (२.१.३३) के लोकवस्तु लीला कैवल्यम्' पर भाष्य करते हुए लिखा है : 'तु शब्द: पूर्वपक्षे व्यावर्तयति । लोकवत् लीला । नहि लीलायां किंचित प्रयोजनमस्ति । लीलाया एव प्रयोजनत्वात् । ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुयोक्तुं शक्या । सालीला कैवल्यं मोक्षः । तस्य लीलात्वयन्यस्य तत्कीर्तेन मोक्ष इत्यर्थः । लीलेव कैवल्येतिवा ।' चैतन्य मत में भी यही संधारणा है (लघु भागवतामृत, पृष्ठ ४३-७०)

११—भागवत, १.१.१८; १.१.३७

१२—महाभारत, ३.१२.५४

१३—परम कुसल कोविद लीलानट, मुसुकनि मनहरिलेत । सू० सा० पृष्ठ ३१३, पद-७७२

१४—अणुभाष्य २.१.३३

१५—डा० बालमुकुन्द गुप्त के द्वारा 'सम्मेलन पत्रिका' (५६:१) पृ० ४९ पर उद्धृत

१६—गीता ४.७

१७—सूर सारावली, १०९६-१०९९

१८—श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ, लीला भेद बतायौ। सूरसारावली, छंद-११०२-३

१९—जहँ वृन्दाबन आदि अजर, जहँ कुंज लता विस्तार ।
तहँ बिहरत प्रिया-प्रियतम दोऊ, निगम भृंगु गुंजार । वही, ६६२

२०—खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार । वही, ५

२१—सूर सारावली, ३६

२२—पटरानियों का भी दास्य भाव ही मिलता है ।

२३—सूर सारावली १०९६–१०९९

२४—सखी भाव के मुकुटमणि, श्री स्वामी हरिदास ।
किसोर दास तिनि निर्मयौ, नित्य बिहार उपास ।
(किशोरदास सिद्धान्त सरोवर, ६४७)

२५—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, कविवर परमानंददास, पृष्ठ १८४

२६—वत्सहरण के १९-२१ तीन अध्याय आचार्य जी ने प्रक्षिप्त माने हैं।

२७—सुबोधिनी, दशम स्कंध, अ० १-कारिका।

२८—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, कविवर परमानन्ददास, पृष्ठ १८६-८७

२९—तत्रस्थ युगल ध्यात्वा पुनरागमन नहि। (सनत्कुमार संहिता, पटल-३२)

३०—ब्रह्म संहिता ५.४४

३१—तत्र कल्पतरुं ध्यायेत स्थाविष्टं रत्नवर्षिणम् (गौ० तं०, ४.११) तन्मूले चिन्तयेत्मंत्री रत्नसिंहासनं शुभम् (वही, ४.१४) सर्व तत्वमयं तत्र चिन्तयेज्जगदीश्वरम् (वही, ४.१५)

३२—श्री ब्रजवल्लभशरण, वेद आदि शास्त्रों में श्रीधाम समन्वय, सर्वेश्वर (वृन्दाबनांक) पृष्ठ ३५

३३—गौतमीय तंत्र, हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० १५१ पर

३४—वल्लभाचार्य, सुबोधिनी टीका : रास प्रकरण का आरम्भ

३५—ना० भ० सू०, २१

३६—ध्रुवदास, सिद्धान्त विचार लीला, पृष्ठ ५०

३७—वही, पृ० ४९-५०

३८—सांत, दास्य, अरु सख्य हू, वात्सल्य तहाँ न जात।
किसोरदास सहचरि निकट, संतत सुख दरसात।
(किसोरदास, सिद्धान्त सरोवर, ६९७)

३९—यद्यपि राधा कृष्ण बसत ब्रज, बिनु बिहार बिलत्ना।
(बिहारिनदास, सिद्धान्त के पद—१४२)

४०—पुष्टिमार्गोपदेशिका, पृष्ठ २१३

४१—ब्रह्मसूत्र १.३.८ की व्याख्या; वेदान्त कामधेनु, ६

४२—डा० नारायणदत्त शर्मा, निंबार्क संप्र०, पृ० ३, पर विष्णुयामल का उद्धरण।

४३—सर्वेश्वर, वृन्दाबनधामांक, पृष्ठ १८५

४४—वेदान्त पारिजात सौरभ १.१.१ पर भाष्य

४५—इसकी टीका सुन्दर भट्ट जी ने 'प्रपन्न सुरतरु मंजरी' नाम से की है।

४६—व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेय कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्'

४७—डा० पी० जयरामन, निंबार्क संप्रदाय-एक नयी दृष्टि, समवेतस्वर (१—१) पृष्ठ ७

४८—दशश्लोकी,६

४९—ब्रह्म सूत्र (८.३.१) 'अर्चिरादिना तत्प्रथिते' सूत्र की व्याख्या में निंबार्काचार्य जी ने अर्चिरादि पद्धति को श्रेष्ठ कहा है। पं० पुरुषोत्तम प्रसाद शर्मा (१८ वीं शती) ने 'वेदान्त कारिकावली' में 'अथ भगवत् प्राप्ति मार्ग निर्दिशति' के अन्तर्गत, अर्चिरादि पद्धति से परमपद की प्राप्ति का अनुमोदन किया है। (वेदान्त कारिकावली, ९.२)

५०—श्री अर्चिरादि पद्धति (१९१६, वृन्दावन) प्रकाशक—पं० बिहारीदास, टीका पुरुषोत्तम प्रसाद

५१—वही।

५२—पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृष्ठ ४६०

५३—माधव मुकुन्द ने अपने 'परपक्ष गिरिवज्र' के मंगलाचरण में हयग्रीव की वन्दना की है। ब्रह्मचारी बनमाली मिश्रकृत 'वेदान्त सिद्धान्त संग्रह' में 'वाजिमुख' की वन्दना है। पुरुषोत्तम प्रसाद वैष्णव ने 'श्रीकृष्ण स्तवराज की श्रुत्यन्त कल्पवल्ली' टीका की पुष्पिका में अपने को हयग्रीव कृपाश्रित कहा है।

५४—भागवत, ११ १३

५५—स्वधर्माध्व बोध, १६। गोवर्धन की तलहटी का नारद कुण्ड और मथुरा का नारद टीला निंबार्कियों के तीर्थ हैं।

५६—सुन्दर भट्ट जी ने 'मंत्रार्थ रहस्य नाम से इसकी टीका की। आगे भी टीकाओं की परम्परा चलती रही।

५७—द्रष्टव्य 'क्रम दीपिका' (१९१९ चौखम्बा सिरीज, नं० २३३)

५८—पंचमपटल, ५०

५९—पुरुषोत्तमाचार्य कृत 'वेदान्तरत्न मंजूषा' नामक दशश्लोकी की टीका (प्रकाशक—श्री रामप्रताप शास्त्री, वृन्दाबन, १९९८ वि०)

६०—भगवतः श्री कृष्णस्य वामांगेऽनुरूप सौभगां लक्ष्मीं रुक्मिण्याख्यां सदा स्मरेम इत्यन्वयः।

६१—वेदान्त रत्न मंजूषा, पृष्ठ २४३

६२ – वही, पृष्ठ ३४४

६३—वही, पृष्ठ २४५

६४—वही, पृ० २४६

६५—डा० पी० जयरामन, निंबार्क संप्रदाय-एक नयी दृष्टि, समवेतस्वर, (१.१) पृ० १०

६६—इसी समय श्री केशव काश्मीरी के शिष्य श्री भट्ट ने 'युगल-शतक' की रचना की

६७—निर्माय सह कृष्णेन श्रीराधार्चा हरिप्रियाम्। [औदु०] सं० अमुद्रिक

६८—औदु० सं० युग्माराधन व्रत। 'संसेवितुं तत्र न भेदमाचरेत।'

६९—राधा माधव अद्भुत जोरी
सदा सनातन विहरत, अविचल नवल किशोर किशोरी। युगल शतक, ५९

७०—दर्पन में प्रतिबिंब ज्यौं, नैंनु जु नयननि माँहिं।
यों प्यारी-पियपल कहूँ, न्यारे नहिं दरसाहिं। वही, ६

७१—केलिमाल।

७२—माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा। [तत्वदीप निबंध, ४६]

७३—नमामि हृदये शेषे लीला क्षीराब्धि शायिनम्।
लक्ष्मी सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्॥

७४—चौरासी वैष्ण्वन की वार्ता, भाव प्रकाश, पृष्ठ ७८६

७५—राधे बैठी तिलक सँवारति
मृगनैनी कुसुमाकर धरि नन्द सुवन कौ रूप बिचारति।
दरपन हाथ सिंगार बनावति बासर जुग सम दारति।
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सौं हरि संग केलि सम्हारति।
बासर गत रजनी ब्रज अस्वत मिलत गोवर्धन धारी।
परमानन्द स्वामी के संगम मुदित भईं ब्रजनारी।
[परमानन्द सागर, २७३]

७६—मधुराष्टक, परिवृढ़ाष्टक इसके लिए द्रष्टव्य हैं।

७७—श्री स्वामिनी स्तोत्र, १२

७८—स्वा० प्रा० ५

७९—डा० गुप्त, अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृष्ठ ५२७-२८; शशि भूषण दास गुप्त, रा. क. वि. पृष्ठ २८४-२८५

८०—विष्णु पुराण १.१८.५; १.८.१७-३३; १.८.३५; १.९.१४१; १.९.१४३-४५; ५.१३.३३-४६

८१—वही, १.८.३५

८२—वही, १.९.१४१

८३—वही, १.९.१४३-१४५

८४—साक्षाल्लक्ष्मी पति (ईश्वर संहिता, ४.१००)

८५—यामुनाचार्य की 'चतुःश्लोकी'; रामानुजाचार्य जी ने 'शरणागति गद्य' के आरंभ में लक्ष्मी को ही आत्म समर्पण किया है। वेदान्त देशिकाचार्य जी ने 'श्री स्तुति' की रचना की। लोकाचार्य ने 'सार संग्रह' में 'द्वय मन्त्र' का स्पष्टीकरण किया है। इसका प्रधान भाग लक्ष्मी के चरणों की उपासना को समर्पित है।

८६—विचार पूषणम्' में इसका विस्तार मिलता है।

८७—इसकी झलक तुलसी की इस उक्ति में मिलती है।

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरियौ सुधि द्याइबी कछुकरुन कथा चलाइ। [विनय पत्रिका]
लोकाचार्य जी ने रामायण को विशेष महत्व दिया था। आचार्य के अनुसार रामायण का महत्व राम के कारण नहीं, सीता के कारण है।

८८—लक्ष्मी तन्त्रम्, ४:१; २.५

८९—रामायणम्, ६.२१-१५

९०—इसके लिए विष्णु पुराण (१.८:१७; १.९:१२४) का प्रमाण है।

९१—रहस्यत्रय सारम्, पृष्ठ ७५०

९२—वही पृष्ठ ७४८ पर उद्धृत

९३—वेदांत देशिकाचार्य द्वारा 'सारासार' पृष्ठ ४६ पर उद्धृत।

९४—नाथ मुनि के एक शिष्य ने इस रूप में इनको भावित किया था।

९५—अत्रि संहिता ४७; काठक संहिता, अध्या० ३८ आदि।

९६—मरीचि सहिता, पटल-६०; भृग संहिता, १६.२०३-२१३

९७—बलभद्र+रेवती; प्रद्युम्न+रोहिणी; अनिरुद्ध+इन्द्रकरी। भृगु० २१४-२२०

९८—हम तो श्री बिट्ठलनाथ ही जाने।
कोऊ भजौ अंसकला अवतारि, कोऊ अक्षर-क्षर थाने। [करुणानिधि, रागकल्पद्रुम]

९९—जुगल भावना में नित रहैं।
तिनको अंसकला सब चहैं। [भगवत मुदित, रसिकमाल]

१००—अंसकला अवतार जेते सेवत हैं ताहि।
ऐसे वृन्दा विपिन कौ मनवचके अवगाहि।
(ध्रुवदास ग्रन्थावली, वृन्दाबन शतक)

१०१—राधावल्लभ मूल फल और फूल दलडार।
व्यास इनहिं तें होत हैं, अंसकला अवतार।
(भक्त कवि व्यास जी, पृष्ठ ४१४)

१०२—राधा हरि आधा आधा तन एकै ह्वै ब्रज में द्वै अवतारि।
(सूर सा० २३११)

१०३—पद्म पु० पाताल० ५०.५३-५७, ६६.११८; ७७.१३-१७। नारद पुराण (पूर्वार्द्ध) ८२.२६; ८३.९१-९२। ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० ४८.३८-४७

१०४—ब्रह्म वै० पु० [प्रकृति०] १५.६३-६७

१०५—पद्म पु० (पातालखंड) में नारद स्तुति है।)

१०६—ब्रह्म वै० (प्रकृति०) ५५.५४-५७; पूजा-उपासना का विधान (देवी भागवत नवम स्कंध, प्रथम अध्याय)

१०७—क—जामें मरै न बीछुरै, रूठै नहिं कहुँ जाइ।
बिहारिदास भयौ लाड़िलौ, ता लाड़िली लड़ाइ। [विहारिन देव]

ख—राधानाम विभाग करि, समुझौ रसिक सुजान।
जनम कर्म जाकौ नहीं, इकरस बैस समान।
(ललित किशोरी देव, सिद्धान्त की साखी)

१०८—सेस महेस गनेस सुकादिक नारदादि की स्वामिनी ।

× × × ×

रमा, उमा, अरु सची अरुंधति दिन प्रति देखन आवैं ।

[सू० सा० १६७५]

१०९—सदा निगम मुख सहस अस्तुति बखानें । [सूर सा० २४०६]

११०—तत्व संदर्भ, ८; जीव गो० भागवत संदर्भ, अनु० ११७; ब्रह्म संहिता, ४० वाँ श्लो०; पद्म पुराण, पाताल खंड, वृ० महा० अ० १

१११—लघु भागवतामृत, १.१२

११२—अखिल ब्रह्मांड ब्रह्म व्यापक है जोई ।
तिहारे चरन-नख आभा है सोई [महावाणी, सिद्धान्त सुख]
पारब्रह्म कहियत है इनकी पद नखतें सुख ज्योति प्रकाश । [वही]
जाकौ अंस परमात्मा प्रकृति पुरुष कौ ईस । [वही, सि० सुख, १६]

११३—दशश्लोकी के चतुर्थ श्लोक की सिद्धान्त रत्नाँजलि टीका ।

११४—द्वारिका प्रसाद मीतल हिन्दी साहित्य में राधा, पृष्ठ १००

११५—ऋग्वेक १।३०; अथर्व० २०।४५।२; ऋग्वेद-३।५१।१० । वेद में राधस् (ऋ० १।६।५; २।१२।१४; १।२२।२८); राधसा [१।४८।१४; ३।१०।२०; ४।५५।१०; १०।२३।१], राधसे [१।१७।७; २।४।६; ४।२०।२; ५।३५।४; १०।१७।१३] राधसाम् [८।६०।२] राधसि (८।३२।३१) तथा राधा (ऋ० १।३०।५; अथर्व २०।४५।२) शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

११६—ब्र० वै० श्री कृष्ण जन्म खंड, १५।६३

११७—हिन्दी साहित्य में राधा पृष्ठ १५६ पर उद्धृत ।

११८—वल्लभ० सुबोधिनी, १०.३१.१७ पर

११९—'बहुवचनेन समुदाय रूपा लक्ष्मीरप्यनेन सूचित तदंशाश्च त एव समागता: (सुबोधिनी)

१२०—जीव गोस्वामी, श्रीकृष्ण सन्दर्भ

१२१—वि० पु० ५।१३।३३

१२२—भागवत १।१।१; २।४।१४

१२३—हि० सा० में राधा, पृष्ठ १८०

१२४—नंद० ग्र० (२) पदावली, २५२-२५३

१२५—हिन्दी साहित्य में राधा, पृष्ठ २२१

१२६—चै० च० १.४.६१, ८२

१२७—दशावतार, ८३

१२८ - हिन्दी साहित्य में राधा, पृष्ठ १७६

१२६—यह पूरी, हम निपट अधूरी, हम असन्त यह सन्त (सू० सा० २४०५)

१३०—राधिका गेह हरि देसवासी
और तिय घर तनु प्रकासी। (सूरदास)

१३१—डा० देवी शंकर अवस्थी, ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति। पृष्ठ १८७

१३२—हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूर साहित्य, पृ० ४१

१३३—राधा के शरीर से तीन करोड़ गोपियों का उद्भव हुआ। भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग, २५.१५६,१५७

१३४—वही, २५.१६७-१७२

१३५—सोरह सहस पीर तनु एकै, राधा जिव सब देह। सू० सा० १७४१

१३६—लक्ष्मीगण तोर वैभव विलासांश रूप।
महिषीगण वैभव प्रकाश स्वरूप।
आकार स्वभाव भेदे ब्रजदेवी गण।
काय व्यूह रूपतोर रसेर कारण। [चैतन्य चरितामृत]

१३७—भागवत, १०.३३.१७

१३८—पाराशर संहिता, १३-६६

१३६—एम० एस० बोस, द पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट ऑफ बंगाल, पृष्ठ १५८

१४०—आगम शास्त्र, स्पन्द शास्त्र और प्रत्यभिज्ञान।

१४१—भेद, अभेद, भेदाभेद।

१४२—परा, अपरा और परात्परा।

१४३—पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी।

१४४—चैतन्य चरितामृत आदि० ४:६१-६३

१४५—सूर ने राधा को भगवान की जगत उत्पादिका शक्ति बतलाया है ।
(सू० सागर, वेंकटेश्वर प्रेस, पृष्ठ ३४५-३४६)

१४६—भृगु संहिता, १६.२१४-२२०; विष्वकसेन संहिता ११.१३

१४७—प्राचीन वार्ता रहस्य, प्रथम भाग, समस्त लीला प्रकरण ।

१४८—वही, द्वि० भाग, महानुभाव सूर. भाव प्रकाश ।

१४६—वही, पृ० २२२

१५०—सूर साहित्य : नवमूल्यांकन, पृ० २२०

१५१—तत्रापि सर्वथा श्रेष्ठे राधा चन्द्रावलीत्युमे । उ० नी० मणि, पृ० ७३

१५२—राधिका सर्वाधिकार, वही ।

१५३—ह्लादिनी या महाशक्ति : सर्वशक्ति वरीयसी । उज्ज्वलनील पृ० ७५

१५४—देवी भागवत (नवम स्कंध : प्रथम अध्याय) के अनुसार राधा पराशक्ति है । भविष्य पुराण के अनुसार राधा ब्रह्म की विलासिनी शक्ति है । (हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० १४५) गर्ग संहिता' (गिरिराज खंड ६.२२, २३) के अनुसार राधा 'लीला' शक्ति है । हित हरिवंश 'शक्तिः स्वतंत्रा परा' (राधा सु० ७८)

१५५—वल्लभ संप्रदाय में ह्लादिनी शक्ति ही राधा है । डा० दीन दयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ ५०५-५०६ । यह रस की सिद्ध शक्ति भी है । निंबार्क संप्रदाय में भी यही रूप मान्य है । (महावाणी, सं० बिहारी शरण, पृ० १८)

१५६—डा० स्नातक, राधा वल्लभ संप्रदाय, पृ० २१०

१५७—डा० विजयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ संप्रदाय०, पृष्ठ २१६

१५८—अंग अंग की उजराई, सुघराई, चतुराई, सुन्दरता ऐसें ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, कुंज बिहारी सम वैस वैसें ।
(केलिमाल)

१५६—मैं इनकौं घटि बढ़ि नहिं जानति, भेद करै सो कोहै ।
सूर स्याम नागर यह नागरि, एक प्रान तन दोहै ।
(सू० सा० २५२१)

१६०—ऐसे बस तुम भए परस्पर, मोसों प्रेम दुरावै री । (वही, ३२६२)

१६१—कोक कला पूरन तुम दोऊ। (वही ३२८१२)

१६२—वही, २६५३

१६३—राधा रंगभरी नहिं बोलति
मोहन मदन गोपाल लाल सौं, अपनो यौवन तोलति।
(कृष्णदास, प्रभुदयाल मीतल, अष्ट० २२)

१६४—विवेचन के लिए द्रष्टव्य, हित चौरासी तथा प्रेमदास कृत ब्रजभाषा टीका पृ० १११-११२ (भूमिका)

१६५—तुम अति चतुर, चतुर वै तुम तैं, रूप गुननि दोउ नीके हौ।
(सू० सा० २८३०)

१६६—फर्कुहर, एन आउट लाइन ऑफ द रिलीजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृष्ठ ३१५,३१८। क्षितिमोहन सेन, मैडिवल मिस्टसिज्म ऑफ इण्डिया, पृ० ५३, ५४।

१६७—डा० शरण बिहारी गोस्वामी, कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव पृ० १०४

१६८—डा० धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृ० ११३

१६९—राधातापिनी, ४

१७०—वही, ७, १२

१७१—ब्रह्म वैवर्त, प्रकृति० ४९.५९-६०

१७२—राधा पूज्या च कृष्णस्य, वही ४९.६४

१७३—देवी० नवम स्कंध, अध्याय-३

१७४—नारद पांचरात्र ३.५५

१७५—ऋग्वेद के रात्रि सूक्त, देवी सूक्त तथा श्री सूक्त में तथा अथर्ववेद में देवी शक्ति की भक्ति और पूजा के संकेत मिलते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् सरस्वती, गायत्री, सावित्री आदि के रूप में इसी शक्ति का गुणगान करते हैं। पुराणों में यह परम्परा अधिक मांसल और दृढ़ हो जाती है।

१७६—रामस्वार्थ चौधरी के द्वारा मधुर रस (भाग-२) के पृष्ठ ३० पर ऋग्वेद का मन्त्र इस सम्बन्ध में उद्धृत।

१७७—डा० द्वारका प्रसाद मीतल, हिन्दी साहित्य में राधा, पृष्ठ १८०

१७८—डा० दीनदयालु गुप्त, अष्ट छाप० ५०६

१७९—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, परमानन्द और उनका साहित्य, ३१३

१८०—डा० द्वारिका प्रसाद मीतल, हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० २१३

१८१—वेदान्त कामधेनु, श्लोक ४

१८२—वेदान्त कामधेनु, श्लोक० ५

१८३—डा० गोपाल दत्त शर्मा, पृ० ३०७

१८४—श्री वृन्दाबन नाथ पट्ट महिषी राधैव सेव्यामम। राधा सुधा० ७८

१८५—राधैवेष्टं सम्प्रदायैक कर्ताऽऽचार्यो राधा मंत्रदः सद्गुरुश्च (हरिलाल व्यास, राधा सुधानिधि की रसकुल्या टीका)

१८६—राधा सुधा० ६९। नाभादास जी ने हित हरिवंश जी को 'राधा चरन प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी' कहा है।

१८७—सू० सा० २५२२

१८८—भोगी स्याम, भोग है प्यारी। पोषत प्रानलाल हितकारी।
(केलि माल, २८)

१८९—"प्रेम में प्रेमपात्र की—भोग्य की—सहज प्रधानता होती है। नित्य प्रेम बिहार में श्री राधा प्रेम पात्र हैं और उनकी प्रधानता भोग्य की सहज प्रधानता है, शक्ति की प्रधानता नहीं है।" (ललिता चरण गो० श्री हित हरिवंश गोस्वामी, संप्रदाय और साहित्य. पृ० २१६)

१९०—'कहे कृष्णदास गिरिधरन वश किये,
रत जब मधुर स्वर ललित वर रागरी।
(कीर्तन संग्रह (३), पृष्ठ २१५

१९१—चै० च० १.४.१०६-१०८

१९२—नवल गुपाल नवेली राधा, नए नेह बस कीने।
प्रान नाथ सौं प्रान पियारी, प्रान पलटि से लीने। (सू० सागर)

१९३—ज्यों ज्यों नचायो चाहो, तैसे हरि नाचत बल।
(नन्द० ग्र० (२) परि० ग, पद-१०४)

१९४—तू राधे उड़मागि, उदित जिनि त्रिभुवन पति अरुझायौ।
(कुंभनदास, ३११)

१९५—पुनि पुनि कहति हैं ब्रजनारि।
धन्य बड़भागिनी राधा, तेरैं बस गिरधारि। (सू० सा० २४६०)

१९६—नंददास स्याम बस करिबे को, राधाजु के तोलें नहिं सिंधु सुता।
(नंद० ग्र० (२) परि० (ग), पद १७९)

१९७—निकसि न सकत रूप सागर तें, परे प्रेम रस फेरैं।
(स्वा० ललित किशोरी देव, रस के पद, ३५)

१९८—धन्य धन्य वृषभानु कुमारी, गिरिवर धर बस कीन्हेरी।
जोइ जोइ साध करी पिय रस की, सो सब उनकों दीन्हेरी।
(सू० सा० ३२९२)

१९९—देवी भागवत, ९. ५०. १७

२००—सब ठाकुर कौ ठाकुर हरि, ता ठाकुर कौ ठाकुर ठकुरायन।
(हरिदास, केलिमाल, ११६)

२०१—सबै परजा वृजराज हूँ लौं, सर्वोपरि कुंज बिहारिनि रानी।
(वही, ११०)

२०२—छिन - छिन लाल करत आधीनी, सदाई प्रसन्न रहौ तुम गोरी।
(स्वा० ललित किशोरी देव, रस के पद, २०)

२०३—श्री राधिका सकल गुन-पूरन, जाके स्याम अधीन (सू० सा० १६७८)

२०४—तेरैं चरन-सरन त्रिभुवन पति, मेटि कलप तू होहि कलप तरु।
(सू. सा. ३४३५)

२०५—क- दास परमानन्द छिन छिन स्याम ताकी सरन। (प० सा० १९०)
ख- नेंक चिते हँसि बोलिये, मोसों हों तो शरण तुम्हारी।
(कृष्णदास, कीर्तन संग्रह (३) पद—२)

२०६—जाकी कृपा लाल रहैं वांछित, जीवत या ही हेरैं।
(स्वा० ललित किशोरीदेव, रस के पद, ३५)

२०७—कुंज बिहारिनि लाड़िली, परम उदार कृपाल।
पोषण तोषण लाल कौं, रसिक सिरोमनि लाल।
(स्वा० ललित किशोरदेव, सिद्धान्त के दोहे पृ. ५२)

२०७—ब्र० वै० प्रकृति० ४९. ५९-६०

२०८—श्रीमत् प्रभोश्चिन्तन प्रकारः, १०, ११

२०९—श्री हित जू की रति कोऊ लाखनि में एक जानो
राधहिं प्रधान माने, पाछे कृष्ण ध्याइये।
(हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० २१५ पर उद्धृत)

२१०—पं० बल्देब उपाध्याय, भारतीय वाङ्मय में राधा, पृ० ३१

२११—भाग० १०. ३०. २८

२१२—हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० १३९

२१३—वही०, पृ० १८७

२१४—स एवाय पुरुषः स्वयमेव समाराधन तत्परोऽभूत। तस्मात् स्वयमेव समाराधन यकरोत्। अतो लोके वेदे श्री राधा गीयते।
(सामरहस्य, उपनिषद्)

२१५—कृष्ण वांछा पूर्ति करे आराधने।
अतएव राधिका नाम पुराणे आख्याने। (चैतन्य चरि० १. ४. ७५)

२१६—कृष्णेन आराध्यते इति राधा। कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका।'
(डा० मीतल, हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० १०४ पद, उद्धृत)

२१७—'राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम्'
(ब्र० वै० प्रकृति० '४८.३८; वही ४९, ६४)

२१८—हिन्दी साहित्य में राधा। (पृ० १३९ पर)

२१९—महावाणी हरिव्यास देवाचार्य, भूमिका, ब्रह्मचारी बिहारी शरण।
पृ० १८

२२०—डा० विजयेन्द्र स्नातक, राधा वल्लभ संप्रदाय०, २१६

२२१—राधा सुधानिधि, ७८

२२२—राधा सुधा० ९४-९६

२२३—नील लाल गौर के ध्यान बैठे कुंज बिहारी।
ज्यों ज्यों सुख पावत नाहिं, त्यों त्यों दुख भयौ भारी।
अर बराए प्रगट भईं जू, सुख भयौ बहुत हियारी।
(हरिदास जी, केलिमाल, २४)

२२४—जिनके चरन कमल मुनि बंदत, सो तेरौ ध्यान धरैं धरनीधरु।
(सू० सा० ३४३५)

२२५—कुंभनदास प्रभु गिरिधर लालहिं, तेरौ ध्यान रहतु।
(कुंभन०, २७५)

२२६—तुम्हहिं बिनु कान्ह धीरज न आवै। सू० सा० २४०६

२२७—राधा पूज्या च कृष्णस्य। ब्र वै. प्रकृति ४९, ६४

२२८—हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० १०६ पर

२२९—पद म० पाताल० वृन्दाबन माहात्म्य, अ० २८। ८४;

२३०—देवी भागवत, नवम स्कंध ५०/१६

२३१—हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० १५०

२३२—राधा सुधानिधि, ७९

२३३—राधा संग बिना नहिं स्याम, स्याम बिना नहिं राधा नाम।

२३४—रुद्रयामलतंत्र, उत्तरतंत्र। (सेवक बाणी, ४. ७)

२३५—तैत्तिरीय उप० २/७।

२३६—वृहदारण्यक उप. १/४/३।

२३७—श्वेताश्वेतर उप. १/१२।

२३८—डा. शरण बिहारी गोस्वामी, कृष्ण भक्ति काव्य में सखीभाव, पृष्ठ ५७

२३९—संहितो: पनिछच्छतकम्, महेश्वरानन्द गिरि, पृष्ठ ४८६ - ४८७।

२४०—"प्रेमेर परमभाव महाभाव जानि, सेई महाभाव रूप राधा ठाकुरानि।
भावेर लहरी यत ललिता विसाखा, सत्यं कहि भाव पूर्ण मयी श्री राधिका।"
—चैतन्य चरितामृत।

२४१—'कह ते कों तो तीन हैं, सुख विलास में एक'।
(ललित किशोरिदेव सिद्धांत की साखी।)

२४२—केलिमाल, ५३।

२४३—ललितादिक सखीतार काम व्यूह रूप
(चैतन्य चरितामृत २. ८. १२०-१२४)

२४४ डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी, कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव, पृष्ठ २५
और भी द्रष्टव्य : चैतन्य चरितामृत मध्य लीला, परि. ८।

२४५—डॉ. स्नातक, राधा वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ - २१९।

२४६—सू. सा. ३०६७

२४७—हित चौरासी और प्रेमदास कृत ब्रजभाषा टीका, १३वें पद की भूमिका पृष्ठ - ३१ । ; पद्मपुराण, पाताल० में नारद ने राधा को सखी परिवेष्ठित दोव ।

२४८—चैतन्य संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय और राधावल्लभ संप्रदाय में अष्ट सखियों की मान्यता है ।

२४९—हित चौरासी और प्रेमदासकृत ब्रजभाषा टीका, भूमिका पृष्ठ १५६ ।

२५०—केलिमाल, पद ९४ ।

२५१—'आचारज ललिता सखी, प्रगट ललिता वपु धर्‌यौ' जैसी प्रचलित उक्तियों से यह बात प्रमाणित होती है ।

२५२—राजेन्द्र रंजन, स्वामी श्री हरिदास जी विरचित, सिद्धांत के पद भूमिका, पृ. 'अ' । कृष्णयामल तंत्र में ललिता का उल्लेख है ।

(हिन्दी साहित्य में राधा, पृ. १५५)

२५३—हिन्दी साहित्य में राधा, पृ. २०६

२५४—नंददास ग्रंथावली, परि. (ग) पदावली, ७५ ३२१५

२५५—श्री राधाया भुजाभ्यां तु विशाखा ललिता सखी । गर्ग० गिरिराज खंड, ९।२३

२५६—जय वल्लभ, वज्जा०, ५८३

२५७—स्कंद पुराण, वैष्णव खंड, ६, भागवत माहात्म्य, २.१३

२५८—ब्रज के लोक साहित्य में चन्द्रावली का वृत्त अधिक लोकप्रिय है ।

२५९ - महाभारत, १२।२२८।८२

२६०—एच. के. शास्त्री, साउथ इन्डियन इमेजेज ऑफ गॉड्स एन्ड गॉडेसेज़, मद्रास, १९१६, पृ. १८९

२६१—आदि पुराण, १०।१

२६२—वही ११/४१-४२, ६१, ६५

२६३—यह कुंज विवरण गौर गोविंद अर्चन पद्धति के अनुसार दिया गया है । वृहत् गौतमीय तंत्र में विवरण इस प्रकार है : पूर्व में ललिता, अग्नि कोंण में विशाखा, दक्षिण में चंपकलता, नैऋत्य में चित्रा, पश्चिम में

तुंगविद्या, वायु कोंण में इंदुलेखा, उत्तर में रंगदेवी और ईशान में सुदेवी। श्री हरिव्यास देवाचार्य ने महावाणी में इस प्रकार का उल्लेख किया है।

२६४—वर्ण, वस्त्र, सेना आदि का विवरण श्री हरिव्यास देवाचार्य जी 'महावाणी' के 'योगपीठ' प्रकरण के आधार पर दिया गया है।

२६५—'पुत्र मित्र पति आत्मवत् उज्जल तत्सुख प्रीति'। लाड़लीदास सुधर्म बोधिनी, पृष्ठ २४।

२६६—चैतन्य चरितामृत मध्यलीला, परिच्छेद ८।

२६७—सांतदास्य सख्यादि मधि, सहचरि करत प्रवेस।
सखी भाव को यह सबै, किंचित लहैं न लेस॥
किशोरदास, सिद्धांत सरोवर, १०४

२६८—व्रज देविन के प्रेम की बँधी धुजा अति दूर।
ब्रह्मादिक बांछित रहै, तिनके पद की धूर।
तिनहूँ कौ मन तहाँ न परसै।
ललितादिक जेहि ठां छबि दरसै।
लाल लाड़िली प्रेम तैं, सरस सखिनु कौ प्रेम।
अटकी हैं निज प्रीतिरस परसत तिनहि न नेम।
(ब्यालीस लीला : प्रेमलता लीला : पृ. २४४-२४५।)

२६९—राधा सुधानिधि, श्लो. २६६

२७०—सू. सा, १३४८।

२७१—'करति विचारि सुन्दरी सब मिलि अब सेवहु त्रिपुरारि' वही १३८२

२७२—गोपिनु के सम भक्त न आहीं। उद्धव विधि तिनकी रज चाहीं।
तिन मन कछू सकामता आई। तातें बिच अंतर परयो भाई॥
ध्रुवदास आनंदलता लीला (बयालीस लीला) पृ. २७३।

२७३—वही सिद्धांत विचार लीला, पृ. ४९।

२७४—ईश्वर अक्षर सार सुख, गोपिन मध्य विलास।
क़िसोरदास इनके परे, नित्य विहार उपास।
(किशोरदास, सिद्धांत सरोवर, ९७८)

२७५—'कृष्ण प्रिया सखी भावं समाश्रित्या प्रयत्नतः।
तयोः सेवां प्रकुर्वीत दिवानक्तमतान्द्रितः।
(पद्म पु० पाताल० ८२/४९)

२७६—'सकृदावा प्रपन्नो य उपास्ते त्यक्त साधनः।
गोपी भावेन देवेश समामेति न चेतरः। वही, ८२/८२।

२७७—जीव के संबंध में श्रुति की यही अवधारणा है। श्वेताश्वेतर ५/१०। महा० शांति० २०१/२७। देवी भागवत १/६।

२७८—लौकिक लिंगभेद का परित्याग सिद्ध देह की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

२७९—चैतन्य चरितामृत २/८/२४४।

२८०—'सखीभाव तब जानिये निर्विकार तन होय।'
रसिकदास की वाणी, साखी, १४

२८१—सखीभाव तब जानिये पुरुषभाव मिट जाय।
रसिकदास की वाणी, साखी १३२।

२८२—'तिय के तन कौ भाव धरि, सेवा हित शृंगार।
जुगल महल की टहल कौ तब पावै अधिकार।'
(ध्रुवदास भजनसत लीला, पृ. ७५)।

२८३—'त्रिया पुरुष की गम नहीं, हीज चीज कहा होत।
सखी भाव इनतैं परैं, सो रवि सब खिद्योत।'
(किशोरीदास, सिद्धांत सरोवर, ६३८।

२८४—'सब भावन कौ मुकुट मणि सहचरि भाव अनूप' (वही, ६३८)

२८५—ललिता सखी उपासना ज्यों सिंहिनी को चीर।'
भगवत रसिक अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ पृ. -४६।

२८६—'हाव-भाव रस-मगन मए दोउ, छवि निरखति ललिता री।'
(सू० सा० १३५१)

२८७—वही १३५४।

२८८—वही।

२८९—वही।

२९०—"श्री ललितादिक जू बिहार को सुख रन्ध्रनि ह्वै देखन लगीं।'
हित चौरासी और प्रेमदास कृत ब्रजभाषा टीका, पृ. १९।

२९१—राधा सुधा निधि, श्लो० २६६।

२९२—ध्रुवदास, बयालीस लीला, पृ. २१६।

२९३—हित चौरासी, पद -७२।

२९४—वही पद ३६।

२९५—सखीर स्वभाव एक अकथय कथन।
कृष्ण सह निज लीलायनाह सखीर मन।
कृष्ण सह राधिकार जे लीला कराय।
निजकेलि हैते ताहे कोटि सुख पाय। (चैं. च. २.८.१६७ - १६८)

२९६—डा. राम स्वार्थ चौधरी, मधुर रस, (२) पृ. ३९।

२९७—हित चौरासी और प्रेमदासकृत ब्रज भाषा टीका, पृ. ६।

२९८—तब दोउनि के तन में काम झलकि आयो।
तब सखी लतानि के ओट ह्वै गईं। पृ. २४।

२९९—अब सखी विहार करिबे की रीति बतावैं है। जाके सुने सों तत्काल प्रीतम सों मिलें—हित चौरासी और प्रेमदास कृत ब्रजभाषा टीका, पृष्ठ ३१।

३००—कृपा कीजिए लाल पै हे प्रानपियारी।
दासि बिहारिनि सुषल है, यह प्रीति तिहारी।
(ललित किशोरी देव, रस के पद, ५)

३०१—सखी जो आनन्द में भरी लैबे कों आई है सो मारे हरष के मानो अपने ऊपर निहोरो लै करि कहै है कि आजु मेरे कहें चलौ। वही पृष्ठ -४०।

३०२—पद्म पुराण, उत्तर खंड, अध्याय, २५६

३०३—भाग० १०. २८

३०४—बल्देव उपाध्याय, भागवत संप्रदाय, पृ. १६२ - १६३

३०५—भागवत २. २. १८

३०६—सूर सागर (४९२७) में कृष्ण के द्वारा अर्जुन को इस धाम का दर्शन कहा गया है।

३०७—मुंडक उपं० २. २.७

३०८—अंध्याय ८; अध्याय १५

३०९—ऋक् संहिता ३.३.२६

३१०—यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः .....

३११—ऋ० द्वितीय अष्टक, विष्णु सूक्त।

३१२—ब्रजे गावो . . . (ऋ० ६.३.२७ ; ३.८.१

३१३—ऋ० ५.५.२

३१४—'तंद् विष्णोः परमं पदम्' ; गीता ८.१५ में परमधाम का परिचय है।

३१५—'योऽस्याध्यक्ष : परमेव्योमन्' ।

३१६—ब्रह्म संहिता, अध्याय ५

३१७—नारदीय महा पुराण, उत्तर० अध्याय ५६

३१८—देवी भागवत नवम स्कंध, अ० ११

३१९—वही।

३२०—अनंत संहिता में यही क्रम मिलता है।

३२१—द्वारका भक्ति कृत्प्रोत्त्या रसस्थानं तु माथुरम्।

(सर्वेश्वर, वृंदावनांक, पृ. ३१ परे)

३२२—ब्रह्म संहिता ५.३८। सनातन गोस्वामी ने भी यह बात कही है।

(बृहद्भागवतामृत २.६.३७४

३२३—ब्रह्म वैवर्त० (कृष्ण जन्म खंड) ५.५५

३२४—यह विवरण श्री श्यामलाल हकीम के 'श्री वृंदाबन धाम' (सर्वेश्वर, वृंदाबनांक पृ. ८७-८८) लेख के आधार पर दिया गया है।

३२५—ब्रह्म संहिता, ५.२.४ में भी श्वेत द्वीप का वर्णन है। इसी को चैतन्य, चरितामृत में सर्वोपरि कहा गया है। उपर्युक्त विवरण के लिए द्रष्टव्य श्री श्यामलाल हकीम, श्री वृन्दाबन धाम, सर्वेश्वर, वृन्दावनांक, पृ. ८७ - ८८

३२६—जीव गोस्वामी, श्रीकृष्ण संदर्भ, १७२

३२७—पद्मपुराण, पाताल०, ५२.४ में भी यही बात कही गई है।

३२८—गोलोकैश्वर्यं: यत्किंचित् गोकुलं तत्प्रतिष्ठितम् ।

वैकुंठं वैभवं यद्वै द्वारकायां प्रतिष्ठितम् ।

यद् ब्रह्मपरमैश्वर्य्यं नित्यं वृन्दावनाश्रयम् ।

कृष्णधाम परं तेषां वनमध्ये विशेषतः । [पद्मपुराण; पाताल खंड]

नारद पांचरात्र [अर्चिरादि पद्धति] में भी यही बात कही गई है—

नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्मांडो परिसंस्थितम् ।

पूर्णं ब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यमानन्द भव्ययम् ।

३२९—रूप गोस्वामी, गोपाल चम्पू, पूर्व खंड, १९

३३०—वृन्दाबन शतक, ४.८३; वृन्दाबन महिमामृत, ७.४७-६७

३३१—पद्मपुराण, पाताल० ७५-११

३३२—वृहद् गौतमीय तंत्र, पुरुषबोधिनी उपनिषद्, सनत्कुमार संहिता, क्रम-दीपिका आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है । अर्वाचीन आचार्यों के सिद्धान्त ग्रन्थों और वाणियों में भी संकेत हैं ।

३३३—द्रष्टव्य निंबर्की—'श्रीकृष्ण स्तवराज' ।

३३४—यह 'महावाणी' में द्रष्टव्य है ।

३३५—महावाणी सिद्धान्त सुख, १-३

३३६—'श्रीकृष्ण संदर्भ' में भी इन्हीं पाँच शून्यों का विवरण है । इसके प्रमाण स्वरूप 'स्वायम्भुवागम' का उद्धरण दिया गया है । हरिव्यासदेवाचार्य जी ने महावाणी में इनको क्रम संख्या के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है : १०—१००—१०००—१००००—१०००००

३३७—श्रीकृष्ण संदर्भ में इनकी पुष्टि स्कन्द पुराण के उद्धरण की गई है ।

३३८—सांख्यिक क्रम यह है : १००००००—१०००००००—१०००००००० ।

३३९—यह भी स्कन्द पुराण वैष्णव खंड से प्रमाणित है ।

३४०—आदिकारण्ड कलस्बर रसाला । रटत वर युगल को नाम माला । [हरि व्यासदेवाचार्य महावाणी, श्रीयोगपीठ, ११] संगीत माधव [१-८] में भी ऐसा वर्णन है—

'राधा-माधव नव-रति-लीला-गान-महाकुल कीरम् ।'

३४१—आप ही लुभि रहे दोऊ प्यारे। छिनहुँ तहँते न ह्वै सकहिं न्यारे।
[महा० वा० १५]

सनत्कुमार संहिता में भी यही बात कही गई है: 'वृन्दावनं परित्यज्य नैव गच्छाम्यहं क्वचित्। निव साम्य नया सार्धं महमत्रैव सर्वदा।'

३४२—ऐसो निजधाम जा मध्य नितभूमि। अमित दल कमल आकार रहि झूमि।
—महा० १६

पुरुषार्थ बोधिनी, अथर्वण उपनिषद्, में भी इसी प्रकार की कल्पना है।

३४३—महल की रचना अनन्त संहिता, और ब्रह्मवैवर्त पुराण (ब्रह्मखंड, २८. ४६-४८) में भी वर्णित है।

३४४—गौर गोविन्द अर्चन पद्धति में भी आठ कुंजें वर्णित हैं।

३४५—यह विवरण श्री हरिव्यास देवाचार्य जी की 'महावाणी' के श्रीयोगपीठ वर्णन के आधार पर दिया गया है।

३४६—पदम पु० (पाताल०) ७५-११।

३४७—गौतमीय तंत्र, ४. १-१५।

३४८—रासोल्लास तंत्र, ६०-६४।

३४९—पद्मपुराण, (पाताल०) ६९. ७१-७२। श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी ने लिखा है—

विविध सुरति संपति सहित, अति अद्भुत अभिराम।
चिदानंद घन, जयति जय, जय श्री वृन्दाबन धाम।
जय जय श्री वृन्दाबन धाम। चिदानंद घन पूरन काम। [महावाणी]

३५०—वृन्दावनं कुसुमितं नानावृक्ष विहङ्गमैः संस्मरेत्साधको धीमान् विलासैक निकेतनम्। [सर्वेश्वर, वृन्दावनांक, पृ० ७५ पर उद्धृत]

३५१—प्रबोध सुधाकर में उन्होंने लिखा—'श्रीकृष्णं त्यक्त्वा कमन्य विषयं नेत्र युग द्दष्टु मत्सहते।' कहीं गोपों के साथ भोजन लीला के स्मरण करने की बात कही गई है—'भुञ्जान सह गोपैः कुञ्जान्तरवर्तिनं हरिस्मरता'

३५२—कदा वृन्दारण्ये तरणितनया पुण्यपुलिने।
स्मरन् श्रीगोपालं निमिषमिव नेष्यामिदिवसान्।

३५३—गीता के १३वें अध्याय की टीका के मंगल की पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

'वंशी विभूषित कदान्नव नीरदामात्...।' उनके ध्यान में कृष्ण का रूप भरा रहा।

३५४—अस्माकं तु तदेव लोचन तमत्काराय भूयाच्चिरं।
कालिन्दी पुलिनोदरे किमपि चन्नीलं महोधावति।
[गीता, १३वीं अध्याय की टीका का आरंभ]

३५५—गोपियों द्वारा बँधे कृष्ण का ध्यान [सहस्र गीति १. ७.३] गोपाल ध्यान [सहस्र १.७.२]

३५६—सहस्रगीति १०. ५-१

३५७—'पंचस्तवी' ग्रंथ में इस प्रकार के पद्य हैं।

३५८—श्री वैष्णव भजाब्ज भास्कर, श्लो०, १५९, ६०।
वृन्दावने सुन्दर नन्द सूनुं गोविन्दमेवं त्वथ कालिय ह्रदे।
गोवर्धने गोप सुवेश धारिणं तथा भवघ्नेऽपि च पद्मलोचनम्।

३५९—उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान्यथा।
वृन्दाबने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्। [निरोधलक्षण, ३]

३६०—गो० ता० उप० १-३५।

३६१—महावाणी, सिद्धान्त सुख, ७



